जयप्रकाश की विचारधारा

सम्पादक
श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

जयप्रकाश की विचारधारा

दो शब्द

जब मेरी लिखी जयप्रकाशजी की ज़ीवनी प्रकाशित हुई, तभी से मित्रों का आग्रह आने लगा कि उनके विचारों और सिद्धान्तों पर भी एक पुस्तक प्रकाशित होनी चाहिये।

सबसे जबर्दस्त आग्रह था बनारस-राज्य के उस जमादार का जिसने अपने खून से एक खत लिखकर कहा था—

आपकी इस जीवनी ने तो मुझे पागल बना दिया। गरीबों के जिस नेता की मुझे तलाश थी, वह मुझे मिल गया। लेकिन, मैं उसे सिर्फ देखकर सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मैं तो उसके विचारो पर चलना चाहता हूँ। क्या कोई ऐसी किताब नहीं लिखियेगा कि मैं अपने नेता के विचारों से पूरी तरह वाकिफ हो सकूँ? आपको मेरी क़सम—मेरे खून की क़सम। इसीलिए अपने खून से ही यह खत लिख रहा हूँ आपको।

मैंने तभी से इस किताब की ओर ध्यान दिया। चीजें जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी थीं। कितनी चीजें मूलत· अँगरेजी में थीं। सबका सग्रह करने में देर हुई और काफी देर हो गई।

खैर, अब यह लोगो के सामने हाजिर है। मैंने कोशिश की है कि इसमें जयप्रकाशजी के विचारों का पूर्णतः संकलन हो जाय। उनके सभी प्रमुख लेखों, पुस्तकाओं का ही सग्रह इसमें नहीं है; उनके कितने ही व्याख्यानों को भी दे दिया है, जिनके नोट मैंने हो लिये थे। फिर जयप्रकाश-जीजेल में जो छिटफुट नोट लिखते रहे, उनमें से भी बहुत चीज़ों को दे दिया है। कई चीजें तो ऐसी हैं, जो पहले-पहल यहीं छप रही हैं।

राष्ट्र-कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था—"सचमुच आपका जय-

प्रकाशजी से मस्तिष्क का ही नहीं, हृदय का सम्बन्ध है।" लेकिन इस पुस्तक का सकलन सिर्फ हार्दिक प्रेम से ही प्रेरित होकर नहीं हुआ हैं।

देश में जो असन्तोप है, बेकली है, उसमे देश की जनता, देश के नौजवान जयप्रकाश की ओर ही ध्यान लगाये बैठे हैं। ऐसी हालत में यह आवश्यक था कि उनके विचारों को एकसाथ संग्रह करके उनके सामने रख दिया जाय, जिसमें वे समझें कि जयप्रकाश क्या चाहते हैं और उन्हें कहाँ ले जाना चहते हैं।

अन्धभक्ति हमेशा ही बुरी है, किन्तु किसी नये सदेश के मसीहा के प्रति अन्धभक्ति तो उसके साथ विश्वासघात और अपने साथ धोखा है।

विजयादशमी
१९४८

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

समाजवाद क्यों और कैसे ?

द्वितीय खण्ड

क्रांति की लपटों में

तीसरा खण्ड

सींखचों के अन्दर से

चतुर्थ खण्ड

आजादी के बाद

समर्पण

भारतीय समाजवाद के आचार्य और नेता

श्री जयप्रकाश नारायणजी को—

प्यारे साथी,

आज ही आपकी वर्षगाँठ है—४६ वीं वर्षगाँठ। वर्षगाँठ के अवसर पर कौन-सा उपहार लाऊँ आपके लिए? बस लीजिये यही—त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयत्?

विजयदशमी
१९४८

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी
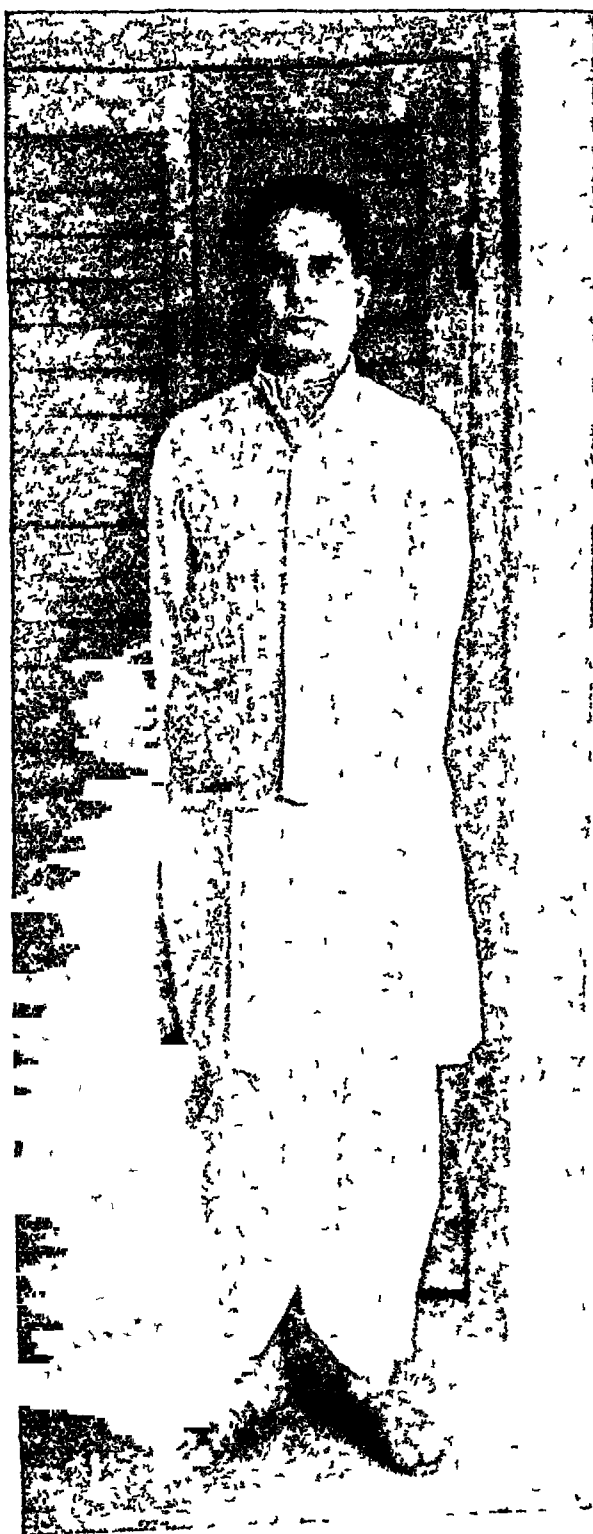
साथी जयप्रकाश

जयप्रकाश की विचारधारा

प्रथम खंड

समाजवाद्—क्यों और कैसे ?

समाजवाद :
सामाजिक संगठन की एक पद्धति

समाजवाद के बारे में हमेशा याद रखना यह है कि यह समाज को नये सिरे से बसाने की एक प्रणाली है। समाजवाद व्यक्तिगत आचार की नियमावली का नाम नहीं है। यह वह चीज नहीं है जिसे हम या आप इक्के-दुक्के प्रयोग मे ला सके। यह कुछ गरम दिमागों की पैदावार भी नहीं है। जब हम कहते हैं कि हिन्दुस्तान में समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए, तो उसका मतलब यह होता है कि देश के पूरे आर्थिक और सामाजिक जीवन का, उसके खेतों, कारखानों, विद्यालयों और मनोरंजनगृहों का नये सिरे से संगठन होना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि किसी एक गाँव या किसी एक कारखाने का सचालन भी समाजवादी तरीके पर किया जा सकता है। लेकिन, उसे समाजवाद नहीं कहा जा सकता। छोटे बच्चे भी मुँह से पानी का फुहरा देकर उसपर सूरज के सातो रंगों की लीला पैदा कर सकते हैं, लेकिन आसमान में जो इन्द्रधनुष उगता है उसकी सतरंगी छटा ही न्यारी होती है।

इससे स्वभावत. ही यह नतीजा निकलता है कि जो लोग समाजवाद के आधार पर समाज का नवनिर्माण करना चाहते हैं उनके हाथों में अधिकार होना चाहिए और उस अधिकार के पीछे काफी ताकत होनी चाहिए। बिना इस अधिकार और ताकत के आदर्शवादियो की कोई भी जमात समाजवाद नहीं कायम कर सकती।

किन्तु यहाँ हमे समझ लेना है कि इस अधिकार या शक्ति का क्या अर्थ है? आज की दुनिया को देखिये तो आप पायेंगे कि जिस साधन से कोई गिरोह, कोई पार्टी या कोई आदमी अपनी योजना, अपनी स्कीम समाज या

राष्ट्र पर लादता है, उस साधन का नाम है राज्य। जब राज्य आपके हाथ में हो तो आप कानून बनाकर या प्रचार और शिक्षा के जोर पर अपनी इच्छा या योजना समाज पर लाद सकते हैं। आज के विज्ञान ने प्रचार और शिक्षा की ताकत बहुत ही बढ़ा दी है। इसके बावजूद किसी ने विरोध किया तो राज्य के दमनात्मक पहलुओं—पुलिस और फौज का उपयोग कर आप उस विरोध को चकनाचूर कर दे सकते हैं। सरकार के हर कानून के पीछे सरकार की समझाने-बुझानेवाली या डराने-धमकाने वाली ताकत छिपी रहती है।

आज के संसार में कोई भी पार्टी समाजवाद कायम नहीं कर सकती जिसके हाथ में राज्य की मशीन न हो। राज्य की यह मशीन जनता ने आपको चुनाव में विजयी बनाकर दी हो या हथियारबन्द दस्ते संगठित कर, छापा मार कर वह हासिल की गई हो—हमारी इस समय की बहस से उसका कोई सरोकार नहीं है।

जिस पार्टी के हाथ में राज्य-सत्ता होगी, वह समाजवाद की स्थापना करने की आशा कर सकती है, बशर्ते कि उसके हाथ मे दो चीजों में से एक हो। पहली चीज, इतनी ताकत कि वह विरोधों को कुचल दे सके या दूसरी चीज, जनता की इतनी मदद कि विरोधी सर ही न उठा पायें। इन दोनों चीजों का मतलब भी अन्त में एक ही होता है। समाजवादी सरकार के हाथ में जो ताकत होती है वह भी तो जनता की मदद से ही प्राप्त होती है। उसके विरोध में जो ताकतें खड़ी होती हैं, वे धनवालों की ताकतें होती हैं और स्वभावतः वे जनता की मदद से वंचित होती हैं।

मैंने कहा कि जिस पार्टी के हाथ में राज्य-सत्ता हो, हुकूमत की ताकत हो, वह चाहे तो इस पृथ्वी पर ही समाजवादी स्वर्ग का निर्माण कर सकती है। सोचना यह है कि इस नव-निर्माण की शुरुआत कैसे की जाय? क्या सबसे पहले यह काम किया जाय कि जितने शोषक हों, मोटी-मोटी तोंदवाले

पूँजीपति हों उन्हें, इकट्ठा कर गोली से उड़ा दिया जाय। मान लीजिये, हिन्दुस्तान में समाजवाद कायम हुआ और प० जवाहरलाल उसके सभापति या प्रधान मन्त्री हुए, तो क्या उनका पहला काम यह होगा कि युक्त प्रान्त के जितने ताल्लुकेदार हैं, उन्हे एक पंक्ति में खड़ा करें और तोप से उड़ा दें ? या जितने राजा-महाराजा या सेठ-साहूकार हैं, सबके खजाने या तिजोरियाँ जब्त कर लें और उन्हें लोगों में बराबर-बराबर बाँट दें ? क्या वह टाटा के लोहे के कारखाने को उसमें काम करनेवाले मजदूरों के हाथ में सौंप दें और उन्हे कह दें कि अब यह चीज तुम्हारी है, तुम अब भला-बुरा जैसा चाहो इसका इस्तेमाल करो ? क्या वह देश में जितनी जमीन है सबको बराबर-बराबर टुकड़ों में बाँट दें और देश में जितने लोग हैं, उन्हें एक-एक चप्पा दे दें ? क्या ऐसा करना समाजवाद कहलायेगा ?

नहीं, समाजवाद इतनी भोंडी, भद्दी और बेहूदी चीज का नाम नहीं। वह एक वैज्ञानिक, सभ्य और सुसगत प्रणाली का नाम है।

तो, जवाहरलाल को ऐसी हालत में क्या करना होगा ?

हम इसका जवाब तुरत पा जायँ, यदि हम जिस समाज में रह रहे हैं, उसके स्वरूप को अच्छी तरह समझ लें।

असमता: समाज की केन्द्रीय समस्या

अपने समाज को देखने से सबसे पहले जो दर्दनाक और अजीब बात सामने आती है, वह है असमता की, नाबराबरी की। पद में, संस्कृति में, सुअवसर में—सब जगह असमता का बोलबाला है। जिन्दगी के लिए जितनी भी अच्छी चीजें हैं उनका बँटवारा बराबरी के आधार पर न होकर ऐसे ऊलूल-जलूल ढग से हुआ है कि देखने से ही चित्त उद्विग्न हो जाता है। गरीबी, भूख, गंदगी, बीमारी, अज्ञान—ज्यादा आदमियों के भाग्य में मानो

ये ही लिखे हैं और एक मुट्ठी लोग सारे आराम, सुख-चैन, विलासिता, संस्कृति, पद और शक्ति का उपभोग कर रहे हैं। अपने देश में हम यही देखते हैं और संसार मे भी यही बात है। अपने देश में तो इनका और भी विकृत रूप है। अपने अभागे देश की तरह दौलत और गरीबी, अत्याचार और पतन का बेतुकापन भला और दूसरी जगह कहाँ देखने को मिलेगा ?

यह असमता दूर कैसे की जाय, यही हमारे समाज की आज प्रमुख समस्या है। असमता की इस-अवस्था पर प्रत्येक युग के महान पुरुषों का, ऋषियों और महात्माओं का ध्यान गया है और उन्होंने उसके हल के तरह-तरह के उपाय बताये हैं—दान, उदारता, काल्पनिक लोक—जहाँ सब बराबर हों—भाग्यवानों से प्रार्थना की कि वे अभागों पर दया करें, धन की निन्दा, दरिद्रता का यशगान, आवश्यकताओं को कम करने का उपदेश—ये चीजें ही साधारणतः असमता के अभिशाप को दूर करने के साधन के रूप में पेश किये गये हैं। अपने युग के महात्माओं द्वारा भी हमें ऐसा ही सन्देश मिल रहा है।

किन्तु, समाजवादी इस असमता को दूर करने के लिए कुछ दूसरा ही उपाय पेश करता है। एक डाक्टर जिस तरह रोग के प्रति रुख रखता है, वही रुख समाजवादी का इस समस्या के प्रति है। वह यह नहीं मानता कि दुनिया में असमता बनी ही रहेगी और उसका काम सिर्फ इसमें कुछ कमी करना या उसे बर्दाश्त के लायक बनाना है। वह तो इस समस्या की जड़ तक पहुँचने की कोशिश करता है, फिर इस कोशिश में लगता है कि समाज में असमता रहे ही नहीं।

असमता का कारण—क्या यह जन्मजात है ?

यह असमता कैसे आई, क्यों आई, इसकी जड़ कहाँ है ? समाजवादी

ज्यों ही उन बातों की छानवीन शुरू करता है, सबसे पहले उसके सामने जीव-विज्ञान खड़ा हो जाता है। जीव-विज्ञान के नाम पर कहा जाता है कि सभी मनुष्य एकसाँ नहीं पैदा होते, जैसा कि जनतंत्रवादी दुहराते फिरते हैं। वल्कि वे जन्म से ही नाबरावर पैदा होते हैं। आदमी की योग्यता जन्म से ही गुण और परिमाण, दोनों में ही भिन्न-भिन्न होती है। देखने से भी ऐसा ही मालूम पड़ता है और मानव समाज की बुद्धि में समानता की खोज करनेवाले नये मनोवैज्ञानिक भी इस बात को नहीं काटते।

लेकिन हमें देखना तो यह है कि यह जन्मजात असमता सामाजिक असमता को कहाँ तक प्रभावित करती है? समाजवादी इसको कबूल करता है कि संसार के अन्य पदार्थों और जीवों की तरह आदमी में भी भिन्नता है। समाज के एक छोर पर एक मुट्ठी प्रतिभाशील व्यक्तियों का गिरोह है, तो दूसरे छोर पर उसी तरह एक छोटा-सा गिरोह बेवकूफों और कमअक्लों का है और वीच में एक बहुत बड़ा बहुमत उनलोगों का है जो योग्यताओं में प्रायः एक-साँ हैं।

इन जन्मजात विभिन्नताओं का असर हम समाज पर भी पड़ा हुआ देखते हैं। पढ़ने-लिखने में, कला और विज्ञान की निपुणता प्राप्त करने में हम असमता के उदाहरण प्राय: ही पाते हैं। फिर धन में, शक्ति में, पद में, सुअवसर में भी असमता का बोल-वाला है। लेकिन समाजवादी कभी इस वात पर विरोध की आवाज बुलन्द नहीं करता कि समाज में टैगोर ऐसे कलाकार और रमण ऐसे वैज्ञानिक क्यों पैदा होते हैं? टैगोर और रमण ऐसे महापुरुषों को समाज में पाकर समाजवादी को आनन्द ही होता है। किन्तु, उसे खेद इस बात का है कि हजारों टैगोर और रमण आत्मविकास का सुअवसर न पाने के कारण अज्ञात हो चिता पर चढ जाते हैं। किसी समाजवादी ने असमता के दोष बताते हुए कभी यह नहीं कहा कि क्यों प्रकृति कुछ ही

व्यक्तियों को कविता और विज्ञान का वरदान देती है। समाजवादी का विरोध तो है दूसरी कौटि की असमता से यानी धन, पद आदि की असमता से। आज की दुनिया में जहाँ धन ही सारी सामाजिक शक्तियों का केन्द्र बन गया है, उस धन का असम बँटवारा ही पूरी सामाजिक समस्या का मूल है।

धन का यह असम वितरण, नाबराबर बँटवारा क्यों हुआ और क्यों होता है? यहाँ फिर जीव-विज्ञान की दुहाई दी जाती है। कहा जाता है कि कुछ लोग होशियार के रूप में ही पैदा होते हैं, वे अच्छी तरह काम-काज का अंजाम देते हैं और दूसरों के बनिस्बत धनी बन जाते हैं। कुछ देर के लिए इसे भी मान लीजिये। लेकिन जो लोग बपौती में धन पाते हैं उनके बारे में क्या कहियेगा? बपौती में धन पाने के लिए किसी जन्मगत योग्यता की आवश्यकता तो है नहीं। लखपति का बेटा वज्रमूर्ख ही क्यों न हो, वह अपने बाप की लाखों रुपये की सम्पत्ति का उसी तरह मालिक हो जायगा जैसे कि वह स्वयं प्रतिभाशाली व्यक्ति हो। यह साफ है कि बपौती में धन पाना इसलिए सभव है कि समाज में उसके लिए एक रिवाज बन गया है और कानून उस रिवाज पर मुहर लगा चुका है। उस रिवाज, उस कानून को बदल दीजिये तो देखियेगा कि आज जो हजारों व्यक्ति लखपति छैले बनकर घूमते नजर आते हैं, कल से वे दर-दर भीख माँगते फिरें।

अब हम उन लोगों को लें, जिन्होंने खुद धन कमाया है। जबतक उनके पास विशेष योग्यता नहीं थी, तब तक भला लखपति कैसे बन गये?

निस्सन्देह ही एक सफल व्यापारी बनने के लिए एक खास ढंग की योग्यता चाहिए। लेकिन क्या यह अजीब बात मालूम नहीं होती है कि भगवान ने धन पैदा करने की ताकत सिर्फ एक ही ढग की योग्यता पर लाद दी हो और दूसरे लोगों की तकदीर में यह लिख दिया हो कि तुम धनी लोगों की मर्जी पर ही जीओ? एक बहुत बडा गणितशास्त्री हो, अपने समय

का यह सबसे बड़ा अनुसन्धानकर्ता हो, इन अनुसन्धानों के चलते उसे अमरत्व भी प्राप्त हो जाय, किन्तु इनके चलते वह धनी भी बन जायगा, यह निश्चित नहीं। क्या उस गणितशास्त्री की प्रतिभा का मूल्य उन मामूली साहूकारों के बराबर भी नहीं है जो व्यापार के कुछ बँधे नियम पर चलते और हजारों-लाखों पर हाथ फेरते हैं ? यों ही, चतुर से चतुर वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला से कोई पैसा नहीं बना सकता जब तक वह खुद व्यापारी न बने। मालूम ऐसा होता है कि व्यापारियों की प्रयोगशाला में ही धन पैदा करने की सारी ताकत केन्द्रित है।

चलिये, अब हम व्यापारियों की इस प्रयोगशाला को देखें और खोज करें कि धन किस तरह पैदा और इकट्ठा किया जाता है।

धन का उत्पादन और संग्रह

हमारी इस दुनिया में एक तरफ आदमी है और दूसरी तरफ प्रकृति। सारी सम्पत्ति प्रकृति के गर्भ में है। मनुष्य कोई सम्पत्ति तभी प्राप्त कर सकता है जब प्रकृति पर वह काम करे। इस तरह हम देखते हैं कि सभी सम्पत्तियों का मूल-स्रोत प्रकृति है या मनुष्य की मेहनत जिसके द्वारा वह प्रकृति से मनमानी चीजें वसूल करता है। प्रकृति और मनुष्य की मेहनत—यही वह आधार-शिला है जिसपर सारा अर्थ-शास्त्र खड़ा है।

धन एकत्र कैसे होता है ? यह साफ है कि अगर आदमी प्रकृति से उतनी ही चीज ले पाये जितनी का उपभोग कर सके, तो फिर धन एकत्र कहाँ से हो ? आदमी प्रकृति से कितना ले सकता है यह निर्भर करता है उसकी पैदा करने की ताकत पर। यानी, उसके औजार किस ढंग के हैं और उसके काम का तरीका क्या है ? इसलिए धन तभी एकत्र हो सकता है जब आदमी की पैदा करने की ताकत इतनी बढ़ गई हो कि वह अपनी जीविका से भी ज्यादा पैदा कर सके। धन के इकट्ठा होने का यह मौलिक आधार है।

शिकार, मछली मारने, खेती करने की कला जब इतनी उन्नति कर गई कि आदमी अपनी जीविका से ज्यादा प्राप्त करने लगा, तभी धन का एकत्र होना सभव हुआ।

अब जिस समाज में पैदा करने की कला जीविका के मापदण्ड से आगे बढ़ गई हो, वहाँ उसका हर सदस्य कुछ न कुछ धन इकट्ठा कर ही लेगा। शर्त सिर्फ यह है कि वह अपने लिए काम करने को आजाद हो, उसके पास अपने औजार हों, प्रकृति तक उसकी स्वतन्त्र पैठ हो और अपनी कमाई वह अपने ही पास रख सके। उस समय धन एकत्र करने की दर इस बात पर निर्भर करेगी कि उस समय समाज में एक आदमी ज्यादा से ज्यादा कितना पैदा करता और कम से कम कितना खर्च करता है। ऐसा हो सकता है कि कोई परिवार जितना पैदा करे उसे सारा-का-सारा उपभोग कर ले। ऐसी हालत में वैसे परिवारों के पास धन का सग्रह नहीं हो पायेगा। लेकिन वह परिवार भूखों भी नहीं मरेगा क्योंकि हमने यह मान लिया है कि उस समाज में पैदावार जीविका के मापदण्ड को न सिर्फ छू सकी है, वल्कि वह आगे भी बढ गई है।

इस समाज में कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनमें असाधारण प्रतिभा हो। स्वभावतः वे लोग दूसरों की अपेक्षा ज्यादा पैदा कर सकेंगे और यदि वे मितव्ययी हैं तो ज्यादा बचा भी सकते हैं। दूसरी तरफ कम प्रतिभा वाले लोग होंगे जो बहुत ही थोड़ा या कुछ भी नहीं बचा सकेंगे। लेकिन हर हालत मे ऐसे समाज में हर तन्दुरुस्त आदमी कुछ धनइकट्ठा करने या कम-से-कम अपनी परवरिश करने के लायक तो होगा ही, बशर्ते कि जैसा हम पहले कह चुके हैं, वह अपने लिए काम करने को आजाद हो, उसके पास अपने औजार हों, प्रकृति तक उसकी खुली पैठ हो और अपनी पैदावार का वह आप ही मालिक हो।

अब हम इस काल्पनिक समाज से अपने समाज की ओर आवें। हम यह देखते हैं कि उत्पादन के साधन—चाहे खेती-गृहस्थी मे लीजिये या उद्योग-धन्धों में—इस तरह से तरक्की कर गये हैं कि अब कोई भी आदमी बहुत आसानी से अपनी जीविका की अपेक्षा ज्यादा पैदा कर सकता है। हिन्दुस्तान का किसान स्वभावतः ही पुराणपंथी समझा जाता है और उसके खेती के औजार और तरीके बहुत पुराने और बहुत अंशो मे रद्दी हैं। तो भी वह अपनी जीविका से ज्यादा ही पैदा कर सकता है। फिर यह क्या बात है कि हमारे लाखो-करोड़ों आदमी दिन में एक बार भी भर पेट भोजन नहीं पाते ? साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि हमारे यहाँ बहुत ऐसे भी लोग हैं जो अपनी जरूरतें ही अच्छी तरह पूरी नहीं कर लेते, बल्कि ऊँचे दर्जे की आराम-चैन की जिन्दगी गुजारते हैं। एक तरफ यह भुखमरी और दूसरी ओर यह आराम-चैन—यह किस तरह सभव हो सका है ?

पहले हम गरीबों के ही सवाल को लें। अपने वर्तमान समाज की विकसित उत्पादनशक्ति को देखते हुए यह सभव है कि हिन्दुस्तान का हर आदमी अपनी परवरिश मजे मे कर ले। यही नही, हर आदमी के पास कुछ धन जमा भी रह सकता है। लेकिन हम ऐसा नही देख रहे हैं, बल्कि सच बात तो यह है कि हिन्दुस्तान के हर लोग अच्छी तरह खा-पी भी नहीं सकते। ऐसा क्यो हो रहा है ? क्योंकि ऐसा होने के लिए जो शर्तें हमने ऊपर बतायी हैं, वे सब लुप्त हो चुकी हैं। लोगो की खुली पैठ प्रकृति तक नहीं रह गई है। बहुत अंशो में उनके औजार अपने नहीं हैं। वे सिर्फ अपने लिए काम नहीं करते और न अपने द्वारा पैदा की हुई चीज को अपने ही लिए रख पाते हैं। ऐसी बात क्यों हो गई है, यह बहुत ही पुराना किस्सा है। लेकिन यह बात सच है, इसे एक अंधा भी देख सकता है।

तो हमारी जनता की जो गरीबी है उसका कारण यह है कि पैदावार

के साधन यानी औजार, सामान, जमीन आदि पर उसका अपना अधिकार नहीं है। इन चीजों के लिए उसे दाम चुकाने पड़ते हैं और जितना ही अधिक उसे देना पड़ता है, पैदावार का उतना ही कम हिस्सा उसे मिल पाता है और उतनी ही ज्यादा उसकी गरीबी बढ़ती जाती है। बहुत लोग तो ऐसे हैं कि जिनके पास उन चीजों के दाम चुकाने के लिए कुछ भी नहीं होता। इसलिए उनके लिए अपनी मेहनत बेचने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं रह जाता है। अगर हर आदमी के पास पैदावार के साधन होते, तो फिर गरीबी का कहीं नाम-निशान नहीं होता। हाँ, यदि आबादी इतनी अधिक बढ़ गई होती कि पैदावार के साधनों की वर्तमान उत्पादन-शक्ति जनता की जरूरतों को पूरी करने में अक्षम होती, तो बात दूसरी है। किन्तु, यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि यद्यपि हिन्दुस्तान की आबादी इतनी अधिक बढ़ गई है, तो भी ऐसी हालत नहीं हो पाई है।

अब हम धनी लोगों की बात लें। कुछ आदमियों ने गरीबों की अपेक्षा लाखों करोड़ों गुणा धन इकट्ठा कर रखा है, यह कैसे संभव हो सका? कोई भी व्यक्ति कितना भी चतुर क्यों न हो, पैदावार की किसी भी मंजिल में एक तरह के उत्पादन के साधन द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति से हजारों गुणा ज्यादा पैदा कर नहीं सकता। यह साफ बात है कि धनी लोगों का जो असंख्य धन है, वह उनका अपना कमाया हुआ नहीं है। एक ही समाज में रहनेवाले आदमी की उत्पादन-शक्ति में इतनी असमता हो नहीं सकती। हम पहले कह चुके हैं कि धन पैदा करने का एक ही साधन है, वह है प्रकृति पर आदमी द्वारा परिश्रम किया जाना और धन का संग्रह तभी हो सकता है जब आदमी अपनी जीविका से अधिक पैदा करे। आदमी कितना पैदा कर सकेगा, इसकी सीमा निर्धारित है। समाज में पैदावार की कला जिस हद तक विकसित होगी उसी पैमाने पर आदमी पैदा भी कर सकेगा। यह बात यूरो-

पीय समाज पर भी लागू है यद्यपि वहाँ की पैदावार बहुत कुछ कल-पुर्जों पर ही निर्भर करती है। वहा हम पाते हैं कि पैदावार के साधन—खास कर औद्योगिक पैदावारो के साधन, अपने देश की अपेक्षा इतने विकसित हो चुके हैं कि अब कोई व्यक्ति स्वतंत्र रूप से उनका इस्तेमाल नहीं कर सकता। किन्तु, इससे मेरी दलील में कोई खलल नहीं आता। अगर उन कल पुर्जों पर सम्मिलित रूप से काम करनेवाले लोग अपने हिस्से सही-सही पा सकें, तो भी हालत वही होगी जिसकी कल्पना हमने पहले की थी। यानी समाज के हर व्यक्ति के पास खाने-पीने के बाद भी काफी धन इकट्ठा हो जा सकता है और न तो कहीं गरीबी का नाम होगा और न आज की तरह कुछ लोगों के हाथ में अधिकांश धन का सग्रह ही हो सकेगा।

फिर हमारे आज के समाज मे जो लखपति-करोड़पति बन गये हैं, वह कैसे ? ऐसा कहा जा सकता है कि मेहनती लोगो ने बड़ी धीरता से लगातार मेहनत करके इतने धन का सग्रह किया है। इसका जवाब तुरत दिया जा सकता है कि परिश्रम और मितव्ययिता खानदानी चीज नहीं रही है, और न इनके द्वारा इतने धन एकत्र ही किये जा सकते हैं। आज हम जिन्हें लखपति-करोड़पति पाते हैं, खास कर व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में, उनके बाप-दादे क्या थे हमें मालूम है। धन एकत्र होने का रहस्य धनियों के खानदान और प्रतिभा के अन्दर नहीं छिपा है। उसके रहस्य को हमें कुछ दूसरी ही जगह ढूँढ़ना पड़ेगा।

धन और शोषण

धन किस तरह से इकट्ठा होता है, इसके विश्लेषण से इस रहस्य का पता लग जाता है। कल्पना कीजिये कि जिस समाज मे उत्पादन जीविका के दर्जे से ऊपर जा चुका है यानी आदमी उतना पैदा कर देता है जिसमें खाने-पीने

से भी बहुत कुछ बच जाय और उस समाज में एक ऐसा आदमी है जो दस आदमियों को काम पर लगाता और उन्हे सिर्फ उतना देता है जितने की जरूरत उन्हें खाने-पीने या जीने के लिए है और बाकी को अपनी झोली मे रख लेता है। ऐसी हालत में यह स्पष्ट है कि वह आदमी उस समाज के साधारण आदमियों की अपेक्षा, जो सिर्फ अपने ही उत्पादन करते हैं, दस गुणा अधिक धन इकट्ठा कर सकता है और कुछ ही दिनों मे वह बहुत धनवान हो ही जायगा। जितने ही ज्यादा आदमियो को वह मजदूरी पर रखेगा, उतने ही ज्यादा उसके धन की वृद्धि होगी।

फिर कल्पना कीजिये कि उसी समाज में एक ऐसा आदमी भी है जिसने प्रकृति पर, मान लीजिये जमीन पर, एकाधिकार कायम कर लिया हो। उस एकाधिकार के बल पर वह जमीन पर तब तक किसी को काम करने नहीं देगा जबतक पैदावार का एक हिस्सा देने का शर्तनामा नहीं कर दिया जाता है। यह एकाधिकारवाला व्यक्ति भी दूसरे आदमियों की अपेक्षा ज्यादा धनी हो जायगा और उसका धन उसी अनुपात में बढता जायगा जिस अनुपात मे वह जमीन का मालिक है और उसके जोतनेवाले से मालगुजारी वसूल कर पाता है। दूसरे प्राकृतिक साधनो पर भी यही बात लागू है।

अब हमें धन की असमता के रहस्य का पता लग गया और हम यह भी जान गये कि शोषण का यथार्थ अर्थ क्या है?

अब यहाँ यह सवाल पूछा जा सकता है कि कोई आदमी दूसरे के लिए काम ही क्यों करे और इस तरह क्यों अपनी कमाई का एक हिस्सा जान-बूझ कर दूसरे को दे दे—जब कि वह अपने लिए भी काम कर सकता और अपनी सारी कमाई को खुद भोग सकता है? इस सवाल के जवाब के लिए हमें मानव जाति के पूरे सामाजिक और राजनीतिक इतिहास का पर्यवेक्षण करना पड़ेगा। संक्षेप में इसका जवाब यह है कि कोई आदमी भी ऐसा करना नहीं

चाहता और मानव इतिहास में किसी आदमी ने ऐसा नही किया है जब तक वह ऐसा करने को वाध्य नही कर दिया गया हो।

सभी मानवीय समाजों मे जबतक जमीन की हदबन्दी नही हुई थी और लोग जगल को साफ करने और उसपर खेती करने मे स्वतत्र थे, तब तक कोई भी आदमी दूसरे के लिए काम नहीं करता था। सबसे पहले कुछ लोगो ने प्रकृति के वरदानो पर एकाधिकार स्थापित किया। यह एकाधिकार जोर-जबर्दस्ती से, नगी शक्ति के आधार पर, कायम किया गया। चारो तरफ आदमी के ऐसे गिरोह खडे होने लगे जिन्होंने प्रकृति पर, मुख्यत' जमीन पर अपना एकाधिकार स्थापित किया और दूसरो को दास, अर्द्धदास या स्वतत्र करदाता वनने को वाध्य किया।

यही बात उद्योग-धधो मे भी हुई। जब तक उद्योग-धधे उस सतह पर थे जब कि स्वतत्र व्यक्तिगत उत्पादन सभव था, तबतक औद्योगिक, शोषण और फलत औद्योगिक आय में बहुत कम विभेद था। लेकिन, ज्यों-ज्यो उत्पादन बढता गया और शहर बसते गये, कारीगरो और गुलामो को एक साथ मिलकर अपने स्वामियो के लिए काम करने को लाचार होना पड़ा। इस तरह औद्योगिक आय मे भी असमता का बोलवाला हुआ। औद्योगिक पूजीपतियों की अत्यधिक वृद्धि तब से शुरू हुई जब भाफ के वल पर उद्योग-धधे चलाये जाने लगे। इसे ही औद्योगिक क्रांति कहा जाता है। औद्योगिक क्रांति के चलते मजदूरों का ज्यादा-से-ज्यादा शोषण सम्भव हुआ।

ऐसा कहा जाता है कि हमारे समाज में ऐसे भी आदमी हैं जो न तो मजदूरों से काम लेते हैं और न मालगुजारी वसूल करते हैं, न दूसरे किसी तरह का कर लेते हैं, किन्तु, तो भी वे काफी धनी हैं और कभी-कभी तो पूँजीपतियों और जमींदारो से भी ज्यादा धनी होते हैं। जैसे—कुछ लोग व्यापारी हैं, कुछ लोग फाटकेवाज हैं, कुछ लोग महाजन हैं। वे लोग न

तो खुद धन पैदा करते हैं और न धन पैदा करने मे लगे हुए लोगों की मेहनत का ही शोषण करते हैं। लेकिन अगर हम गौर करके देखें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनके धन का तुरत का जरिया चाहे जो कुछ हो, लेकिन वह आता है समाज द्वारा पैदा किये हुए सम्पूर्ण धन में से ही कट-छँट कर।

हम पहले देख चुके हैं कि धन मेहनत से ही पैदा होता है। और उसमें से एक हिस्सा धन पैदा करने वाले मेहनतकश के पास जाता और बाकी उन शोषक वर्गों के पहुंचता है जो उस मेहनतकश को मजदूरी पर काम कराते हैं। ये शोषकवर्ग मेहनत करने वालो द्वारा पैदा की हुई चीजों का स्वयं उपभोग नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें बेंच डालना, उनके बदले दूसरी चीजों का खरीदना जरूरी होता है। व्यापारियों और फाटके बाजों की पैदाइश यहीं से शुरु होती है। तैयार माल का बेचना और कच्चा माल का खरीदना पूंजीपतियों के लिए लाजिमी होता है। क्योंकि इसके बिना चीजों के पैदावार का सिलसिला जारी नहीं रखा जा सकता। इसलिए, मजदूरों से शोषण किये गये धन का एक हिस्सा वे खरीदार और विक्रेता की हैसियत से व्यापारियों और फाटकेबाजो को दे देते हैं। सूदखोर महाजनो की भी यही बात है। कहा जाता है कि वे रुपया देते और सूद लेते हैं। किन्तु, यह सूद आता कहाँ से है? सूद भी उत्पादन के सिलसिले में ही पैदा होता है और मजदूरों को देकर बचे हुए कोष से चुकता किया जाता है। चाहे मुनाफा कहिये या सूद, कमीशन कहिये या दलाली—ये सब के सब एक ही कोष से आते हैं और वह कोष मेहनतकश द्वारा पैदा किया जाता है और पैदावार के साधनो पर एकाधिकार रखने वाले लोग शोषण द्वारा उसे मेहनतकश से उचँग कर एकत्र करते हैं। रुपया से रुपया नहीं पैदा हो सकता। न कोई भी आर्थिक या व्यापारिक उलटफेर उसे पैदा कर सकता है। पूंजीवादी व्यापार का सारा खेल इस बात में है कि इसके भिन्न-भिन्न अंग ज्यादा-से-ज्यादा

शोषण करें और इस शोषण का केन्द्रीय लक्ष्य है बेचारे मेहनतकश की कमाई पूँजीवादी प्रतियोगिता या व्यापार के बारीक रहस्य यही है। विश्वविद्यालयो मे धन के सग्रह के बारे में जो कुछ पढाया जाता है वह सब भ्रमजाल है—भूलभुलैया है।

हम इसे दुहरा ले। क्योंकि दुहराने मे फायदा ही है। धन उन्हीं के पास एकत्र होता है, जिनका उत्पादन के साधन पर कब्जा होता है और उसके चलते जो दूसरो की मेहनत का शोषण करते हैं। इस शोषण द्वारा सचित-कोष से ही दूसरे-दूसरे गिरोह भी अपना हिस्सा लेते हैं। यह सोचना बिल्कुल गलत है कि ये बीचवाले लोग किसी रूप में भी धन पैदा करते हैं। उनका धन कमाने का मानी सिर्फ यह है कि शोषण द्वारा एकत्र धन मे से कितना अधिक वह अपनी ओर खींच सकते हैं। प्रोफेसर, वकील, डाक्टर वगैरह सबके सब उसी एक ही कोष से अपनी झोली भरते हैं। हाँ, कभी-कभी वे असल धन पैदा करनेवाले अर्थात् मजदूरो और किसानो की खाली झोली से भी कुछ न-कुछ झाड ही लाते हैं।

सक्षेप मे—धन की असमता का मुख्य कारण यह है कि प्रकृति के वरदानो पर, जिनसे धन पैदा होता है और उत्पादन के साधनो पर, जिनके द्वारा धन पैदा होता है कुछ लोगो का व्यक्तिगत कब्जा हो गया है जो उनका उपयोग अपने लाभ के लिए करते है। यही से आर्थिक-शोषण शुरू होता है। यानी मेहनतकश के पास से पूरी पैदावार छीन ली जाती है, सिर्फ उसके जिन्दा रहनेभर का सामान उसके लिए दे दिया जाता है। यह कभी तो सीधे-सीधे होता है, कभी तिरछे-तिरछे। सीधा आर्थिक शोषण वह है जब 'पूंजी-पति मजदूरो से अपने कारखानों मे काम लेता है। और अप्रत्यक्ष शोषण वह है जब जमीन या दूसरे प्राकृतिक साधनो का मालगुजारी या दूसरे ढग के करो पर लगाता है।

पैदावार के ये साधन जोर जबर्दस्ती से ही व्यक्तिगत हाथों में गये। जो लोग इस तरह जोर जबर्दस्ती कर सकते थे, उनके हाथों मे युगों तक धन बढ़ता रहा। इसके बाद ही कुछ आविष्कार हुए जिनके चलते ससार ने औद्योगिक-क्राति देखी। यही से शोषण का वह भीषण युग प्रारम्भ होता है जिसमें लाखों-करोड़ो आदमियो को एक मुट्ठी लोग कारखानों में जोतते और करोड़पति, अरबपति बनते जाते हैं।

समाज में जो आज असमता है उसका कारण क्या है अब हम जान गये। तब हमारे लिए यह जानना कठिन नहीं रह गया कि इस असमता को दूर करने का समाजवादी तरीका क्या हो सकता है?

असमता कैसे दूर हो?

समाज को आज की असमता के दूर करने के सिद्धान्ततः दो ही उपाय हैं यदि वे व्यवहार मे आ सकें तो फिर हम उनके आधार पर एक न्यायपूर्ण सुखी समाज का निर्माण कर सकते हैं। पहला उपाय है कि हम समाज का इस तरह पुनर्निर्माण करें कि हर आदमी अपने ही लिए काम कर सके—वह किसी तरह की मालगुजारी या कर दिये बगैर अपने खेत पर खेती कर सके या अपने कारखाने में अपने औजारों से काम करे। किसी आदमी के पास उत्पादन के साधन इतने अधिक न हो कि वह उनका उपयोग अपने ही हाथों से न कर सके।

लेकिन ज्यों ही हम अपने समाज में इस तरह का परिवर्तन करने लगेंगे, एक कुहराम मच जायगा। इस तरह का परिवर्तन समाज की प्रारम्भिक अवस्था में ही संभव था। ऐसे समाज में रेल और तार के लिए कोई गुंजायश नहीं। सैनिक दृष्टि से तो यह समाज बहुत ही कमजोर होगा और आज का कोई भी पड़ोसी राष्ट्र जब चाहे उसे निगल सकेगा। ऐसे समाज के लोगों का

रहन-सहन भी बहुत नीचे दर्जे का होगा। क्योकि हर आदमी पर आमदनी बहुत ही कम पड़ेगी। इसलिए यदि इस तरह के परिवर्तन वर्तमान बुराइयों से बचने के लिए सभव भी हो, तो भी अनेक कारणो से हमें उससे बाज ही आना है।

यह उपाय काम मे लाया नहीं जा सकता। इस उपाय को काम मे लाने के लिए एक निर्मम तानाशाही चाहिये। क्योंकि जिनके पास धन है वे ऐसे समाज मे रहने को न तैयार होंगे, न उसके लिए अपना धन छोड़ना चाहेंगे। किन्तु ऐसी तानाशाही के लिए भी उस समाज में कोई आधार न होगा। इसलिए हमे दूसरे उपाय की ओर जाना पड़ेगा।

असमता दूर करने का समाजवादी उपाय

असमता दूर करने का जो दूसरा तरीका है उसे हम आप समाजवादी तरीका कह सकते है। धन का सग्रह कैसे होता है, यह हम जान चुके हैं। इसलिये समाजवादी कहता है कि उत्पादन के सभी साधनो पर से व्यक्तिगत अधिकार को खतम कर दीजिये ओर उसके बदले समूचे समाज का अधिकार उसपर स्थापित कीजिये।

उत्पादन के साधनो पर ज्यों ही हम व्यक्तिगत अधिकार नष्ट कर देंगे और उन्हे पूरे समाज की सम्पत्ति मान लेंगे, त्योंही आर्थिक-शोषण की जड़ कट जायगी। आर्थिक-शोपण जब समाप्त हुआ तो फिर आर्थिक असमता रह नहीं जायगी। और, ज्योंही आर्थिक असमता दूर हुई, हमारे समाज का एक मौलिक अभिशाप दूर हो गया। मेहनतकश के शोषण से ही व्यक्तिगत हाथों मे धन का सग्रह होता है। उत्पादन के साधन पर जब सामाजिक अधिकार कायम हो गया तो फिर दूसरे के लिए मजदूरी या भाड़े पर काम करने का सवाल ही कहाँ उठेगा ? सब लोग अपने लिए काम करेंगे, व्यक्तिगत रूप में नहीं, सामूहिक रूप से। जो कुछ उत्पादन

होगा वह नफे के लिए नहीं, बल्कि सार्वजनिक उपभोग के लिए। सामाजिक अधिकार का मानी यह है कि सब धन पर सबका अधिकार है और सबको उसके उपभोग की गारंटी है। जो कुछ पैदा होगा, उसका बँटवारा पहले काम के रूप और परिमाण के अनुसार होगा। किन्तु धीरे-धीरे सबसे योग्यता के अनुसार काम लेने और आवश्यकता के अनुसार देने की व्यवस्था स्थापित की जायगी। पैदावार का बँटवारा करते समय उसका कुछ अंश राज्य और रक्षा के लिए, स्कूल और अस्पताल के लिए, आर्थिक विकास के लिए और दूसरे सार्वजनिक कार्यों के लिए रख लिया जायगा।

आज हम समझ चुके होंगे कि समाजवाद का मौलिक सिद्धान्त क्या है? उत्पादन के सभी साधनों पर समाज भर का अधिकार हो—समाजवाद की मूल भित्ति यही है। समाजवादी ढंग पर समाज का पुनर्निर्माण तबतक संभव नहीं है, जबतक उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत अधिकार उठा नहीं दिया जाता।

यदि कोई नया राज्य समाजवाद के आधार पर समाज का संगठन करना चाहे, तो संभव है कि तुरंत वह इसे काम में लाने में समर्थ न हो सके। लेकिन यदि उसे सफल होना है तो उत्पादन के उन सभी बड़े साधनों पर सामाजिक अधिकार स्थापित करना ही पड़ेगा जो देश के आर्थिक जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव रखते और उसकी कुंजी अपने हाथ में रखते हैं।

विकसित समाज में उत्पादन के साधनों के साथ ही विनिमय और वितरण के साधन भी उन्नति करते जाते हैं—जैसे बैंक, रेल-तार, व्यापारिक संस्थायें आदि। उन पर भी सामाजिक अधिकार स्थापित करना होगा।

अब हम यह बता सकते हैं कि राजसत्ता हाथ में आने पर समाजवाद की स्थापना के लिए जवाहर लाल जी को क्या क्या करना चाहिये।

समाजवाद की रूपरेखा

आज के किसी भी समझदार व्यक्ति को यह मानने में आपत्ति न होगी कि समाज के विकास की अगली मंजिल समाजवाद है। किन्तु समाजवाद क्या है, इस प्रश्न पर लोग इसी तरह एक राय नहीं रखते। समाजवादी विचारको और कार्यकर्ताओ द्वारा समय-समय पर समाजवाद और समाजवादी समाज के विभिन्न चित्र उपस्थित किये जाते रहे हैं। यदि हम समाजवाद की मुख्य विचारधाराओं मे से एक अर्थात् मार्क्सवाद को ले लें, तो मतभेद का क्षेत्र निश्चय ही बहुत सीमित रह जाता है। पूरी तरह समाप्त वह फिर भी नही होता। मार्क्स में ही आस्था रखकर चलनेवाले ऐसे समाजवादी आंदोलन मिलेंगे जो एक दूसरे से गहरा मतभेद ही नहीं रखते, आपस में झगड़ते और लड़ते भी रहते हैं। उदाहरण के लिए स्टालिनवादी और ट्राट्स्कीवादी दोनों ही मार्क्स के झण्डे के नीचे चलने का दम भरते हैं, पर उनका मतभेद इतना गहरा है कि वे एक दूसरे के खून के प्यासे हैं। इनमें से कौन-सी मार्क्स-वादी विचारधारा के लोग समाजवाद का सही चित्र उपस्थित करते हैं? जो इन दोनो लड़नेवाले खेमो मे से किसी एक के साथ नहीं हैं वे यही उत्तर देंगे कि दोनों में से कोई भी सही तस्वीर नही पेश करता।

हमारे अपने देश में कम्युनिस्ट और रायवादी दोनों ही मार्क्स की कसमें खाते हैं, किन्तु मार्क्स की दुहाई देते हुए वे जिस प्रकार की नीति बरतते हैं उससे पाठक परिचित ही हैं। इन लोगो के लिये मार्क्सवाद का अर्थ मैक्सवेल के एजेंट बनकर काम करना और भारतीय क्रांतिकारियो की

खुफियागिरी करना भी रहा है। दोनों ही मार्क्सवादी होने का दावा करते हैं, पर दोनो एक दूसरे के कट्टर शत्रु हैं। इनके अलावा भी मार्क्स की पताका को उड़ानेवाले छोटे-छोटे कई समूह इस देश मे हैं, जिनमें इस विषय पर सहमति नहीं है कि मार्क्सवाद क्या है। मार्क्सवाद के सम्बन्ध मे प्रचलित भ्रम और प्रतिस्पर्धी दावों को देखते हुए, मेरी राय मे भारत के समाजवादी आंदोलन को, मार्क्सवादी विचारधारा, मार्क्स की मृत्यु के पश्चात् के ससार के इतिहास तथा अपने देश की अवस्था एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए समाजवाद की अपनी रूपरेखा तैयार करनी चाहिये। मार्क्सवाद समाज के परिवर्तनों की व्याख्या करनेवाला समाजविज्ञान एव समाज के परिवर्तन की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। ऐसी अवस्था में मार्क्सवादी विचारधारा में कट्टरपन के लिये अथवा 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की मनोवृत्ति के लिए स्थान नही हो सकता। जो लोग एक ओर मार्क्सवाद को विज्ञान कहकर पुकारते हैं और दूसरी ओर उसमें कट्टरपन का समावेश करते हैं, वे उसके प्रति बड़ा अन्याय करते हैं। विज्ञान में अन्तिम सत्य जैसी वस्तु नहीं होती। विज्ञान की प्रगति मनुष्य के ज्ञान-भण्डार से मिथ्या ज्ञान को उत्तरोत्तर दूर करने से होती है। यदि मार्क्सवाद विज्ञान है तो मार्क्स अन्तिम सत्यों का प्रतिपादन नहीं कर सकते थे। वे अपने पूर्ववर्ती विचारकों की अपेक्षा अन्तिम सत्यों के अधिक निकट थे, यही कहा जा सकता है। आज जब कि मार्क्स के जमाने की अपेक्षा ज्ञान का भण्डार कहीं अधिक विस्तृत हो गया है और पूँजीवादी समाज के सम्बन्ध मे हमारा अनुभव और पर्यवेक्षण भी कहीं अधिक है, हम ऐसी स्थिति में हैं कि मार्क्स की अपेक्षा निकटतर सत्य के दर्शन कर सकें।

दो मंजिलें

समाजवादी समाज के निर्माण की दो मंजिलें हैं—पहली संक्रमण-काल की मंजिल अर्थात् पूँजीवाद से समाजवाद की ओर जाने की मंजिल और

दूसरी वह मंजिल जब कि समाजवाद की स्थापना हो चुकी रहती है। यह स्पष्ट है कि सक्रमण कालीन समाज का रूप वर्तमान अवस्था तथा अन्तिम लक्ष्यो को ध्यान मे रखकर ही निर्धारित किया जायगा। यहाँ मैं केवल समाजवाद के अन्तिम लक्ष्यो पर ही विचार करूँगा। समाजवाद का लक्ष्य है मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त ; सभी के लिए आत्मविकास के समान अवसर का प्रवन्ध ; समाज के भौतिक एव नैतिक साधनों का पूरा विकास तथा वर्ग विशेष के मुनाफे को नहीं बल्कि पूरे समाज की आवश्यकता एव इच्छा को ध्यान मे रखते हुए उनका उपयोग ; राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा सामाजिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा दूसरे प्रकार की सेवाओ का उन सबके बीच न्यायपूर्ण बँटवारा जो अपने परिश्रम द्वारा समाज की सेवा करते हैं। समाज के संघटन की जिस प्रणाली से ये उद्देश्य सिद्ध होते हैं उसी को हम समाजवाद कहेगे।

मेरी राय मे इन उद्देश्यों की सिद्धि तभी हो सकती है जब कि प्रचलित समाज में आमूल परिवर्तन किये जायँ और भावी समाज का आर्थिक एव राजनीतिक निर्माण नीचे बताये गये आधार पर किया जाय।

सबसे पहले तो पूर्ण राजनीतिक स्वाधीनता की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों मे भारत का स्वतन्त्र राष्ट्र बन जाना आवश्यक है। ब्रिटिश शासन के क़ायम रहते हुए समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती, इसे दुहराने की जरूरत नहीं है।

दूसरी आवश्यकता आजकल के उस सुविधाप्राप्त वर्ग को हटाने की है जिसके हाथ में आज के समाज मे आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति केन्द्रीभूत है और जो अपनी शक्ति के कारण इस अधिकार को परम्परागत रूप में बनाये रखने का प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दों में, देशी नरेशों, जमींदारों और पूँजीपतियो को अपने आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुत्व को छोड़ने के लिए विवश करना होगा।

ब्रिटिश सत्ता के देश से हटने के बाद देशी नरेशो की सत्ता, जमींदारी तथा पूँजीवादी पद्धति का अन्त करना अपेक्षाकृत सरल कार्य होगा। यदि भारतीय जनता ब्रिटिश राज का अन्त करने में समर्थ हुई तो सामन्तवाद और पूँजीवाद का अन्त करने से। उसे कोई शक्ति रोक न सकेगी। उसके मार्ग में बाधक शक्ति केवल एक ही हो सकती है—जनता की अपनी राजनीतिक चेतना के विकास की अवस्था।

देशी नरेशों की सत्ता की समाप्ति से कोई ऐसी समस्या नहीं उत्पन्न होती जिसका हल समाजवाद को ढूंढना हो। उसका प्रबन्ध तो पूँजीवाद ने ही पहले से कर रखा है। देशी नरेशो को उनकी गद्दियो से हटाकर साधारण नागरिकों की स्थिति मे लाना होगा। उनकी रियासतें भौगोलिक सीमा, आर्थिक साधन तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध को ध्यान मे रखकर वैज्ञानिक ढग से निर्धारित प्रदेशों का अग बन जायँगी।

जमींदारी प्रथा का अन्त भी प्रचलित भूमि व्यवस्था के पुनः सघटन की दिशा मे पहला ही कदम है। यह प्रश्न अवश्य सिद्धात और व्यवहार सम्बन्धी अनेक जटिलताओं से भरा हुआ है। केवल यह कह देने से कि समाजवादी भारत में जमींदार न होंगे, हम यह नही बतलाते कि हम देश में किस प्रकार की कृषि का विकास करना चाहते हैं। समाजवादी कृषि का जो चित्र मेरे सामने है, उसकी व्याख्या मैं इस लेख में आगे करूँगा।

पूँजीवाद का विनाश निस्सन्देह समाजवाद की दिशा में बहुत बड़ा कदम है, किन्तु केवल पूँजीवाद का अन्त हो जाने से समाजवाद की स्थापना नहीं हो जाती। यह तो केवल निषेधात्मक अग हुआ, जिसके साथ विधेयात्मक अंग को जोड़ना है।

खेती का सवाल

समाजवाद की आर्थिक रूपरेखा पर विचार करते हुए पहले हम खेती के

सवाल को लें। हमारे देश की भूमि-व्यवस्था अवर्णनीय रूप से जटिल है। किन्तु सभी प्रचलित भूमि-व्यवस्थाओ में एक बात समान रूप से पाई जाती है। वह यह है कि सभी व्यवस्थाओं मे मुट्ठी भर जमीन के मालिक कहे जानेवालों अथवा महजनों के लाभ के लिए खेत को जोतनेवाले सच्चे किसान का शोषण किया जाता है। इन सभी व्यवस्थाओ को खत्म करके इनके स्थाना पर एक नयी भूमि-व्यवस्था कायम करनी होगी। समाजवादी कृषि की स्थापना के सिलसिले मे हमे सहयोग तथा सामूहिक कृषि की दो मंजिलो से गुजरना होगा।

जमींदारी प्रथा की समाप्ति के पश्चात् ज्यादा बडी जोतों को छोटी जोतों में तोड़ने और बिलकुल छोटी जोतों को इतनी बडी बनाने के उद्देश्य से कि उनपर खेती करना आर्थिक दृष्टि से अलाभकर न हो, जमीन का फिर से बॅटवारा करना जरूरी होगा। एक निश्चित नाप से वड़े रकबे की जमीन कोई किसान नही रख सकेगा। उदाहरण के लिए ३० एकड वह ज्यादा से ज्यादा जमीन होगी जो किसी किसान के पास रह सकती है। इसी प्रकार ५ एकड जमीन का वह छोटे-से-छोटा टुकडा हो सकता है जिससे कम किसी किसान-परिवार के पास न होना चाहिये। किसी भी ऐसे व्यक्ति को जमीन न दी जायगी जो गाव का रहनेवाला न हो और खुद खेती न करता हो।

गाव मे की जमीन का मालिक कानून की नजर मे, अलग-अलग व्यक्ति न होकर, समूचा गाँव ही होगा और अलग-अलग व्यक्तियो के साथ खेत का वन्दोवस्त करना, राज्य के द्वारा वनाये गये नियमों के अनुसार, ग्राम-पचायतों का कार्य होगा। इस प्रकार वन्दोवस्त की गई जमीन पर किसानो का एक प्रकार का मालिकाना हक होगा। किसानों का उनकी जमीनों पर मौजूदा मालिकाना हक माना जायगा—उन जमीनों को छोड़कर जिनके वहुत वड़ी या वहुत छोटी होने के कारण घोर विषमता को दूर करने की दृष्टि से

फिर से बँटवारा करना और उनके रकबों में तबदीली करना जरूरी हो जायगा। किन्तु किसानों का यह मालिकाना हक इसी बात तक महदूद रहेगा कि किसान अपनी जोत रकबे के हिसाब से गाँव की जमीन की उपज में से अपना हिस्सा पा सकें। किसी किसान को यह अधिकार न होगा कि ग्राम-पंचायत के अलावा दूसरे किसी के हाथ जमीन की बिक्री कर सके। खेती अथवा खेती से सम्बद्ध दूसरे काम किसान व्यक्तिगत रूप से अलग-अलग न करेंगे। प्रत्येक ग्राम-पचायत अन्य कार्यों के साथ किसानों की सहयोग-समिति का कार्य भी करेगी। खरीदने, बेचने और उधार लेने आदि के सभी काम सहयोग समिति के द्वारा ही होंगे। खेत पर काम करनेवाले सभी व्यक्तियों को राज्य की ओर से मजदूरी के बारे में बनाये गये कानूनों के मुताबिक नकद या अनाज के रूप में मजदूरी दी जायगी और उपज में से लागत को निकाल कर जितनी पैदावार बच रहेगी, वह जोत के रकबे के मुताबिक किसानों में बाँट दी जायगी।

यह समाजवादी कृषि की पहली मंजिल, सहयोगी कृषि की मंजिल है। अगली मजिल सामूहिक कृषि की मंजिल होगी जिसमे खेती की जमीन में किसानों की व्यक्तिगत मिल्कियत नहीं रह जाती। (रूस में सामूहिक कृषि में लगे हुए प्रत्येक किसान तरकारी उगाने, चिड़िया पालने या इसी तरह के दूसरे कामो के लिए तीन एकड़ तक जमीन निजी तौर पर रख सकता है) और समूचे गाँव की जमीन का इन्तजाम गाँव की सामूहिक कृषि-समिति द्वारा होता है। रूस में सामूहिक कृषि की स्थापना लोगों को काफी कष्ट देकर और डिक्टेटरी तरीके पर हुई थी। कुछ लोगो का अनुमान है कि सामूहिक खेती को सफल बनाने के लिए सोवियत रूस में दो करोड़ व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा। मैं नहीं चाहता कि इतने बड़े पैमाने पर किसानों को यातना दी जाय और न समाजवादी सिद्धान्त ही इसकी अनुमति देता है।

जमींदारी के खातमे, जमीन के फिर से बँटवारे और बड़ी जमीनो को छोटी जोतों मे बाँटने में खेती में लगी हुई जनता के १५ से लेकर २० फीसदी जनता पर राज्य का दबाव पड़ेगा, पर सामूहिक खेती के लिए ६० से ७० फी सदी जनता को दबाना पड सकता है। जनता के नाम पर बोलने और काम करनेवाली किसी भी सस्था के लिए इतना बड़ा दमन किसी भी तरह जायज नही हो सकता। ८० प्रतिशत के लाभ के लिए २० प्रतिशत के साथ जबर्दस्ती की जा सकती है, पर ७० फी सदी किसानो के साथ 'उन्हीं की भलाई के लिए' जबर्दस्ती नहीं की जा सकती। सहयोगी कृषि के लिए ही बहुतो पर दबाव डालने की जरूरत पड़ेगी ; किन्तु दबाव डालने, राजी करने तथा कुछ आर्थिक सुविधाएँ देने की नीतियो के बुद्धिमत्तापूर्ण सम्मिश्रण से सहयोगी कृषि मे सफलता मिल सकती है। किन्तु सामूहिक खेती के लिए बडे पैमाने पर लोगों की इच्छा के विरुद्ध कार्रवाई करनी पड़ेगी। ऐसा करना समाजवाद के ही सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा, क्योंकि समाजवाद शोषित जनता की इच्छा को लेकर चलता है। ऐसी दशा मे सामूहिक कृषि की प्रगति धीमी होगी, और प्रचार तथा प्रदर्शन के द्वारा जनता में जिस गति के साथ उसके लिए क्षेत्र तैयार होगा, उसी गति के साथ वह आगे बढ़ सकेगी। किन्तु कृषि सम्बन्धी जो नयी बस्तियाँ बसाई जायँ उनमे आरम्भ से ही सामूहिक खेती अपनायी जा सकती है।

उद्योग-धन्धे

आज की व्यक्तिगत खेती को सामूहिक खेती का रूप देने पर खेती के धन्धे में लगे हुए बहुत से लोग बेकार हो जायँगे। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनता को उद्योग-धन्धो में जगह देनी पड़ेगी, खासकर खेती के सहायक उद्योग-धन्धों में। अब हम समाजवादी उद्योग-प्रणाली पर विचार करेंगे। समाजवादी भारत मे बड़े और छोटे पैमाने पर चलनेवाले दो प्रकार के उद्योग-

धन्धे होंगे। सभी बड़े पैमानेवाले उद्योग-धन्धों का स्वामित्व तथा प्रबन्ध संघ की सरकार अथवा प्रान्तीय सरकारों का होगा। मजदूर संघो के प्रतिनिधियों का नीचे से लेकर ऊपर तक कारखानों के प्रबन्ध में उचित भाग होगा।

छोटे पैमाने पर चलनेवाले सभी उद्योग धन्धे, मेरी राय में, सहकारी उत्पादक समितियों द्वारा चलाये जाने चाहिये। धन्धे का स्वामित्व और प्रबन्ध इन्हीं समितियों के हाथ में होगा। इन समितियों के संचालन-सम्बन्धी नियम बनाने के अतिरिक्त राज्य उनके कार्य में कोई हस्तक्षेप न करेगा। राज्य द्वारा सचालित तथा उत्पादक समितियों द्वारा सचालित उद्योग-धन्धो के अतिरिक्त शहर की म्यूनिसिपैलिटियो द्वारा सचालित उद्योग-धन्धे भी होंगे। म्यूनिसिपैलिटियाँ यदि बड़े धन्धो को नही, तो मध्यम प्रकार के और छोटे पैमानेवाले उद्योग-धन्धो का सचालन कर ही सकती हैं। समाज द्वारा सचालित इन उद्योग धन्धों के प्रबन्ध मे स्वभावतः मजदूरों का उचित भाग होगा। सहयोग समितियाँ तथा समाज द्वारा संचालित उद्योग-धन्धो की बात मैं दो दृष्टियों से कहता हूं। एक तो बेकार जनता को, जिसकी तादाद खेती और बडे उद्योग-धन्धों के क्षेत्रो में क्रान्ति होने के कारण और भी बढ जायगी, राज्य की ओर से आनेवाले कुछ दिनो तक काम न दिया जा सकेगा; दूसरे, मैं यह भी नही चाहता कि उद्योग तथा व्यवसाय के क्षेत्र में राज्य एकाधिकार प्राप्त कर ले। जैसा कि हम रूस मे पाते हैं, समाजवाद के अन्तर्गत खतरा यह है कि कहीं राज्य धीरे-धीरे समाप्त हो जाने के बदले नागरिकों के समस्त जीवन को अपने चगुल में जकड़ रखनेवाली अन्यायी शक्ति का स्थान न ले ले। इस प्रकार के एकाधिकार के फलस्वरूप एक दल के उस प्रकार के सर्वग्रासी अधिनायकत्व की स्थापना होती है जिसे हम रूस में देख सकते हैं। उद्योग-धन्धो का प्रबन्ध और स्वामित्व राज्य की नौकरशाही के हाथो में ही केन्द्रीभूत

न करके और ग्रामों को लोकतान्त्रिक जन-राज्य का रूप देकर हम ऊपर बताये गये खतरे को बहुत हद तक दूर कर देते हैं।

व्यापार के क्षेत्र में मेरे दिमाग में जो तस्वीर है वह यह है—विदेशी व्यापार पूरी तरह राज्य के हाथ में होगा। देश का आन्तरिक व्यापार राज्य, स्थानीय मण्डलों (पचायतों तथा म्यूनिसिपैलिटियों) और सहयोग समितियों में बँटा हुआ होगा। बैंक का सारा कारोबार राज्य के हाथों में होगा।

इस प्रकार मेरे समाजवाद की यह आर्थिक रूपरेखा हुई—

(१) ग्राम-पचायतों द्वारा सचालित सहयोगी कृषि।
(२) नई बस्तियों में सामूहिक खेती।
(३) राज्य के स्वामित्व तथा प्रबन्ध में बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धे।
(४) समाज के स्वामित्व और प्रबन्ध में चलनेवाले (पचायतों द्वारा सचालित) व्यवसाय।
(५) सहयोगी उत्पादक समितियों द्वारा सचालित छोटे पैमानेवाले व्यवसाय।

मेरे दिमाग में समाजवाद का जो चित्र है, अब मैं उसके राजनीतिक अंग की ओर आता हूँ।

लोकतंत्र

समाजवादी भारत में राज्य पूर्णतः लोकतांत्रिक होगा। बिना लोकतन्त्र के समाजवाद का अस्तित्व सम्भव नहीं। आजकल भ्रमवश बहुत से लोग यह सोचते हैं कि समाजवादी राज्य में श्रमिक वर्ग का अधिनायक तन्त्र होना आवश्यक है। यह धारणा मार्क्स की शिक्षा के विरुद्ध है। श्रमिक वर्ग के अधिनायक तन्त्र का स्थान केवल पूँजीवाद से समाजवाद के सक्रमण-काल में ही हो सकता है। इस सक्रमण-काल में भी अधिनायक तन्त्र की स्थापना प्रत्येक अवस्था में अनिवार्य नहीं है। मार्क्स ने इंगलैण्ड जैसे पूँजीवादी राज्य के सम्बन्ध में, जहाँ राजनीतिक लोकतन्त्र का बोलबाला था और जहाँ

कोई बड़ी स्थायी सेना नहीं थी, कल्पना की थी कि वहाँ लोकतान्त्रिक प्रणाली के द्वारा ही समाजवाद की स्थापना हो सकती है। किन्तु ऐसे विरल उदाहरणों को छोड़कर आम तौर पर मार्क्सवादी विचारधारा में संक्रमण-काल में अधिनायक तन्त्र की स्थापना आवश्यक मानी गई है। किन्तु मार्क्सवाद का यह एक मूलभूत सिद्धान्त है कि संक्रमण-काल का अन्त होते ही अधिनायक-तन्त्र का भी अन्त हो जाय। जब पुराने शासकवर्गों का अन्त हो जाय और समाज केवल श्रमिकों का समाज रह जाय, उस अवस्था में भी अधिनायक तन्त्र के बने रहने की कल्पना करना मूर्खता होगी क्योंकि श्रमिक वर्ग का यह अधिनायक तन्त्र अपने लिए नहीं हो सकता।

वर्तमान समाज से समाजवाद की ओर संक्रमण भारतवर्ष में लोकतन्त्रात्मक रूप धारण करे अथवा अधिनायकतन्त्रात्मक? मेरा निजी विचार है कि वह लोकतन्त्रात्मक रूप ग्रहण करेगा—किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार श्रमिक वर्ग के अधिनायक तन्त्र का अर्थ रूस की कम्युनिस्ट पार्टी की भाँति दल-विशेष का अधिनायकत्व नहीं है। श्रमिक वर्ग का अधिनायकतन्त्र पूरे श्रमिक वर्ग का अधिनायकत्व है, भारतवर्ष अथवा जारशाही के बाद के रूस जैसे औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में इस अधिनायक तन्त्र का अर्थ केवल मजदूरों का नहीं बल्कि मजदूरों, किसानों तथा मध्यम श्रेणी के शोषित वर्गों का सम्मिलित अधिनायकत्व होगा। इन वर्गों के एक या एक से अधिक दल हो सकते हैं। इन दलों को इस बात की स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे सम्मिलित रूप से अधिनायक तन्त्र में भाग लें या इस अधिनायक तन्त्र के अन्तगत रहते हुए स्वाधीनतापूर्वक कार्य कर सकें। श्रमिक वर्ग के अधिनायक तन्त्र का यह अर्थ कभी भी नहीं था कि मजदूर वर्ग या दूसरे श्रमिक वर्गों का दमन

किया जायगा, उसका अर्थ केवल शोषक वर्गों का और उनकी राजनीतिक तथा आर्थिक सस्थाओ का दमन ही है।

समाजवाद के अन्तर्गत लोकतन्त्र के प्रश्न पर कुछ विस्तार के साथ विचार करने की आवश्यकता है। सर्व प्रथम समाजवाद के अन्तर्गत लोकतन्त्र का अर्थ यह है कि किसी दल-विशेष का शासन न हो, मजदूरो की एक से अधिक राजनीतिक पार्टियाँ हो सकती हैं, मजदूरों और किसानों के सहकारी संघों आदि की अपनी विभिन्न पार्टियाँ हो सकती हैं जो स्वाधीनतापूर्वक कार्य कर सकती हैं। समाजवाद के अन्तर्गत लोकतन्त्र का अर्थ यह होना चाहिए कि विचार प्रकट करने और राजनीतिक सस्थाओं की स्थापना करने की पूर्ण स्वाधीनता है। मजदूर सघो, सहकारी समितियो और इस प्रकार की दूसरी सस्थाओ को अपने समाचारपत्र प्रकाशित करने, अपनी रेडियो-व्यवस्था रखने और अपना विद्यालय चलाने की स्वाधीनता होनी चाहिए।

समाजवाद के अन्तर्गत लोकतन्त्र का दूसरा अर्थ यह है कि मजदूर-संघ राज्य के अग और उसके अनुचर न होकर राज्य का समर्थन करनेवाली स्वाधीन सस्थाएँ हो और वे सरकार के दिन-प्रतिदिन के कार्यों पर नियन्त्रण रख सके। रूस मे मजदूर सघो को कतई आजादी नही है और उन्हे इस सिद्धांत के आधार पर राज्य का अनुचर बनाया गया है जब कि राज्य मजदूरो का राज्य हो जाता है तो मजदूरो की सभी सस्थाये भी राज्य का अनुचर बन जाती है। रूस मे राज्य और शासन को एक समझ लिया गया है। कोई खास राज्य मजदूरो का राज्य हो सकता है। किन्तु समय विशेष की सरकार जानकर या अजान मे मजदूरों के हितो के विरुद्ध भी कार्य कर सकती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए मजदूर वर्ग की स्वतन्त्र सस्थाएँ भी होनी चाहिएँ—और समाजवादी समाज मे मजदूरसघों का महत्व सिर्फ सरकार से ही घटकर होगा—जो इस स्थिति मे हों कि सत्तारूढ़ सरकार पर नियन्त्रण

रख सकें, उसे गलत रास्ते पर जाने से रोक सकें और जरूरत पड़ने पर उसे बदल सके ।

इस प्रकार मेरी दृष्टि में समाजवादी भारत का जो रूप है वह आर्थिक एव राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से पूर्णतः लोकसत्तात्मक होगा । इस लोक-तन्त्र में मनुष्य न तो पूँजीवाद का गुलाम होगा न राज्य का, मनुष्य स्वतत्र होगा । वह समाज की सेवा करेगा और समाज उसे बदले मे जीविका के साधन प्रदान करेगा । किन्तु एक सीमा के भीतर वह अपना धन्धा और समाज में अपना पद स्वय चुनने के लिए स्वतन्त्र होगा । वह अपने विचारों को व्यक्त करने में स्वतन्त्र होगा और उसे अपने नैतिक विकास का पूरा अवसर प्रदान किया जायगा ।

एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच शारीरिक और मानसिक विकास के अन्तर को छोड़कर और कोई अन्तर न होगा, क्योंकि आमदनी में अधिक अन्तर न होगा ।

समाजवाद—किस रास्ते ?

भारतीय समाजवाद की रूपरेखा क्या होगी, इस सम्बन्ध में मैं लिख चुका हूँ। अब प्रश्न उठता है कि भारत में समाजवाद की स्थापना किस प्रकार होगी।

यह साफ है कि समाजवादी भारत आप ही आप इतिहास के गर्भ से निकल कर नहीं आ कूदेगा। आज के भारत और समाजवादी भारत के बीच सक्रान्ति का एक समय होगा। यह समय लम्बा होगा या छोटा यह भीतरी और बाहरी परिस्थितियों एव समाजवादी नीति की बुद्धिमानी या बेवकूफी पर निर्भर करता है। लेकिन सक्रान्ति काल से हमें गुजरना ही होगा, यह निश्चित है।

इसके पहले मैंने लिखा है—'यह स्पष्ट है कि सक्राति काल का रूप वर्तमान परिस्थितयों और अन्तिम उद्देश्यो पर यानी समाजवाद की उस रूप-रेखा पर निर्भर करेगा जो हमारा लक्ष्य है।' उस लक्ष्य की रूपरेखा हमने तय कर ली है। पहले उस रूपरेखा को निश्चित कर लेना आवश्यक था क्योंकि हमे कहाँ जाना है यह जान कर ही हम अपनी राह चुन सकते हैं।

खैर, अब हमने अपनी मंजिल जान ली और यह भी जान लिया कि हमें कहाँ से शुरू करना है, यानी हमने देश की परिस्थिति भी समझ ली। अब देखना यह है कि वह कौन-सा रास्ता है जो हमे यहाँ से उस आखिरी मंजिल तक पहुँचा सकता है। क्या बहुत से रास्ते हैं, जिनमें से किसी एक को हम अपनी मर्जी से चुन ले सकते हैं? मेरा विश्वास है, सही रास्ता सिर्फ एक ही है। उसके अतिरिक्त दूसरे रास्ते हमे मंजिल से दूर कर देंगे; हमारे लक्ष्य से भटका देंगे। इसलिए हमें समाजवाद तक पहुँचने का रास्ता चुनने में चौकस रहना है।

शान्ति का रास्ता

इस रास्ते के चुनाव में समाजवाद के प्रवर्तक कार्लमार्क्स से हमें क्या मदद मिल सकती है, यह देख लें। मजदूरों की पहली अन्तर्राष्ट्रीय मजलिस जब १८७२ में हेग में बैठी तो कार्यपद्धति पर बोलते हुए उन्होंने यों कहा था—"अपनी नयी संस्था की स्थापना के लिए मजदूरों को एक दिन राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करना ही पड़ेगा। हम जोर देकर नहीं कह सकते कि इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक ही रास्ता होगा। रास्ते के चुनाव के पहले हमें भिन्न देशों की संस्थाओं, प्रणालियों और परम्पराओं पर ध्यान देना होगा। इसमें शक नहीं कि इंग्लैण्ड और अमेरिका ऐसे देश हैं—जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, उन देशों मे आपके देश हालैण्ड को भी शामिल किया जा सकता है—जहाँ यह राज-सत्ता शांतिपूर्ण तरीकों से भी प्राप्त की जा सकती है। लेकिन सभी देशों की स्थिति ऐसी नहीं है।" यों मार्क्स ने समाजवाद स्थापित करने के लिए साफ-साफ दो रास्ते बताये हैं। एक है शांति का रास्ता और दूसरा हिंसा का रास्ता। इन दोनों रास्तों में से किसको अपनाया जाय, यह हर देश की परिस्थिति पर निर्भर करता है। रूस में प्रजातन्त्र नहीं था,

इस लिए लेनिन ने हिंसात्मक क्रांति के रास्ते को चुना; यद्यपि आज इसपर सन्देह किया जा सकता है कि विधान-परिषद् में अपना बहुमत नहीं देखकर उसे भंग कर देने का उनका कार्य कहाँ तक न्यायोचित था। इंग्लैंड मे प्रजातन्त्र है और मार्क्स के जमाने की अपेक्षा उसका रूप अधिक विकसित हो चला है। फलतः हम देखते हैं कि वहाँ का मजदूर-दल प्रजातांत्रिक पद्धति से ही सरकार की बागडोर अपने हाथ में ले चुका है और अपनी समाजवादी योजनाओ को काम में ला रहा है।

भारत मे न तो प्रजातन्त्र है और न भारतीय समाज का आधार ही प्रजातत्र पर है। भारत में प्रजातन्त्र नहीं है, क्योंकि इस पर अंग्रेजों का राज है, जिस राज का आधार जनता की इच्छा नहीं बल्कि तलवार की ताकत है। यों ही भारत का समाज राजाओं, नवाबों, जमींदारों, कुलीन लोगों, छोटी जाति के लोगो और अन्ततः अछूतों मे बंटा हुआ है। ये विभाजन बिल्कुल अप्रजा-तान्त्रिक हैं। इसमें प्रजातंत्र की कहीं भावना भी नहीं है।

पिछले कितने वर्षों से भारत एक स्वतंत्र प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए संघर्ष कर रहा है। इस संघर्ष का हथियार हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस है, यह सब कोई जानते हैं। कांग्रेस के प्रयत्नों से देश आज सफलता के नजदीक पहुँच चुका है, किन्तु अब भी हमे काफी जोर लगाना है। हम समाजवाद तक किस रास्ते पहुँच सकेंगे, यह बहुत कुछ हमारे इन प्रयत्नों के नतीजों पर निर्भर करता है। अभी यह साफ नहीं हुआ है कि नतीजा क्या होने जा रहा है। फिर हम इस प्रक्रिया के सिर्फ दर्शक मात्र नहीं हैं बल्कि हमारा उसमें सक्रिय सहयोग है और उस नतीजे को प्रभावित करने के लिए हम कुछ नहीं उठा रख रहे हैं

आज की स्थिति में समाजवाद तक पहुंचने के संक्रांति-काल के दो विभाग हैं, यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पहला विभाग भारत में एक स्वतंत्र

प्रजातन्त्र की स्थापना तक का है और दूसरा जब हम उस प्रजातन्त्र को समाजवादी प्रजातन्त्र में रूपान्तरित करेंगे, तबके लिए है।

पहले मैं दूसरे ही विभाग को लेता हूँ। मान लीजिये कि भारत में हमने एक पूर्ण प्रजातन्त्र राज्य कायम कर लिया। ऐसे प्रजातन्त्र में यदि हम ऐतिहासिक समताओं पर ध्यान दें और मार्क्स और लेनिन के बताये सिद्धान्तों को मानें, तो निस्सन्देह ही पूँजीवादी वर्ग सबसे ऊपर होगा। ऐसी हालत में श्रमिक वर्ग और शहर एव देहात के गरीब किस तरह पूँजीपतियों को उस सर्वोच्च्य स्थान से पदच्युत करके समाजवाद की स्थापना कर सकेंगे? वे प्रजातांत्रिक पद्धति से काम लेंगे या हिंसात्मक क्रांति करेंगे?

जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो प्रजातांत्रिक पद्धति को ही पसन्द करूंगा। याद रखिये, मैंने समाजवाद की रूपरेखा तैयार करते हुए भारत के समाजवाद को प्रजातांत्रिक समाजवाद का रूप दिया था। मार्क्सवाद का यह स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है कि समाजवाद प्रजातत्र के बिना जीवित रह नहीं सकता। चीन के कम्युनिस्ट नेता माव-से-तुंग का यह कहना कि समाजवाद की स्थापना प्रजातत्र के द्वारा ही हो सकती है, गलत है। हिंसात्मक क्रांति और अधिनायकतन्त्र द्वारा भी समाजवादी प्रजातत्र के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है। लेकिन जिस एक ही देश मे इसकी परीक्षा की गई है, वहाँ हम कुछ दूसरा नजारा देखते हैं। रूस में आज जो राज्य है, वह एक पूरा नौकरशाही राज्य है। वहाँ प्रजातत्र बिल्कुल नहीं है। मैं इतिहास से सबक लेने का हामी हूँ। अगर भारत के समाजवादी आन्दोलन को प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के इस्तेमाल की आजादी न हो, तो फिर पूँजीवादी शासन को नाश करने का सिर्फ एक ही रास्ता रह जाता है और वह रास्ता है हिंसात्मक क्रांति और अधिनायकतन्त्र का। लेकिन मैं अभी इस धारणा पर चल रहा हूँ कि भारत में पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक राज्य की स्थापना हो सकती है। हमने देखा है कि १८७२

ई० मे ही, जब कि राजनीतिक प्रजातंत्र अपने पूरे विकास पर नहीं पहुंच पाया था, मार्क्स ने समाजवाद तक पहुँचने के लिए शातिमय सक्रातिकाल की भी कल्पना की थी। तबसे जो सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, यदि हम उन्हे ध्यान में रखें, जैसा कि मार्क्सवादी होने के कारण हमारे लिए यह कर्तव्य हो जाता है, तो हमें मार्क्स के विचारो को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करना चाहिये। मार्क्स के जमाने की अपेक्षा आज राजनीतिक प्रजातत्र ज्यादा प्रजातन्त्रात्मक हो चुका है और पूँजीवाद की आर्थिक, राजनैतिक और सैद्धान्तिक शक्तियाँ यूरोपीय देशों मे बिल्कुल खोखली हो चुकी हैं और इंग्लैण्ड में तो उनकी और भी बुरी हालत है। दूसरे, ससार के सभी बड़े-बड़े हिस्सों मे समाजवाद और मजदूरवर्ग की ताक़त उन्नति की ओर है और बहुत से देशों मे प्रजा-तन्त्रात्मक समाजवादी पार्टियाँ राज्यसिहासन पर आरूढ़ हैं। यहाँ तक कि प्रजातत्र पर विश्वास न रखते हुए भी कम्युनिस्ट पार्टियाँ प्रजातंत्रात्मक साधनों का प्रयोग कर रही हैं, कम से कम शब्दों के द्वारा ही सही, अधिनायक-तन्त्र को बुरा बता रहीं हैं। फ्रास की कम्युनिस्ट पार्टी अपने देश की सबसे बड़ी पार्टी होने पर भी वहाँ की विधान-परिषद् में शामिल हुई और प्रजा-तन्त्रात्मक विधान को काम में लाने में हिस्सा बँटा रही है। हमारे देश में जैसा हमने मान लिया है, यदि पूँजीवादी वर्ग प्रजातन्त्रात्मक राज की गद्दी पर बैठ रहा हो, तो भी उसमें वह ताक़त न होगी, जो इंग्लैण्ड या अमेरिका के पूँजीपति-वर्गों मे है। यहाँ का पूँजीवाद बहुत ही कमजोर होगा। उसमे इतनी ताक़त नहीं होगी कि वह पूँजीवाद के ढाँचे मे देश की आर्थिक समस्याओं को हल कर सके। इस स्थिति से समाजवाद के लिए काम करनेवाली शक्तियों को बल मिलेगा। एक और भी पहलू है जो इस देश में काम करेगा। यों तो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग शामिल हैं, किन्तु वह प्रमुखतः किसानों और शहरी

बाबूदल का प्रतिनिधित्व करता है। यदि हम सिर्फ नेतृत्व पर ही ध्यान न दें तो मेरे इस कथन की सचाई स्पष्ट हो जायगी। जब मैंने यह मान लिया था कि पूँजीपति वर्ग के हाथ में राजसत्ता आ गई तो उसके साथ ही मैंने यह भी मान लिया था कि राजसत्ता उसने राष्ट्रीयता की तरंगों पर खेल कर ही हासिल की है। इसके अतिरिक्त, भले ही यह सम्भव हो या न हो, ऐसा नेतृत्व राष्ट्रीय ताकतों का उपयोग करते समय आपसे आप ऐसी जिम्मेवारियों के घेरे में फँस जायगा, जिसका निर्वाह वह अपने स्वार्थों के साथ वफ़ादार रह कर नहीं कर सकता। नतीजा यह होगा कि जनता का भ्रम दूर होता जायगा और समाजवाद की शक्तियों को अधिक से अधिक बल मिलता जायगा। पूँजीवाद जब संसार में एक वर्धमान शक्ति था तब वह राष्ट्रीय नेतृत्व के योग्य अपने को मुश्किल से बना सका था। आज का पूँजीवाद तो ह्रास की ओर बढ़ रहा है। भला किस तरह वह उस काम को सम्पन्न कर सकेगा?

इन बातों से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यदि हिन्दुस्तान में पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाती है तो हमें शान्तिमय प्रजातन्त्रात्मक पद्धतियों से ही समाजवाद तक पहुँचना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तान की समाजवादी पार्टी को—सोशलिस्ट पार्टी का विकास उस ओर हो रहा है—चुनाव में शामिल होकर, वोटों से जीत कर राजसत्ता और व्यवस्थापिका सभाओं पर कब्जा करना चाहिए और कानून बनाकर पूँजीवाद के नाश और समाजवाद की सृष्टि का प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरा रास्ता

अब हम हिन्दुस्तान में पूर्ण प्रजातन्त्र स्थापित करने के प्रश्न को लें। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, कांग्रेस के नेतृत्व में पिछले वर्षों प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए जो हमने लड़ाइयाँ लड़ीं, वे अब सफलता के निकट पहुँच

चुकी हैं। किन्तु साम्राज्यवादी शक्ति मुस्लिम लोग और देशी राजे अपने इन दो बाजुओं के सहारे मजबूती से हमारा रास्ता रोके खड़ी हैं। ऐसी हल्की-फुल्की बातें कि अंग्रेज सही माने में हिन्दुस्तान छोड़ने का तय कर चुके हैं, बिल्कुल लगी हैं और जनता को ठगने के लिए की जाती हैं। क्योंकि जनता को यह डर है कि हम उसके रास्ते के कांटे चुनने के बदले कहीं ऐसे समझौते में न फँस जायँ जो उसकी आजादी और प्रजातंत्र को ही खतरे में डाल दे। कांग्रेस ने इंगलैंड द्वारा भेजे गये उसके मन्त्रिमण्डल के शिष्ट मण्डल का प्रस्ताव स्वीकार कर के विदेशी सत्ता और सम्प्रदायवाद तथा देशी सामंतशाही से ऐसा समझौता कर लिया है जिसका असर दूर तक जा सकता है। जिस भारतीय प्रजातन्त्र का आधार समझौता होगा, उसे पूर्ण प्रजातन्त्र नहीं कह सकते, जिसकी कल्पना मैंने ऊपर की है, और जिस प्रजातन्त्र में शांतिमय तरीके से भी समाजवाद तक पहुंचना मैंने सम्भव मान लिया है।

अँग्रेजी राज में प्रजातन्त्र नहीं है, देशी रियासतों में प्रजातन्त्र नहीं है, सम्प्रदायवाद में प्रजातन्त्र नहीं है। ये तीनों प्रजातन्त्रविरोधी शक्तियाँ हमारे सामने खड़ी हैं। तीनों के मिलने से उनकी सम्मिलित ताकत कहीं बढ़ गई है। हम इन प्रतिक्रियावादी ताकतों पर किस तरह विजय प्राप्त कर सकते हैं? उनसे दबकर, उन्हे सहूलियतें दे देकर हम उन्हें काबू में कर नहीं सकते। हमारे राष्ट्रीय नेताओं का यह विश्वास है कि इन शक्तियों से समझौते करके इतनी बड़ी राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर ली जा सकती है कि हम बाद में प्रजा-तन्त्र के दुश्मनों का नाश कर सकेंगे। लेकिन यह भुला दिया जाता है कि इस तरह से जो राजनीतिक सत्ता प्राप्त की जायगी उसकी बागडोर सिर्फ राष्ट्रीयता और प्रजातन्त्र के ही हाथो में नही रहेगी, बल्कि प्रतिक्रियावादी ताकतों का भी उसमें हिस्सा होगा। राजसत्ता में हिस्सेदार होकर ये शक्तियाँ मजबूत ही होंगी, कमजोर नही। हाल का इतिहास हमे बताता है कि सम्प्रदायवाद के

साथ जैसे-जैसे हमने रियायतें कीं, त्यों-त्यों वह मजबूत ही होता गया और आज वह भयानक राक्षस के रूप में खड़ा है। भविष्य में जो सहूलियतें दी जायँगी, उनका नतीजा इसके उल्टा होगा, इसकी कोई दलील हमारे पास नहीं। बल्कि खतरा यह है कि अपने राष्ट्रीय जीवन के मौलिक सिद्धांतों के साथ समझौता करके हम एक ऐसे बीमार और रोगी भारत का जन्म देंगे जिसके लिए जिन्दगी और उसके लुत्फ हराम ही साबित होंगे। वैसी हालत में एक बहुत बड़ी क्रांति ही उसे फिर से तन्दुरुस्त जिन्दगी दे सकेगी।

तो प्रतिक्रियावादी ताकतों और प्रजातन्त्र के दुश्मनों को हराने का कौन-सा रास्ता है? रास्ता सिर्फ एक है। हम 'भारत छोड़ो' की माँग को फिर से ऊपर लावें और विदेशी हुकूमत के साथ आखिरी लड़ाई लड़ने को जनता का आह्वान करें और उसका संघटन करें। यह विदेशी हुकूमत ही हमारा पहला और प्रमुख दुश्मन है, और यही हमारे देश की प्रतिक्रियावादी ताकतों को उभाड़ती और सहायता देती है। इसलिए पहले हम इस हुकूमत का ही नाश करें। यह बहुत मुमकिन है कि अपने अस्तित्व पर खतरा आया हुआ देखकर यह हुकूमत अपने दोस्तों को अपने साथ जुटाये। लेकिन हमें इस खतरे का सामना करना ही है। आज भी जब हम समझौते और सहूलियतों की बातें कर रहे हैं तो वही चाल चली जा रही है और आजादी और प्रजातन्त्र की ताकतों को कुचलने और गला घोंटने की कोशिशें हो रही हैं। हमें यह मानना चाहिये कि उसकी चालें कुछ अंशों में सफल हो रही हैं और आजादी और प्रजातन्त्र खतरे में पड़ते जा रहे हैं। मेरा यह पक्का यकीन है कि जब हम अँगरेजी हुकूमत से सीधी लड़ाई छेड़ देंगे तब उसकी ऐसी हरकतें उस पैमाने पर कामयाब नहीं हो सकेंगी जैसे आज हो रही हैं। मुमकिन तो यह है कि वे बिल्कुल ही नाकामयाब साबित हों।

मेरा विश्वास है कि क्रान्ति की आग में ही साम्राज्यवाद अपने दोनों

सहायकर्ता—साम्प्रदायवाद और सामन्तवाद के साथ जल जायेंगा। दूसरा कोई चारा नहीं है।

मैं यह साफ देख रहा हूँ कि समाजवाद तक पहुँचने के पहले एक बड़ी क्रान्ति का होना लाजिमी है। साथ ही मैं यह भी देख रहा हूँ कि उस क्रान्ति के सफल होने के लिये सिर्फ राजनीतिक उद्देश्य ही नहीं, बल्कि सामाजिक उद्देश्य भी हमारे सामने रहना चाहिये। यह एक प्रकट सत्य है कि क्रान्ति के सफल होने के लिये उसके झण्डे पर सिर्फ "भारत छोड़ो" ही लिखना काफी नहीं होगा। उस क्रान्ति के झण्डे पर कुछ और भी उद्देश्यों की घोषणा हो—जैसे "जो जोते, उसकी जमीन" "जो पैदा करे, उसका धन" "देशी रियासतों मे प्रजा-राज्य कायम हो" आदि। क्रान्ति की सेना में किसानों, कारखानों मे काम करनेवाले मजदूरों, विद्यार्थियों, शहर के गरीब और मध्यवित्त लोगों की बड़ी से बड़ी जमात का शामिल होना जरूरी है। ऐसी क्रान्ति हिन्दुस्तान में सिर्फ प्रजातंत्र ही नहीं कायम करेगी बल्कि वह हमें समाजवाद के रास्ते पर भी बहुत दूर तक ले जायगी। ऐसी क्रान्ति के बाद जो प्रजातन्त्र बनेगा, उस पर पूँजीपतियों का बोलबाला न होगा, जैसा कि मैंने कल्पना की थी, बल्कि मेहनत करनेवाले वर्गों और मध्यवित्त लोगों का ही उस पर दबदबा रहेगा। ऐसी क्रान्ति एक ही झटके में पूँजीवाद का नाश तो नहीं करेगी, लेकिन उसे इतना कमजोर बना देगी कि वह पनाह माँगता फिरेगा।

ऐसी क्रान्ति किस तरह की जा सकती है ? क्या आज की जो हालत हैं उसे देखते हुए ऐसी क्रान्ति की अनिवार्यता पर विश्वास किया जा सकता है ? मैं तो इस पर विश्वास करता हूँ। हिन्दुस्तान आज एक क्रान्तिकारी दौर से गुजर रहा है। जनता मे असन्तोष है, किसानों, मजदूरों और देशी राज्य की प्रजाओं में असन्तोष है। देश के नवयुग बेचैन हैं। अँग्रेजों की चाल-

ताजियों पर चारों ओर गुस्सा और हेक़ारत फैली हुई है। दंगों और आपसी खून खराबियों से लोग ऊब उठे हैं। कमी है तो सिर्फ इस बात की कि क्रान्ति की इन शक्तियों को इकट्ठा नहीं किया जा रहा है।

अब तक कांग्रेस ही हमारी राष्ट्रीय क्रान्ति का नेता रही है, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि कांग्रेस के नेतृत्व ने निश्चित रूप से क्रांति की ओर से मुंह मोड़ लिया है; ज्योंही क्रांति का नाम लीजिये, हमारे नेताओं की त्योरियाँ बदल जाती हैं और वे उसके नाम लेनेवालों की खिल्ली उड़ाने और नीचा दिखाने से भी बाज़ नहीं आते। नेताओं के इस व्यवहार का असर सारे कांग्रेस संगठन पर पड़ता है और यह भी साफ़ है कि यह संगठन तो आज कांग्रेस सरकारों का पुछल्ला मात्र रह गया है। इतने पर भी वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी राज्य के खिलाफ राष्ट्रव्यापी संघर्ष तभी शुरू किया जा सकता है जब कांग्रेस इसकी शुरुआत करे।

इस तरह हम एक कठिन परिस्थिति में फँसे हुए हैं। जो कांग्रेसजन क्रान्तिकारी संघर्ष पर विश्वास रखते हैं, उन्हें दो काम करने पड़ेंगेः—

(१) जनता को कांग्रेस-संगठन द्वारा (जहाँ सम्भव हो) और मजदूर संघों, किसान सभाओं, छात्र संघों और स्वयंसेवक दलों आदि द्वारा क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए तैयार करना। (२) कांग्रेस पर भीतर से ज्यादा दवाव डालना ताकि वह क्रान्तीकारी पथ पर चलने को मजबूर हो। यह सम्भव है कि इस दूसरे काम में हमें सफलता न मिले, लेकिन जहाँ तक निकट भविष्य को मैं समझ सका हूँ, मेरा विश्वास है कि १९४२ की ही तरह फिर कांग्रेस को क्रान्ति के पथ पर आना ही पड़ेगा। इसलिए कांग्रेस के कर्णधारों से हमारे विचारों को सहायता मिले या न मिले हमें इस घड़ी के लिए तैयार रहना चाहिए।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि हमारी क्रान्ति की सफलता का दारमदार

इस बात पर है कि वह जनता की आर्थिक और सामाजिक जरूरतों का कहां तक प्रतिनिधित्व करती है । इसलिए समाजवादी कांग्रेसजनों, खास कर सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यो का यह कर्तव्य है कि उस क्रान्ति की तैयारी करने के सिलसिले में जनता की सामाजिक चेतना को जाग्रत करने और उनकी वर्ग-सस्थाओं एव सघर्षों को जोरदार बनाने पर खास ध्यान रखें क्योंकि सघर्षों के द्वारा ही वर्गचेतना प्रस्फुटित और प्रतिष्ठित होती है ।

कांग्रेस को राष्ट्रीय क्रान्ति का अलमबरदार रहना ही है । यह खुशी की बात है कि वह धीरे-धीरे जनता की आर्थिक बेचैनी को समझ रही है । मेरठ कांग्रेस ने सामाजिक उद्देश्यों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पास किया है वह बहुत दूर तक समाजवाद की राह पर हमे ले जा सकता है । लेकिन कठिनाई यह है कि कांग्रेस का वह हिस्सा जो उसपर सबसे ज्यादा प्रभाव रखता है और जो अन्दर से तो पूंजीवादी विचारो से प्रेरित होता है किन्तु जो महात्माजी के नाम की आड़ में मनमानी करता है, वह कांग्रेस की सामाजिक उद्देश्योंवाली घोषणाओं का उपयोग जनता को अपने काबू में रखने और उसकी सहायता न खो देने के लिए ही करता आया है । यदि हम केन्द्र और प्रातो में स्थापित कांग्रेस-सरकार के कार्यों को देखें तो हमें यह नहीं पता चलता कि कांग्रेस की घोषणाओ और प्रस्तावो में निर्धारित उसकी सामाजिक और आर्थिक नीति का कोई असर इनपर है । हो सकता है कि कहीं शब्दो मे आप पा भी जायें, लेकिन उनके कार्यों में ऐसी कांग्रेस नीति की अनिवार्यता का कोई भी प्रमाण पाना आपके लिए मुश्किल होगा । इसलिए समाजवाद तक पहुँचने के रास्ते का निर्णय इस बात पर निर्भर करेगा कि राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित करने में सिर्फ शब्दो में नही बल्कि कार्यों में, समाजवादी आंदोलन को कहाँ तक सफलता मिलती है । यह प्रभाव ज्यादा से ज्यादा हम किस तरह डाल सकते हैं । कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

इस उद्देश्य की पूर्ति, कांग्रेस के भीतर और बाहर काम करके करती आई है। किन्तु अब तो राष्ट्रीय आंदोलन और समाजवादी आंदोलन को पृथक करने की आवाज भी उठने लगी है। यदि अँग्रेजों से खुली लडाई लेने की सम्भावना नहीं होती और इस लड़ाई में अन्ततः कांग्रेस के घसीटकर आ जाने की सम्भावना नहीं होती और इस बात की सचाई मे शक होता कि कांग्रेस के द्वारा ही राष्ट्रीय सग्राम छेडा जा सकता है न कि उसका विरोध करके तो मुझे यह सलाह देने में जरा भी हिचकिचाहट न होती कि समाजवादी आंदोलन को कांग्रेस से अपना पिण्ड छुडा लेना चाहिये। किन्तु ये सम्भावनायें और ये विचार ऐसे कदम उठाने से हमें रोकते हैं—क्योंकि ऐसा करना, खतरों की क्या बात, सर्वनाश तक को बुला सकता है। किन्तु जब हम यह देख लेंगे कि कांग्रेस ने क्रांतिकारी रास्ते को छोड़ दिया है और किसी भी तरह के समझौते की कीमत पर भी वह सरकारी गद्दियों पर बैठे रहने का निश्चय कर चुकी है तो फिर हमारे लिए यह लाजिमी हो जायगा कि हम उसका साथ छोड़ दें। ऐसी हालत मे कांग्रेस दिन-ब-दिन स्थिर स्वार्थवालों की मुट्ठियों में आती जायगी और उसका ढांचा कठोर और अप्रजातान्त्रिक होता जायगा जिसके अन्दर समाजवादी शक्तियो के विकास की गुंजाइश ही नहीं रह जायगी। इन दोनों सम्भावनाओं को मद्देनजर रख कर ही हमें आगे बढ़ना है।

टेढ़े-मेढ़े रास्ते!

इस छानबीन के बाद यह साफ हो जाता है कि समाजवाद तक पहुँचने का रास्ता सीधा-सादा नहीं है। कितनी ही मोड़ों और चौराहों को हमें पार करना है। इसलिए समाजवाद का संक्रान्ति-काल कैसा होगा और उनमें हमें किन नीतियों का पालन करना होगा—इसके बारे में हमें कोरा सिद्धांतवादी नहीं होना है। प्रजातान्त्रिक समाजवाद में अपना

विश्वास मैंने फिर से दुहराया है। मैं उसे ही सच्चा समाजवाद मानता हूँ। मैंने यह स्पष्ट कर दिया है कि अबाधपूर्ण प्रजातन्त्र में मैं समाजवाद तक पहुँचने के लिए प्रजातान्त्रिक पथ को ही पसन्द करूँगा। लेकिन आज तो हम अप्रजातान्त्रिक या प्रजातन्त्र-विरोधी शक्तियों से ही घिरे हुए हैं और इन्हें बिना हराये और बिना नाश किये समाजवाद का सपना ही नहीं देखा जा सकता है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि हमें संघर्षों और उत्पातों से भरे संक्रान्ति काल से गुजरना पड़े। हमें एक ऐसे क्रान्तिकारी दौर को पार करना पड़े जिसके दर्म्यान हम प्रजातान्त्रिक क्रान्ति को तो पूरा कर लेंगे ही, समाज-वाद की ओर भी काफी कदम बढा चुके होंगे। इस तरह क्रान्ति को आग में स्नान कर जो राज्य या समाज हमारे देश में उदित होगा, उसी में प्रजाता-न्त्रिक पद्धति से हम पूरे समाजवाद की स्थापना कर लेंगे।

विकास की इस योजना में कितने तरह की गड़बड़ियाँ पैदा हो सकती हैं। जिस क्रान्ति की हमने कल्पना की है वह आ भी न सके और हमारे श पर अनियन्त्रित शासन ही लाद दिया जाय। ऐसी हालत में प्रजातान्त्रिक रीकों की चर्चा भी फिजूल होगी। एक नये किस्म की क्रान्ति करनी पड़ेगी, जसका नेतृत्व समाजवादी शक्तियाँ करेंगी और जिसे भिन्न-भिन्न वर्ग मदद हुँचायेंगे। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान में सभी समाजवादी शक्तियों के संकलन से संगठित एक स्वतन्त्र भारतीय समाजवादी पार्टी की स्थापना आवश्यक होगी। यह भी सम्भव है कि आने वाले समय की गड़बड़ियों से फायदा उठा कर हमारे देश की पूंजीवादी, सामन्तवादी और सम्प्रदायवादी शक्तियाँ एक साथ मिलकर आगे बढ़ें और राष्ट्रीय आंदोलन के दक्षिणपक्ष से मिल कर एक तानाशाही राज्य कायम कर लें। उस परिस्थिति में प्रजातन्त्र के तरीके किसी काम के नहीं होंगे। उस समय सिर्फ एक ही चारा रह जायगा कि हम इस प्रतिक्रियावादी आक्रमण के खिलाफ क्रान्तिकारी शक्तियों को लेकर खड़े

हों और श्रमिक जनता का अधिनायकतंत्र कायम करें। लेकिन यह अधिनायकतंत्र भी किसी पार्टी या मज़दूर वर्ग का नहीं होगा, बल्कि सारे मज़दूरों किसानों और शहरी गरीबों का अधिनायकतंत्र होगा। दूसरी हालतों में हमें दूसरे तरीकों, दूसरे हलों से काम करना पड़ेगा।

मैंने शुरू में कहा था कि अपने लक्ष्य तक पहुँचने का हमारे लिए सिर्फ एक रास्ता है। फिर ये तरह-तरह के रास्ते बता कर क्या उस बात का खंडन हमने स्वयं नहीं कर दिया है? सच बात तो यह है कि एक निर्दिष्ट परिस्थिति में सही रास्ता भी एक ही हो सकता है। लेकिन बदलती हुई परिस्थितियों में भी हम उसी निश्चित रास्ते पर चलते जायं तो हम अपने उद्देश्य के निकट नहीं बल्कि सर्वनाश के निकट पहुँच जायेंगे। हमने ऊपर जो कुछ भी लिखा वह एक निश्चित परिस्थिति की कल्पना करके। अपने विचारों को स्पष्टता से रखने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। लेकिन हम किसी प्रयोगशाला की बंधी हुई हालतों की तरह समाजवाद का प्रयोग नहीं कर सकते हैं। इसलिए अपने उद्देश्यों पर ध्यान रखते हुए और अपने मौलिक सिद्धांतों से दूर न होते हुए हमें बदली हुई परिस्थिति की माँग के मुताबिक अपने रास्ते और तरीके में अदल बदल करने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं जानता हूँ कि इस रास्ते पर खड्डों और खतरों की कमी नहीं किन्तु कठोर सिद्धांतवादी बने रह कर सर्वनाश कर लेने की अपेक्षा खतरों का सामना करना कहीं अच्छा है।

संक्रान्ति काल में समाजवाद जो भी रूप ले, अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि समाजवाद की स्थापना के लिए सब से आवश्यक चीज़ है एक मजबूत समाजवादी पार्टी जिसे मज़दूरों, किसानों, नौजवानों, (स्वयंसेवक और विद्यार्थी) एवं शहर के गरीबों का पूरा समर्थन और सहयोग प्राप्त हो। एक छोटी-सी शुरुआत से सोशलिस्ट पार्टी आज की इस ताक़त

और असर की हालत में पहुँची है। सोशलिस्ट पार्टी ही इस देश में समाजवाद की एक मात्र पार्टी है। यही भविष्य की पार्टी है। देश की ही तरह सोशलिस्ट पार्टी भी संक्रान्ति काल से गुजर रही है और उसे उस ऊँचाई तक पहुँचना है जब वह देश की पीड़ित और दलित जनता की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर सके।

मार्क्सवाद : अनुभव से छन कर

लोग मुझसे पूछते हैं क्या कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी मार्क्सवादी दल है ? वे जानना चाहते हैं कि वह मार्क्सवादी समाजवाद को मानती है या गांधीवादी समाजवाद को । मेरा उत्तर है कि हम मार्क्सवादी दल के हैं और मार्क्सवादी समाजवाद को मानते हैं । लेकिन मुश्किल तो यह है कि केवल मार्क्सवाद कहने से ही आज किसी के विचारों का पूरा पता नहीं लगता । मार्क्सवाद के नाम पर कम्युनिस्टों और रायवादियों ने न जाने क्या-क्या किया है । ट्राट्स्की के अनुगामी भी जो दो दलों में बँट गये हैं, अपने को मार्क्सवादी कहते हैं । हिन्दू धर्म की तरह आज मार्क्सवाद का कुछ भी अर्थ निकाला जा सकता है । इसलिए अब पुराने नारों को दुहराते रहना बेकार है । हमें मार्क्सवाद की अपनी व्याख्या करनी पड़ेगी । इसमें हमें अपने अनुभवों और व्यावहारिक परिस्थितियों का सहारा लेकर चलना होगा । हमारे देश में किसानों की आबादी काफी बड़ी है और हमारा किसान वर्ग अत्यन्त दरिद्र है । इसलिये यह स्पष्ट है कि हमारे समाजवाद पर कृषकवर्ग की छाप

होनी चाहिये और उसमें उनकी आर्थिक और राजनीतिक आकांक्षाओं का प्रकट होना अनिवार्य है। इसलिए आज हमारे समाजवाद की रूपरेखा कृषक समाजवाद की होगी।

मैं मार्क्स को मानता हूँ। मैं अपने को मार्क्सवादी कहता हूँ। मैं स्टालिन तथा कितने ही अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अच्छा मार्क्सवादी हूँ। यह केवल मैं यों ही नहीं कह रहा हूँ। मैं इसे जोर के साथ कहता हूँ। मार्क्सवाद मेरे विचार का आधार है। किन्तु मार्क्सवाद को मैं एक विज्ञान मानता हूँ। विज्ञान दर्शन की भाँति सत्य की शोध करता है और सत्य सापेक्ष वस्तु है।

कोई व्यक्ति ऐसे सत्य के पाने का दावा नहीं कर सकता जो सदा के लिए सत्य हो। हम लोगो ने संपूर्ण सत्य को न पाया है, न पा सकते है। एँगल्स का, जिसने इस सिद्धांत की विवेचना बड़ी ही योग्यता से की है, कहना है कि हम लोग सापेक्ष सत्य तक ही पहुँच सकते हैं। सापेक्षिक सत्य से हम लोग असत्य को निकाल देते हैं और इस प्रकार पूर्ण सत्य तक पहुँचते हैं। इसी तरह से ज्ञान की वृद्धि होती है, सभी विज्ञानों की अभिवृद्धि होती है।

डार्विन, जो मार्क्स का समसामयिक था, एक बड़ा वैज्ञानिक था। अमेरिका मे मेरे जीवशास्त्र के प्रोफेसर डार्विन की 'जीव की उत्पत्ति' नामक पुस्तक को महत्व में बाइबिल के बाद दूसरा स्थान देते थे। लेकिन आज उसके विकासवाद का सिद्धात अमान्य कर दिया गया है। उसकी आधारभूत मान्यताएँ अब प्रामाणिक नही मानी जातीं। फिर भी विज्ञान के क्षेत्र में उसका स्थान अप्रतिम है। विकासवाद के सिद्धात के लिए विज्ञान उसका आभारी है। तत्कालीन मानव विज्ञान के ज्ञान के आधार पर एँगल्स ने "कुटुम्ब की उत्पत्ति—व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज" नाम पुस्तक लिखी थी।

शुरुक्खा कबीले के बीच रहकर लुइस मार्गन ने जो खोज की थी, वही उसका आधार थी। किन्तु आज के मानव-विज्ञान-वेत्ता मार्गन की खोज को स्वीकार नहीं करते।

अगर ऐंगल्स आज जीवित होता तो वह अपने कुछ अनुयायियों की तरह न विचारता, न सोचता। उसको अपनी उक्तियों में सुधार करना पड़ता। किन्तु उसकी और मार्क्स की विचारधारा की पहुँच और पद्धति में कोई परिवर्तन न होता। इतिहास के समझने और समझाने में उसका उपयोग हमें अवश्य करना है। वर्तमान ज्ञान और विज्ञान की प्रगति के आधार पर हम लोगों को हिन्दुस्तान में अपनी रीति से मार्क्सवाद को व्यक्त करना चाहिए।

यद्यपि जो पद्धति मार्क्स ने प्रतिपादित की है, वह अब तक सत्य है, तथापि उसकी कुछ स्थापनाओं तथा भविष्यवाणियों में आज सुधार करना होगा। उदाहरणार्थ, मार्क्स ने सोचा था कि मध्यम श्रेणी सामाजिक विकास के दौरान में समाप्त हो जायगी और सामाजिक कार्यों मे उसका कोई महत्व न रह जायगा। इतिहास ने उस मान्यता को गलत सिद्ध किया है। किसान, जो मध्यम श्रेणी मे गिना जाता है, अमेरिका जैसे अत्यन्त औद्योगिक और पूँजीवादी देश मे भी एक बहुत बडी सामाजिक आर्थिक ताक्त है।

इसके सिवा डाक्टरों, इञ्जीनियरों, कारीगरों, अध्यापकों, सेल्समैनों, कमीशन एजेण्टों और अन्य सफेद पोश लोगों आदि को मिलाकर एक नये मध्यम वर्ग का उदय हुआ है। इन परिस्थितियों मे वर्ग शक्तियों और वर्ग सन्तुलन के विवेचन मे मध्य वर्ग की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है। यदि हम लोग वैसा करते हैं तो असफल होंगे।

सोवियत रूस के अनुभव

तब मजदूर अधिनायकत्व की समस्या आती है। मैं इसमें विश्वास करता था, और अब भी विश्वास करता हूँ। किन्तु इससे मेरा क्या मतलब है, इसे

स्पष्ट कर दूँ। मजदूरों का अधिनायकत्व पूँजीवाद को समाजवाद में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक है। यह प्रारम्भिक अवस्था की चीज है, यह समाजवाद की निर्माणावस्था के लिए लागू है। जब समाजवादी व्यवस्था स्थापित हो जाती है, जब समाजवादी समाज का अस्तित्व कायम हो जाता है तब वैसा नही होना चाहिए। सोवियत रूस मे अब केवल एक वर्ग है और इसलिए वहाँ तानाशाही के स्थान पर प्रजातान्त्रिक सरकार स्थापित होनी चाहिए।

जिन दिनो वहाँ वर्गसघर्ष चल रहा था और पुराने शासक वर्ग को हटाने के लिए तानाशाही की आवश्यकता थी, उन दिनों भी क्या जरूरी था कि रूस में सिर्फ एक पार्टी—कम्युनिस्ट पार्टी रही होती? अमेरिका मे जहाँ पूँजीवादी सरकार अब भी मजबूत है वहाँ पूँजीपतियों की दो प्रमुख राजनीतिक पार्टियाँ हैं। उसी प्रकार मजदूर वर्ग में भी एक से अधिक दल हो सकते हैं। इस लिए रूस कम्युनिस्ट पार्टी के अतिरिक्त मजदूरों के अन्य दलो को क्यों नहीं पनपने देता? किसी देश मे एक से अधिक दलो के रहने पर ही प्रजातान्त्रिक प्रणाली का अस्तित्व रह सकता है।

आज का रूस एक विस्तृत वन्दीगृह है। आज रूस में किसी ऐसी आलोचना या सूचना का जो सोवियत सरकार नहीं चाहती पूर्ण अभाव मिलेगा। रूस के बाहर भी सोवियत नेताओ की नीतियों की टीका टिप्पणी रूस की जनता नहीं कर पाती। आज रूस में वहाँ की जनता अपने विचारो को आपस में भी व्यक्त नहीं कर सकती। यह असह्य है। ऐसी तानाशाही का अस्तित्व यह प्रकट नहीं करता है कि इस देश मे वर्गों का मिटाना बाकी है। आज के रूस मे वे सभी एक या दूसरे प्रकार के मजदूर हैं, इसलिए साधारणतः उनका एक ही वर्ग है। आज उस देश मे तानाशाही का अस्तित्व यह प्रकट करता है कि मजदूरो का एक हिस्सा दूसरे हिस्से पर तानाशाह बन बैठा है। एक नये शासक वर्ग का उदय हुआ है, जिसमें पार्टी के अधिकारी वर्ग, प्रबन्धक वर्ग, सेना सचालक और सिविल सर्विस के लोग इत्यादि सम्मिलित

हैं। वे परोक्ष रूप से सरकार का नियंत्रण करते हैं। इस प्रकार रूस में शक्ति एक दल-विशेष के हाथ में चली गई है।

यह रूस में नौकरशाही की वृद्धि एक नयी स्थायी सेना की स्थापना तथा एक नये शासक वर्ग के उद्भाव का द्योतक है। इससे राज्य के समाजवादी स्वरूप पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। यह मार्क्सवाद को भ्रष्ट करना है। आज का रूस समाजवादी राज्य नहीं है, अपितु वह समाजवादी आर्थिक आधार पर स्थित एक राष्ट्रीय राज्य है। ठीक ठीक मार्क्सवादी पद्धति का अनुसरण करने पर आज के रूस को पूर्ण रूप से प्रजातांत्रिक राज्य हो जाना चाहिए था और उसे साम्यवाद की अन्तिम अवस्था में प्रवेश करने की तैयारी करते नजर आना चाहिए था, जिसमे राज्य समाप्त होने की प्रक्रिया भी सम्मिलित होती। ऐसा न होकर वहाँ तानाशाही का बोलबाला है। कोई नहीं जानता कि राज्य कब नष्ट होगा अथवा यह कभी होगा या नहीं।

निस्सदेह यह तब तक नहीं होगा जब तक उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि नहीं होती, जब तक परिपूर्णता नहीं स्थापित होती। केवल ऐसे समाज में ही 'प्रत्येक को आवश्यकतानुसार दिया जाय और उससे योग्यता के अनुसार काम लिया जाय' के सिद्धांत के अनुसार कार्य किया जा सकता है। यह विचार महात्मा गांधी और समाजवादियों को समान रूप से ग्राह्य है। महात्मा गांधी राज्यहीन और वर्गहीन समाज के आदर्श को स्वीकार करते हैं। गांधीजी और लेनिन दोनों इस विषय में एकमत हैं। लेकिन सोवियत रूस में जैसी तानाशाही है उसका तो गांधीजी विरोध ही करेंगे। क्या मार्क्सवादी होने के नाते हम लोग इसका इस रूप में समर्थन करने के लिये बाध्य हैं? कुछ परिस्थितियो में क्या यह सभव नहीं है कि समाज को एक ऐसे निरकुश शासकवर्ग के हाथों में सौंपे बिना ही पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद को प्रतिष्ठित किया जा सके—ऐसा शासकवर्ग जिसमें सबके सब मजदूर वर्ग के भी

नहीं हों, बल्कि जिसमें नौकरशाही तथा एक नयी स्थायी सेना भी शामिल हो।

परमाणु ज्ञान के इन दिनों में हमारे सामाजिक साधन अत्यधिक बढ गये हैं। अपने बढे हुए साधनों के सदुपयोग से हम लोग निकट भविष्य में अपने समाज को पूरा पूरा बदल सकते हैं। हम लोग परिपूर्णता का युग स्थापित कर सकते हैं। यह सत्य है कि जनसंख्या भी बढती जा सकती है और उससे वैसा होना कठिन हो जा सकता है। किन्तु जनसख्या की वृद्धि नियन्त्रित की जा सकती है। हाल के यूरोपीय अनुभव इस प्रकार की आशाओं का समर्थन करते हैं। हमें अपने सामाजिक विकास को इस प्रकार व्यवस्थित करना है कि रूसी विकास के अवाछित तथा दुःखद पहलुओं से गुजरे बिना हम अपना लक्ष्य प्रप्त कर सकें।

रूस में लेनिन एक विशेष ऐतिहासिक परिस्थिति में काम कर रहा था। शायद इतिहास ने लेनिन को दूसरा कोई रास्ता नहीं छोड़ा था। राजनीतिक दृष्टि से प्रतिकूल तथा अत्यधिक दमन वाली रूसी परिस्थिति ने उसे सशस्त्र क्रान्ति के लिये बाध्य किया। लेकिन जैसा मार्क्स और एँगल्स का विश्वास था, प्रजातांत्रिक और शांतिपूर्ण उपायों से समाजवादी परिवर्तन सम्भव है। और उनके समय के बाद आज यह विश्वास और भी दृढ हो गया है। मार्क्स और लेनिन के समय के मुकाबले आज दुनियाँ में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। प्रजातन्त्र ने बहुत प्रगति भी कर ली है और हिटलर मुसोलिनी की हार के बाद से समाजवादी शक्तियाँ भी बहुत मजबूत हुई हैं। इस संबध मे तो मेरे विचार बिल्कुल स्पष्ट हैं कि एक विशेष समय और स्थान मे प्रजातान्त्रिक और शान्तिपूर्ण तरीके से समाजवादी परिवर्तन के लिए अगर अवस्था अनुकूल हो तो प्रजातान्त्रिक तथा शान्तिपूर्ण रीति का उपयोग करना चाहिये। एक उदाहरण लीजिये। अगर भारतवर्ष में राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जाती है और कांग्रेस

के हाथ में शक्ति आ जाती है तो समाजवादी पार्लमेन्टरी पद्धति द्वारा अपने समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास कर सकते हैं। जब वैधानिक तथा शान्तिपूर्ण उपायों से शक्ति प्राप्ति की जा सकती है, तो सशस्त्र क्रान्ति पर जोर देना मूर्खता है।

रूस के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि सशस्त्र क्रान्ति के जरिये जिस राज्य की स्थापना होती है, वह समाजवादी ही हो, यह जरूरी नहीं; बल्कि शान्तिपूर्ण और प्रजातांत्रिक ढंग से एक अच्छे समाजवादी समाज की स्थापना कहीं अधिक सम्भव है। क्रान्ति, आक्रमण और तानाशाही न हो, तो समाजवादी नीति के विकृत होने का खतरा और रूस की तरह मार्क्सवाद के भ्रष्ट होने का भय भी नहीं हो सकता। सयोग से समाजवाद की ओर बढ़ने की गति धीमी हो सकती है, पर वह सुनिश्चित होनी चाहिये। गति धीमी होवे ही, यह भी जरूरी नहीं। भारत का ही उदाहरण लें। यहाँ की जनता आज समाजवाद के इतने पक्ष में है कि या तो सत्ता हस्तान्तरित होने के बाद यहाँ कोई पूँजीवादी राज स्थापित नहीं होगा और यदि पूँजीवादी राज स्थापित हो भी गया, तो प्रजातांत्रिक ढंग से उसे हटाया जा सकेगा।

जनता द्वारा सशस्त्र आक्रमण करके पूँजीवादी राज से सत्ता हस्तगत करने में जितनी सामाजिक क्षति होगी, उससे कम ही क्षति इस पद्धति से होगी। इस प्रकार समाजवाद के रास्ते में जो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाधायें उत्पन्न होती हैं और जिनका सामना अपने समाजवादी पुनर्निर्माण के सिलसिले में रूस को करना पड़ा, उनसे बचे रहने की सम्भावना इस नीति का उपयोग करने में अधिक हो सकती है।

ऐसा कहने का अर्थ यह नहीं है कि मेरी सोवियत रूस से कोई दुश्मनी है। मैं रूस से दोस्ती करने में विश्वास रखता हूँ। एक राष्ट्रवादी होने के नाते भी हमें एशिया के इस सशक्त पड़ोसी से मित्रवत व्यवहार करना चाहिये।

इसके सिवा रूसी राज का आधार समाजवादी है। कम-से-कम इस नाते ही हमें रूस की आलोचना को नरम कर देना चाहिये तथा उसके प्रति मित्रवत् आचरण करना चाहिये। किन्तु मित्रता की नीति का मतलब रूस के चारों ओर स्थापित कठपुतली राज्यों को स्वीकार करना नहीं है। रूस की रक्षा के नाते इसका समर्थन नहीं किया जा सकता। वैसा करना रूस की आक्रमणात्मक राष्ट्रीयता को स्वीकार करना होगा। यह समाजवादी मैत्री न होगी।

दुनिया बदल रही है

तब आप कह सकते हैं कि कम से कम इस देश मे मैंने मजदूरों के अधिनायकत्व का परित्याग कर दिया है। बेशक, मैं सभी देशकाल और वातावरण में इसे अनिवार्य नही समझता। हमें उन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को भी ध्यान मे रखना होगा जिनमे हम काम कर रहे हैं। आज हम जिस दुनिया मे रहते हैं, वह काफी बदल गई है। जिस दुनियाँ में समाजवाद की प्राप्ति के लिए भारत प्रयत्न करेगा वह उससे बिलकुल भिन्न होगी, जिसमें लेनिन के रूस ने इसके लिए प्रयत्न किया था। अतएव यह जरूरी नहीं है कि रूस के लिए जो अनिवार्य रहा हो, वह हमारे लिए भी आवश्यक हो। यूरोप में इस समय पूँजीवाद का नाश हो रहा है और साम्राज्यवाद रक्षात्मक हो गया है। सम्पूर्ण यूरोप मे सामाजवादी पार्टियाँ बलवती होती जा रही हैं। बृटिश पार्लमेन्ट में मजदूर दल का विशाल बहुमत है। फ्रास मे समाजवादी और कम्यूनिस्ट पार्टियो का बहुमत कायम हो गया है। आज फ्रास मे कोई भी पार्टी इस बात का समर्थन नहीं करती कि सशस्त्र विद्रोह के जरिये अधिकार हस्तगत किया जाये। अमेरिका मे परिस्थितियाँ भिन्न हैं। वहाँ पूँजीवाद अभी भी प्रबल है। वहाँ उस देश के जनसाधारण मे वैसे ढग की गरीबी भी नहीं है। वहाँ शासक वर्ग अब भी अच्छी

तरह अधिकारारूढ़ है। उस वर्ग के बीच अभी कोई कमजोरी या विघटन नहीं पैदा हुआ है। अभी उनका पर्दा फाश नही हुआ है और जनसाधारण भी अभी पूर्णतः निर्भ्रान्त नही हुआ है। फलतः वहाँ पूँजीवादी राज्य बना हुआ है। यहाँ भारत मे पूँजीवाद अभी कायम नहीं हुआ है और वह इतना मजबूत नहीं है और न होने ही पायगा कि राज्यसत्ता पर अधिकार कर ले तथा पूँजीवादी राज्य यहाँ कायम हो जाय। जब तक जनता उसका समर्थन न करे, तब तक तो यह असभव ही रहेगा। जनता में जो आर्थिक चेतना उत्पन्न हो गई है और राष्ट्रीयता का जो नया सामाजिक आधार हो रहा है, उसके कारण यह बड़ा कठिन हो जायगा।

इसलिए यह मुमकिन है कि आज भारत में पूँजीवादी सफल प्रतिरोध करने में न समर्थ हो और हमें उन्हीं बाधाओं का मुकाबला न करना पड़े, जिनका दूसरे स्थान पर और दूसरे समय में लोगो को मुकाबला करना पड़ा था। यूरोप के दूसरे देशों को सामन्तशाही से उसी प्रकार लोहा नहीं लेना पड़ा, जिस प्रकार १७८९ में फ्रांस को प्रतिरोध करना पड़ा था। इसी कारण से मार्क्स और एँगल्स ने यह नहीं कहा कि केवल हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा ही समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। इस संबंध में उन्होंने इंगलैंड तथा दूसरे पश्चिमी लोकतंत्रवादी देशों का नाम लिया, जिनके बारे मे उनका ऐसा ख्याल था कि शांतिमय और लोकतन्त्रात्मक उपायो से ये देश समाजवादी राष्ट्रों के रूप मे बदल जायेंगे। एटली के नेतृत्व में चलनेवाला मजदूर दल रैमसे-मैकडौनल्ड के नेतृत्व में चलनेवाला मजदूर दल नहीं है। एटली का दल अगले १० वर्षों में इंगलैंड से पूँजीवाद का खात्मा कर देगा। जैसा ख्याल था, ब्रिटिश पूँजीवाद मजबूती के साथ मुकाबला नहीं कर रहा है। अतएव समाजवादी आक्रमण सफल हो सकता है। जिस पूँजीवाद ने शताब्दियों तक संसार का शासन किया है, वह आज समाजवादी आक्रमण का मुकाबला करने

में असमर्थ है। ब्रिटेन में मजदूर दल की विजय समाजवादियों के लिए एक महान् घटना है। समाजवादी नीति रीति, साधनो और उपायो सबधी हमारे विचार पर इसका असर पड़ना अनिवार्य है। ऐसा कहने का यह मतलब नहीं है कि ब्रिटिश मजदूर दल साम्राज्यवाद से मुक्त हो गया है और हमारे सामने का रास्ता बिलकुल साफ है। पर इसका यह मतलब जरूर है कि हमारे लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग मे आनेवाला साम्राज्यवादी और पूँजीवादी प्रतिरोध सम्भवतः बहुत बड़ा न होगा। फिर भी हमें सभी परिणामों के लिए तैयार रहना चाहिए; ताकि अगर प्रजातांत्रिक तरीके से हमे सफलता मिलती न दीखे, तो हम क्रांतिकारी उपायो का भी प्रयोग कर सकें, क्योंकि किसी भी हालत में हमें मौका हाथ से नहीं जाने देना है।

विश्व में महान् परिवर्तन हो गया है और हमारे पूर्व स्थिर नियमों में भी परिवर्तन होना ही चाहिए। हमे इस बात से नहीं डरना चाहिये कि लोग सुधारवादी कहकर पुकारने लगेंगे। पर जो कुछ मैं सामने रख रहा हूं, वह सुधारवाद नहीं है। हम मार्क्स द्वारा प्रस्तुत आधार तथा जीवन और वस्तुओं के बारे में उनके दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं और जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों में उसे लागू करते हैं। उदाहरणार्थ गांधीजी को ले लीजिये। वे महान भारतीय हैं और हमारे जीवन मे उनका अपना एक स्थान है। हम उन्हे पूर्णतः अंगीकार भले ही न करें, पर हम उन्हे पूर्णतः अस्वीकार भी नहीं कर सकते। हमें उनके उन विचारों को ग्रहण करना चाहिये जो हमारे लिए उपादेय हैं। गांधी जी विकेन्द्रीकरण के समर्थक हैं। हमें अपने देश में इसे चरितार्थ करने की आवश्यकता है। हमारा देश अत्यन्त विशाल है और एक केन्द्र से सभी बातों की व्यवस्था करना सम्भव नहीं है। इसके अलावा हमारे कल कारखाने पूरी अतिरिक्त आबादी को काम नहीं दे सकते और न उद्योगीकरण की प्रगति इतनी तीव्र की जा सकती है कि अतिरिक्त आबादी को शीघ्रता

से काम मिल जाये। कृषि पर पहले से ही बहुत आदमी निर्भर हैं, इसलिए वह भी सबको काम नहीं दे सकती। अभी तक जो लोग इसमे लगे हुए हैं, उनमें से २५ प्रतिशत तो कृषि का राष्ट्रीयकरण होने पर बेकार हो जायेंगे। अतएव सबको काम देने के लिए हमें गाँवो मे छोटे उद्योगों की जरूरत पड़ेगी। पर हम समाजवादी होने के कारण यह चाहेंगे कि उन्हें सहकारिता के आधार पर चलाया जाय। राष्ट्रीय सरकार और प्रातीय सरकार को इसे अपने हाथ में लेना पड़ेगा। और उसका विधान करना पड़ेगा। यही हमारे ग्राम्य कार्यक्रम का आधार होगा।

इसके अलावा केन्द्रीय आर्थिक व्यवस्था से नौकरशाही की उत्पत्ति होती है। केन्द्रीकरण के फलस्वरूप सोवियत रूस मे यही बात हुई है। इसने मैनेजरों और वेतनभोगी कर्मचारियों का एक वर्ग पैदा कर दिया है। वे सख्या में इतने अधिक और इतने महत्वपूर्ण है कि वे देश के आर्थिक जीवन को तो नियन्त्रित करते हैं, पर उनका नियत्रण नहीं हो पाता। वे पर्दे की ओट से सचालन करते हैं। इसलिए आज इस नौकरशाही को हटा कर उसके स्थान पर प्रजातांत्रिक रीति से अर्थव्यवस्था करने की समस्या समाजवादियों के सामने है। इस केन्द्रीकरण के कारण शक्ति रूस में नौकरशाही और उनकी तरह के कुछ खास लोगों के हाथों में है, जिनको 'प्रबन्धक वर्ग' कहा जा सकता है और जिनमे सेना आदि के लोग भी शामिल हैं। हम अपने देश में यही बात नहीं चाहते। निश्चय ही हमारे देश में बड़े बड़े उद्योग होंगे जिन पर राष्ट्रीय स्वामित्व और नियत्रण रहेगा, पर गाँवों में और नगरो में भी सहकारिता के आधार पर स्थापित हमारे छोटे उद्योगो का जाल बिछा रहेगा।

नैतिक आदर्शों की उपेक्षा नहीं

यदि मुझसे पूछा जाय कि समाजवाद क्या है तो जैसा कि मैंने १९३५

में अपनी पुस्तक 'ह्वाइ सोशलिज्म —'समाजवाद ही क्यो ?' मे कहा-था; वह उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनों का राष्ट्रीय करण है। हमारी समझ में इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए आधार मिल जाता है और मनुष्य के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र तथा सम्पूर्ण विकास हो पाता है। रूस मे समाजवादी आधार पर राष्ट्र का निर्माण हुआ है। फिर भी वहाँ आज ऐसी राजनीतिक परिस्थितियाँ नहीं हैं, जो मनुष्य के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र तथा सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक हैं। यदि ऐसा होता तो वर्तमान रूस ने श्रेष्ठतर संस्कृति तथा और भी अच्छे मानव पैदा किये होते। पर यहाँ यह बात नही पाई जाती है। समाजवादी की हैसियत से हम परिस्थिति और सामाजिक ढाँचे पर ज़ोर देते हैं। हमारा ऐसा विश्वास है कि आर्थिक परिवर्तनो के फलस्वरूप सामाजिक और वैयक्तिक परिवर्तन होते हैं। यह बिलकुल सच है, किन्तु हाल में जो अनुभव हुए हैं, खासकर रूस मे, उनसे पता चलता है कि इस विकास मे कोई अनिवार्यता नहीं है। इतिहास तो यह बताता है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था स्वतः सम्यक् जीवन की ओर नहीं ले जाती।

इसलिए नैतिक आदर्शों की हम उपेक्षा नही कर सकते। नैतिक मूल्यों का अपना एक सामाजिक स्थान होता है। समाज मे उनका एक सृजनात्मक तथा रचनात्मक भाग होता है। हमारी मौलिक मानवता नैतिकता की एक व्यवस्था देती है, कुछ सामाजिक 'नियम' निर्धारित करती है। ये ही नैतिक नियमो का रूप लेते हैं। हमें व्यक्तिगत जीवन और आचरण पर जोर देना ही चाहिये, सदाचारी मानवो का निर्माण हमारा लक्ष्य होना चाहिये। हाँ, इस मामले मे बेशक हम सामाजिक परिस्थिति की उपेक्षा नहीं कर सकते। परन्तु गाँधीजी जैसे महापुरुषो की आदर्शनिष्ठा भी सामाजिक कल्याण की दृष्टि से अत्यावश्यक है। यहीं पर वस्तुतः डाक्टर भगवानदास जैसे विद्वानो की भी

आवश्यकता प्रकट होती है। कम्युनिस्ट आन्दोलन इस बात की बिल्कुल उपेक्षा कर देता है । वह इस बात को मानकर चलता है कि राष्ट्रीयकरण होने के बाद समाजवादी समाज की स्थापना अनिवार्यतः हो जायगी।

समाजवाद और भारतीय संस्कृति

यह प्रायः कहा जाता है कि हिन्दुस्तान की हालत एक खास किस्म की है, कि हिन्दोस्तान की परम्परा ही दूसरी है, कि हिन्दुस्तान औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ देश है, कि इसलिए हिन्दोस्तान पर समाजवाद नहीं लागू किया जा सकता।

यदि इसका मतलब यह हो कि समाजवाद के मूल सिद्धान्तों का प्रयोग हिन्दोस्तान में नहीं किया जा सकता, तो इससे बढ़कर ग़लत बात दूसरी कुछ नहीं हो सकती।

धन किस तरह इकट्ठा होता है, वह हिन्दोस्तान पर भी, और देशों की ही तरह, लागू है और धन का एक जगह इकट्ठा होना, दूसरे देशों की ही तरह, हिन्दोस्तान मे भी एक ही उपाय से रोका जा सकता है। हिन्दो-स्तान में उसकी खास हालत की वजह से समाजवाद के सिद्धान्तो को किस तरह और किन मंजिलों में लागू किया जा सकता है, इसमें दूसरे देशो से फ़र्क आ सकता है। लेकिन, हिन्दोस्तान में समाजवाद के सिद्धान्त बदल नहीं,

जायँगे। यदि संसार के दूसरे हिस्से में शोषण और असमान वितरण को रोकने के लिए उत्पादन के साधनों पर सामाजिक सत्ताधिकार का क़ायम किया जाना आवश्यक है, तो भारत में भी ऐसा ही करना पड़ेगा।

जहाँ तक भारतीय परम्परा की बात है, वह जीवन के साधनों और सुविधाओं को सम्मिलित रूप में उपभोग के प्रतिकूल नहीं है। यह कहा जाता है कि भारतीय सभ्यता का मुख्य रूप रहा है—व्यक्तिवाद, इसलिए हमारे यहाँ समाजवाद की बात चल नहीं सकती। लेकिन, समस्या को इस रूप में रखना शब्दो के पीछे परीशान होना और मुख्य आदर्श को भूल जाना है। हाँ, हमारी संस्कृति का मुख्य प्रेरणा व्यक्तिवादी रही है, लेकिन, उसका अर्थ सिर्फ यह है कि व्यक्तिगत पूर्णता हमारे आदर्श का ध्येय रहा है। उसका अर्थ तुच्छ और संकीर्ण व्यक्तिवाद नहीं रहा है, जो कि पूजीवादी समाज का मुख्य ध्येय है। और, अगर व्यक्तिगत पूर्णता जीवन का ध्येय हो, तो हम समाजवादी यह दावे के साथ कह सकते हैं कि इसकी प्राप्ति सार्वजनिक हित या जनता के अधिक-से-अधिक हिस्से के हित को लक्ष्य रख कर ही की जा सकती है। क्या ट्रॉटस्की ने हमें यह नहीं बताया है कि समाजवादी समाज में ही साधारण मानवता अफलातून और कार्ल मार्क्स की ऊँचाई तक पहुँच सकती है? अंत में, हिन्दोस्तान का औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े होने से हमें निराश नहीं होना चाहिए। एक दृष्टि से यह पिछड़ा होना हमारे लिए मददगार ही साबित होगा। क्योंकि समाजवाद का उतना उग्र विरोध हमारे देश में न हो सकेगा, जितना कि पूर्ण विकसित देशों में हुआ। रह गई बात औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए प्रदेशो में समाजवाद की स्थापना की सफलता के विषय में, सो इस संबंध मे रूस की ओर इंगित करना ही काफी होगा, जहाँ ससार के सबसे पिछड़े प्रदेशो में समाजवाद का प्रयोग सफलता के साथ हो रहा है।

हम पर यह दोष भी मढ़ा जाता है कि हम भारत पर एक विदेशी पद्धति

लादना चाहते हैं—भारत की तो अपनी खास समस्या है और उसकी हालत भी कुछ दूसरी ही है।

मैं स्पष्ट कर दूँ कि भारत की खास समस्या को मैं नज़रअन्दाज नहीं करता और न कभी यह भूलता हूँ कि हमारा देश सास्कृतिक दौड़ में बहुत पीछे पड़ गया है। यदि हम ऐसा करे, तो यह तो मार्क्स की शिक्षा-दीक्षा के बिल्कुल विपरीत होगा। हमने भारतीय दार्शनिकों की विचार-प्रणाली की छानबीन की है और उसकी बारीकी और गहराई के कायल हैं। किन्तु हमारे देश की सामाजिक स्थिति इतना अधिक बदल गई है और इस बदली हुई परिस्थिति ने ऐसी समस्याये ला दी हैं कि हमारे दार्शनिकों के हल उन पर लागू ही नहीं होते। कुछ ऐसे व्यापक सिद्धात हैं, जो सब काल मे लागू हो सकते हैं किन्तु इन व्यापक सिद्धांतों का दुरुपयोग उस समय नहीं किया जा सकता जब किसी खास बुराई को हटाने के लिए किसी खास उपाय की खोज की जा रही हो।

हमारे पुराने सिद्धान्त उस समय निर्मित हुए जब सभ्यता बहुत सीधी-सादी थी। न कृषि का उतना विकास हुआ था, न उद्योग धधे का। उस समय आदमी का शोषण बड़े पैमाने पर किया ही नहीं जा सकता था। उत्पादन उस समय छोटे और व्यक्तिगत पैमानो पर किया जाता था। जन-सख्या कम थी और प्रकृति उदार थी। सभी स्वस्थ पुरुष के लिए यह सम्भव था कि वे जगलों को काट कर अपने लिए जमीन और घर का प्रबन्ध कर लें।

किन्तु आज की हमारी कृषि की दशा देखिये या उद्योग-धधों की। उस समय से कितना अन्तर हो गया है। जमीन्दारी प्रथा हमारे देश की चीज नहीं है और न ये कारखाने और मिलें ही हमारे देश की पैदावार हैं। हिन्दोस्तान में विदेशी सरकार आई और उसने कितनी ही विदेशी समस्यायें हमारे सामने खड़ी कर दीं। जिस समय मनु महाराज का राज्य था, उस समय

जमीन या उत्पादन के अन्य साधनों पर एक मुट्ठी लोगों के सर्वाधिकार की बात ही कहाँ थी? और आजकल की जो हमारी समस्यायें हैं, वे तो इसी से पैदा हुई हैं।

ये समस्यायें जिस तरह भारत के प्राचीन अतीत से कोई सम्बन्ध नहीं रखती हैं, उसी तरह वर्तमान संसार से उनकी अटूट एकता है। चीन, जापान, इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका सब देशो के लोगो के सामने ये ही समस्यायें हैं। उत्पादन के साधनों का विकास होने से, दूसरे शब्दों में भाफ और बिजली के आविष्कार होने से, मनुष्य के शोषण करने की प्रणाली इतनी विकसित हो चुकी है जैसी कभी नहीं हुई थी। इस विकसित प्रणाली का ही दूसरा नाम है पूँजीवादी उत्पादन और वितरण की प्रणाली।

इसी पूँजीवादी प्रणाली की प्रतिक्रिया है समाजवाद। जहाँ जहाँ पूँजीवाद है, वहाँ वहाँ समाजवाद भी लागू होगा। समाजवाद की कोई देशीय सीमा हो नहीं सकती। इसकी जन्मभूमि जिस तरह इँगलैंड है उसी तरह जापान, जिस तरह जर्मनी उसी तरह चीन, जिस तरह अमेरिका उसी तरह भारत। जहाँ जहाँ पूँजीवादी शोषण का बोलबाला होगा, वहाँ वहाँ समाजवाद का उदय होगा, हिन्दोस्तान उसका अपवाद न हो सकता है और न है।

हिन्दोस्तान में सामंतशाही के जो ध्वसावशेष हैं, उनके चलते उसके रूप में थोड़ा अन्तर हो सकता है, किन्तु उसका स्वभाव सर्वत्र एक रहेगा। शोषित जनता के भिन्न भिन्न स्तरो के बीच शक्ति के समतुलन में अन्तर हो सकता है, समाजवाद की स्थापना की गति में मन्दता हो सकती है, किन्तु उसका उद्देश्य और लक्ष्य यानी पूँजीवादी-सामतवादी शोषण से जनता को मुक्त करना और जनता का राज्य एव समाजवादी समाज की स्थापना करना—यह तो पूँजीवादी देशो के समान ही एक रहेगा।

यह काम तो उन लोगों का है, जो हमपर पश्चिम का अनुकरण करने का

दोष लगाते हैं, कि वे हमारी वर्तमान समस्या का कोई भारतीय निदान पेश करें। भारत की विशेषताओं के गीत बहुत गाये जाते हैं—किन्तु कोई ऐसी व्यवस्था नहीं पेश की जाती है जो हमारी वर्तमान समस्याओं को सुलझा सके। मुझे तो ऐसा लगता है कि भारतीयता की दुहाई वर्तमान शोषण पर पर्दा डालने और उसे जारी रखने के लिए दी जाती है। फिर आपने जितनी विदेशी चीजें ले ली हैं, क्या समाजवाद उनसे भी ज्यादा विदेशी है? विधान-परिषद, धारा-सभा, लोकल बोर्ड, मिल का धुआँ, इंजिन की चीख—क्या इनसे भी ज्यादा विदेशी और 'अभारतीय' हमारा समाजवाद है?

हममें से कुछ लोग गांवो से निकटतम सम्बन्ध ही नहीं रखते, बल्कि वे उससे चिपके हुए हैं। वे लोग समझते हैं कि चूंकि समाजवाद में मशीन का उपयोग अनिवार्य है, अतः समाजवाद कायम होते ही गांव की स्वावलम्बी अर्थनीति समाप्त हो जायगी, गाव के सुन्दर स्वस्थ वातावरण का नाश हो जायगा और वहाँ भी शहर के शोषण के साथ शहरी अवगुण भी आ जायँगे।

आजकल के शहरो से मुझे भी चिढ़ है, मैं भी उनका दुश्मन हूँ। राक्षस के मुँह ऐसी अट्टालिकायें, भीड़भाड़, गन्दगी, कुरूपता और फिर मजदूरों के नरक ऐसे मुहल्ले—इन्हें देखकर किसके मन में विद्रोह और घृणा के भाव नहीं आते। ये सुन्दर जीवन के दुश्मन हैं। अधिकाश लोगों के लिए शहर रौरव का आवास है। शहरों में मनोरजन के साधन भी हैं, किन्तु वे आनन्द और सौन्दर्य की वस्तु नही हैं वल्कि थके हुए शरीर और तनी हुई नसों के लिए मादक पदार्थ है। शहरों का निर्माण जनता के शोषण की नींव पर हुआ है। शहरों ने गाँवों को दूहा है, इसलिए शहरों और गावो में स्वाभाविक शत्रुता का भाव है। ज्ञान, कला, आराम, चैन सबके सामान शहरों में केन्द्रित कर रखा गया है, इधर गाँव अविकसित और उपेक्षित रूप में सड़ रहे हैं।

यह सब सही है, किन्तु यह समझना गलत है कि समाजवाद में इस अप्राकृतिक विकास को कायम रखा जायगा या प्रोत्साहन दिया जायगा। समाजवाद तो समाज के निर्माण के उस कौशल का नाम है जो सम्पूर्ण समाज के समान और सुन्दर विकास को अपना लक्ष्य बनाता है। समाजवाद के बाद जो गाँव बसेंगे या शहर बसेंगे—वे आज के शहरों और गाँवों से बिल्कुल पृथक होंगे और इन दोनों में आज की तरह की शत्रुता और प्रतियोगिता भी नहीं रहेगी।

इसमें शक नहीं कि समाजवादी मशीनो को पसंद करते हैं। किन्तु समाजवादी कभी मशीन को शोषण का साधन नहीं मानता और न ऐसा भीषण यंत्र समझता है जो मानवता की हड्डियों को चूर-चूर और मानव आत्मा का खून कर देता है। मशीन को हम मजदूरो का, श्रमिकों का मित्र समझते हैं। मित्र भी ऐसा—जो मेहनत कम कर दे, पैदावार बढ़ा दे और हमारे लिए हवा-पानी सबपर विजय प्राप्त कर सके। यह सोचना ही गलत है कि मशीन के उपयोग का अर्थ ही होगा शहरो का बोलबाला और गाँवों की दुर्दशा। मशीन पर जब व्यक्तिगत अधिकार हो, तब ऐसा होना लाजिमी है। किन्तु ज्यों ही सारे समाज का अधिकार उसपर हुआ कि वह सारी जनसंख्या के हित में उत्पादन का सर्वोत्तम माध्यम बन गई।

समाजवादी समाज में एक ओर हम शहरों को नये ढंग से बसायँगे, उसमें उद्योगधंधों का सिलसिले से इन्तजाम करेंगे तो दूसरी ओर हम इन गांवो को भी झोपड़ों और घरों का अटपटा झुंड नहीं रहने देंगे—, सड़कों से दूर, ससार की हलचलो से दूर। हम गाँव को उन्नतिशील जनसंघ में परिणत कर देंगे जहाँ बिजली, रेल, टेलिफोन, रेडियो, सिनेमा, मोटर सबका सुख सब आदमी के लिए सुलभ हो। गाँव में भी हम उद्योगधंधों का प्रचार करेंगे और वहाँ ऐसा जनराज्य कायम करेंगे जो अपनी रक्षा,

स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन आदि का प्रबंध स्वयं कर ले—बाहरी सत्ता का मुँह नहीं जोहे ।

यो आप जिस दृष्टि से देखिये, समाजवाद भारतीय सस्कृति, परम्परा या स्थिति के प्रतिकूल नही जाता । समाजवाद, ससार की तरह, भारत के लिए भी कल्याण का मार्ग सिद्ध होगा ।

समाजवादी एकता

कुछ दिन हुए कलकत्ते में एक सवाल के जवाब में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—"कम्युनिज्म और सोशलिज्म में यह दोष है कि सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दोनों अपने दुश्मनों से लडने के बदले आपसी लडाई में ही अपनी ताकत खर्च किया करते हैं।" पण्डित नेहरू सोशलिस्ट हैं, फिर भी वह किसी सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं हैं। वह इसके गर्दोगुबार से और इसके दिल दुखानेवाले झगड़ों से दूर रहते हैं। इसलिए उनके लिए यह सम्भव है कि वह इस तरह का निर्लिप्त भाव रख सकें यद्यपि एक समाजवादी का कर्तव्य इसके प्रतिकूल है। मगर वह सभी लोग जो समाजवाद की उन्नति दिल से चाहते हैं उन्हे इस झगड़े के कारणों को जानना पड़ेगा और उन्हें दूर करने की कोशिश करनी पडेगी। अगर यह न हो सके तो सिद्धान्त और कार्य रूप में जिसमें अधिक सत्यता उन्हें मालूम हो उस ओर अपनी ताकत लगा देनी होगी।

यह बात बड़े अफसोस की है, फिर भी सच है कि सारी दुनिया में कम्युनिस्ट और समाजवादी अपनी ज्यादा ताकत आपस में लड़ने में ही खर्च करते

हैं। मगर यहाँ तो हमें अपने देश की हालत से खास मतलब है। यह ठीक है कि इस देश मे भी कम्युनिस्ट और समाजवादी एक दूसरे से लड़ते पाये जाते हैं। जो लोग दोनों को समान रूप से दोषी समझते हैं वह समाजवादियों के साथ अन्याय ही नही करते हैं बल्कि बातों को जनता के सामने उस शक्ल में नही रखते जो कि समाजवादी आन्दोलन की भलाई के लिए जरूरी है। फिर भी यह सम्भव नही कि देश मे समाजवादी एकता के लिए जो कोशिश की गई है उसका उन्हे कोई पता न हो।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी और हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी इस देश की दो मुख्य समाजवादी पार्टियाँ रही हैं। इन दोनों मे कांग्रेस समाजवादी पार्टी हिन्दुस्तान की सर जमीन से पैदा हुई चीज है। कम्युनिस्ट पार्टी तो बाहरी चीज है, कलमी पौधा है। कांग्रेस समाजवादी पार्टी राष्ट्रीय आन्दोलन से निकली है। इसकी स्थापना भारतीय राजनीति के विकास में एक बड़ी उल्लेख योग्य वस्तु थी। जो लोग समाजवाद का भला चाहते हैं और यह चाहते हैं कि आजादी का आन्दोलन समाजवादियों के प्रभाव में आये उन्हें इसका स्वागत करना चाहिये था। मगर इस नन्हीं सी पार्टी का कम्युनिस्ट पार्टी ने किस प्रकार स्वागत किया? उसने फौरन उसपर चौतर्फा वार शुरू कर दिया। इसमें ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी के बड़े-बड़े नेताओं ने भी, जो कि हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी के मालिक मुखत्यार हैं, हिस्सा लिया। कां० स० पार्टी को 'सोशल फैसिस्ट' की उपाधि दी गयी, इसे भारतीय पूँजीवादी गिरोह का प्रगतिवादी पोषक बताया गया और एक जहरीली उपज समझकर इसे खत्म कर देने की नीति निर्धारित की गई।

मगर कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने इस अखाड़े मे कूदने से इन्कार किया। खुल्लमखुल्ला विरोध का सामना करते हुए, समाजवादी एकता की नीति अख्तियार की और सभी मार्क्सवादी समाजवादी गिरोहो और व्यक्तियों को मिलाकर

हिन्दुस्तान की एक बड़ी समाजवादी पार्टी का यह महान उद्देश्य नहीं सफल हुआ। "समाजवादी एकता" नाम की पुस्तिका मे इस प्रयत्न और उसकी असफलता की पूरी कहानी बड़ी अच्छी तरह दी गई है। वह सारी कहानी तो यहाँ नहीं दोहरानी है। उस असफलता की बुनियादी वजह क्या थी उससे यहाँ मतलब है। फिर भी इस मामले को समझने के लिए जरूरी है कि उस कहानी की मुख्य बातें हमें मालूम हों।

एक साल से कुछ ज्यादा तक कम्युनिस्ट पार्टी ने हमारे खिलाफ यह लड़ाई चलाई। अन्त में जब कम्युनिस्ट इन्टरनैशल की सातवीं कांग्रेस ने अपनी तोड़फोड़ की नाशकारी नीति बदली तो हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपना रुख एक बार फिर बिल्कुल ही बदल दिया। इस बीच मे अपनी इस नीति का नतीजा वह भोग चुके थे। इसी के कारण जर्मनी में नात्सियों के हाथ में ताकत आई। जहाँ कुछ ही साल पहले यह लोग राष्ट्रीय झण्डा जला चुके थे अब कम्युनिस्ट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लहराते झण्डे के साये में इकट्ठे होने लगे। यकायक कांग्रेस समाजवादी पार्टी का सोशल फैसिज्म जाता रहा। यह एक सच्ची समाजवादी पार्टी बन गई और पीछे चल कर एक क्रांतिकारी मार्क्सवादी पार्टी भी बन गई।

इस तब्दीली से हमें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने अपनी नीति जब तक नहीं बदली थी तब भी हमने कम्युनिस्टों को अपनी पार्टी में शामिल होने का न्योता दे रक्खा था। उनके नीतिपरिवर्तन के बाद तो हम लोगों ने फौरन उनके साथ एक इकरारनामा किया। उसके अनुसार उन्होंने कांग्रेस समाजवादी पार्टी में शामिल होने, उसे मजबूत करने और आगे बढाने का वादा किया और कम्युनिस्ट पार्टी को मिलाकर एक संयुक्त समाजवादी पार्टी बनाने के उद्देश्य को स्वीकार किया और अपनी ओर से हमने यह वादा किया कि दोनों

पार्टियों को मिलाने के काम में मदद करने के ख्याल से हम लोग अपनी पार्टी में उन्हें शामिल कर लेंगे।

वह हमारे लिए गर्व का दिन था। मगर हमने अपने दोस्तों को पहचाना नही था। जैसे-जैसे दिन बीतते गये यह साफ होता गया कि कम्युनिस्टों को एकता मे कभी विश्वास नहीं था। उन लोगों के लिए एकता का नारा तो सिर्फ कांग्रेस समाजवादी पार्टी, उसके मच, सगठन और प्रभाव से फायदा उठाने के लिए था। अपने मेम्बरो को कम्युनिस्ट पार्टी ने बराबर यह कहा कि कांग्रेस समाजवादी पार्टी एक असमाजवादी सस्था है, जिस पर उन्हें कब्जा करना या अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करना चाहिये। उन्हें बराबर यह भी कहा गया कि सही माने में क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी तो एक ही हो सकती है यानी कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल की शाखा।

यह अन्दर अन्दर की धोखे और दगाबाजी की नीति ने बहुत सारे झगड़े और कठिनाइयां पैदा कीं। लेकिन काग्रेस समाजवादी पार्टी ने, और इसे हम उसकी कमजोरी समझते हैं, इन सब बातों की ओर से आँखें बन्द कर लीं और कम्युनिस्ट पार्टी की सभी चालबाजियो को सब्र के साथ बर्दाश्त करती गयी। यह ठीक है कि उसने एकता की भावना से प्रभावित होकर ऐसा किया, मगर वह इस भावना में बहुत दूर तक बह गई।

इसके बाद युरोपीय महायुद्ध का समय आया। कुछ ही महीनों के अन्दर कम्युनिस्ट पार्टी ने देश की सभी राजनीतिक सस्थाओ का विरोध करना शुरू कर दिया। कांग्रेस (गान्धी जी और जवाहर लाल के सहित), सुभाष बोस और फॉरवर्ड ब्लॉक, काग्रेस समाजवादी पार्टी, एम० एन० रायवादी, असल मे, अपने को छोड़कर कम्युनिस्ट सभी चीज और सभी संस्था के खिलाफ हो गये। वस्तव मे उनका ख्याल था, जैसा कि एक कम्युनिस्ट नेता ने लेखक को बताया, कि युद्ध के क्रातिकारो समय में जनता के सामने उसके सच्चे

क्रान्तिकारी नेता की शक्ल मे सिर्फ कम्युनिस्ट पार्टी को ही आना चाहिये। इसलिए और सभी पार्टियो का भण्डाफोड़ करना आवश्यक हो गया।

जब कम्युनिस्ट इस अवस्था मे पहुँचे और कांग्रेस समाजवादी पार्टी पर उन्होंने धावा बोल दिया तब कांग्रेस समाजवादी पर्टी के लिए अपनी पार्टी से कम्युनिस्टों को निकाल देने के अलावा और कोई उपाय नहीं रह गया। इससे कम वह कर ही क्या सकती थी। मगर अब भी वह इससे आगे नहीं जाना चाहती थी। अस्तु, उसने स्वतन्त्र समाजवादी पार्टियों की तरह कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मिलकर काम करने की इच्छा प्रकट की। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी अपना स्वतन्त्र क्रान्तिकारी रूप नष्ट होने देना नहीं चाहती थी। इसलिए वह 'लिये लुकाठी हाथ' आगे बढती गई। उसका सबसे पहला काम कांग्रेस समाजवादी पार्टी को तोड़ना और मजदूरों, किसानों और विद्यार्थियो की संस्थाओं में उसका प्रभाव नष्ट करना हो गया। इस आक्रमण के सामने कांग्रेस समाजवादी पार्टी के लिए लौटकर मुकाबला करने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं रह गया। वह आपस की लड़ाई नहीं चाहती थी मगर उसे अपना काम तो करना था और हिन्दुस्तान की जनता के प्रति अपना जो कर्तव्य वह समझती थी उसे तो पूरा करना था।

इस तरह एकता की आशाएँ हवा के साथ उड़ गईं। क्या हम पूछ सकते हैं कि इन बातों का ख्याल करते हुए किस तरह लोग ,आज के झगड़ेकी जिम्मेदारी कांग्रेस समाजवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों पर बराबर रखते हैं।

झगड़े की जड़—कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल

मगर इस सवाल को छोड़िये। इससे ज्यादा महत्त्व इसी बात का है कि एकता के ये प्रयत्न क्यों निष्फल हुए। अगर हम यह कहे कि इसकी

जिम्मेवारी कम्युनिस्टों की बेईमानी और फिकापरस्ती पर है तो इस मामले को बहुत ज्यादा सीधा-सादा बना देना होगा। इसका कारण बहुत बड़ा था। वह कारण खुद कम्युनिस्ट इण्टरनैशनल था। जब से रूस में स्टॉलिन का प्रभुत्व हो गया तब से लेनिन का वह मशहूर अन्तर्राष्ट्रीय सघ, जो कि विश्वक्रान्ति का साधन बननेवाला था, धीरे धीरे सोवियेट रूस के विदेशी विभाग का हिस्सा बन गया और उससे सम्बन्धित सारी पार्टियाँ सोवियेट विदेशी नीति के विज्ञापन आफिस का काम किया करती थीं। हमारा ख्याल है कि सनदयाफ्ता कम्युनिस्ट पार्टियों के अलावा और कोई इसका विरोध नहीं करेगा। जिस तरह कम्युनिस्ट हिन्दुस्तान मे ही नहीं, सारी दुनिया में इस लड़ाई के दर्म्यान चक्कर काटते रहे हैं उससे बढकर इसका और सबूत क्या हो सकता है? इस लड़ाई के बाद, कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल को तोड देने पर भी, नीति वही चलती रही। इन्टरनैशनल के बदले अन्दरूनी तरीके से सोवियेट रूस की हुकूमत का प्रभुत्व है।

तो इस मसले को पकड़ यहीं पर है। हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी कम्युनिस्ट इण्टरनैशनल की एक शाखा थी। जब तक हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी जैसी थी वैसी रहती तब तक हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी या कहीं और की कम्युनिस्ट पार्टी दूसरी किसी समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर कम्युनिस्ट इण्टरनैशनल से अलग कोई संयुक्त समाजवादी पार्टी नहीं बना सकती थी। अगर उसने ऐसा किया भी हो तो वह सिर्फ एक चाल थी। उसमे चलकर, फिर वक्त पाकर, उस संयुक्त पार्टी को तोड़ा जाय और अगर हो सके तो ज्यादा ताकत के साथ कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल से सम्बन्ध स्थापित किया जाय। कैटलोनिया (स्पेन) में ठीक ऐसा ही हुआ। इससे भी ज्यादा सम्भव है। एक कम्युनिस्ट पार्टी के लिए किसी दूसरी समाजवादी पार्टी से एकता स्थापित करना असम्भव है। वह दूसरी किसी पार्टी को मार्क्सवादी पार्टी

नहीं मान सकती। इस तरह मार्क्सवादी आन्दोलन, 'रोमन धर्म' की तरह चीज हो गई है, जिसका धर्मस्थान मास्को है, जिसका "पोप" स्टालिन है।

तो फिर उपाय क्या था? या तो सभी समाजवादी कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल की मातहती अख्तियार कर लेते और उसकी किसी न किसी शाखा के सदस्य बन जाते या जो ऐसा नहीं कर सकते थे वे कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल से स्वतन्त्र अपनी अलग पार्टी बनाते। इस तरह वे अन्तर्राष्ट्रीयता से हाथ थोड़े ही धो बैठते। जब लेनिन द्वितीय इन्टरनैशनल से अलग हो गया और जब तक उसने तृतीय इन्टरनैशनल नहीं बनाया था, उसकी बोलशेविक पार्टी किसी इन्टरनैशनल समाजवादी संस्था से सम्बन्धित नहीं थी। इस कारण वह उन वर्षों में सिद्धान्त या कार्य में कम अन्तर्राष्ट्रीय थोड़े ही हो गई थी? एक समाजवादी पार्टी अगर अवस्था विशेष के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध नहीं स्थापित करती तो वह अन्तर्राष्ट्रीयता से परे नहीं हो जाती। वह सिर्फ यह कहती है कि इस समय मजदूरों की कोई सही माने में अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं है। द्वितीय इन्टरनैशनल खत्म हो गया। अगर जिन्दा भी है तो ऐसी गिरी हुई हालत में है, क्रांतिकारी उसूलों से इतनी दूर है कि विश्वक्रांति में उसका हाथ नहीं हो सकता। तृतीय इन्टरनैशनल भी खत्म हो गया। वह भी तो नाम को ही अन्तर्राष्ट्रीय था। वह तो सरासर स्टालिन की हुकूमत के हाथ में था। मास्को के एजेण्टों को छोड़ कर और कोई समाजवादी यह मानने को तैयार नहीं होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन इस हुकूमत के मातहत कर दिया जाय। मुझे भरोसा है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू तो ऐसा कभी नहीं चाहेंगे। एक समाजवादी की हैसियत में कम से कम वह तो मास्को का हुक्म मानने को तैयार नहीं होंगे यद्यपि अन्य समाजवादियों की तरह वह सोवियेट यूनियन के साथ मिल कर काम करने को बड़े उत्सुक होंगे। चतुर्थ इण्टरनैशनल तो इस तरह एक फिर्के की चीज है कि वह दुनिया

के क्रान्तिकारी मजदूरो की व्यापक सस्था नहीं वन सकती। इन्टरनैशनल कम्युनिस्ट विरोधी सघ के लिए भी यही बातें सच हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी समाजवादी एकता सघ की विभिन्न देशों में स्वतन्त्र क्रातिकारी पार्टियाँ हैं मगर उन देशो में भी उनके पीछे जनवल नहीं है।

आज समाजवादियों मे जो विभिन्नता पाई जाती है, क्या हिन्दुस्तान में और क्या वाहर, वह एक तरफ क्रातिकारी मार्क्सवाद और दूसरी तरफ तरह तरह के निम्नमध्यमवर्गीय सुधारवादी समाजवाद को लेकर नहीं है बल्कि वह एक तरफ तो क्रातिकारी मार्क्सवादको पूरी तरह माननेवालो मगर मास्को की मातहती न क़बूल करनेवालो और दूसरी तरफ जो लोग इस मातहती को क़बूल करते हैं उनके बीच के झगड़े पर निर्भर हैं।

काग्रेस समाजवादी क्रातिकारी मार्क्सवाद को पूरी तरह क़बूल करते है मगर वह आज किसी इन्टरनैशनल'से नाता नहीं जोडना चाहते। काग्रेस समाजवादियों का विश्वास है कि मार्क्सवादी सिद्धान्तो को हिन्दुस्तान की अवस्था पर घटाना उनका काम है। लन्दन या मास्को मे बैठे हुए लोगों का यह काम नहीं है। अपने निर्णयों मे वे अवश्य अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, दुनिया के एकमात्र समाजवादी राज्य की हालत और दुनिया के मजदूरों का ख्याल करेंगे। मगर अन्तिम निर्णय तो उन्हीं का होगा। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन की आज जो अवस्था है उसमे दुनिया की सभी समाजवादी पार्टियों के लिए समान केन्द्रीय निर्देश जारी करना असम्भव है। वास्तव मे यह विचारणीय है कि दुनिया की सभी समाजवादी पार्टियों के लिए कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल की तरह केन्द्रीय निर्देश का देना सम्भव है या नहीं। चीन मे इसका कैसा नतीजा हुआ यह एडगर स्नो ने अपनी पुस्तक 'रेड स्टार ओवर चाइना' मे अच्छी तरह दिखाया है। अगर एक सही माने में क्रातिकारी समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय सघ स्थापित हो जाय, उसका कार्य प्रजातान्त्रिक रीति

से हो और वह दुनिया के समस्त या प्रायः समस्त समाजवादी आन्दोलन पर प्रभाव रखता हो तो भी भिन्न भिन्न पार्टियों के कार्य का परस्पर सम्बन्ध करने, आन्दोलन की पूरी ताकत को प्रत्येक पार्टी के लिए उपलब्ध करने और कुछ बड़े बडे नियम निर्धारित कर देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जा सकता। क्या हम आशा करें कि इस युद्ध के फलस्वरूप दुनिया के मजदूरों का एक सही माने में अन्तर्राष्ट्रीय संघ जन्म लेगा? कम से कम, हम सब उसके लिए प्रयत्न तो करें।

तो समाजवादियो और स्टालिनवादी कम्युनिस्टों में झगड़े की बुनियादी वजह यह है। यह याद रहे कि हम मास्को का नेतृत्व इस लिए नहीं मानने से इन्कार करते कि मजदूरों के सबसे पहले राज्य के लिए हमारे हृदय में प्रेम नहीं है या हम उसके महत्व को नहीं समझते। इस मामले में हमारा कम्युनिस्टों से कोई झगड़ा नहीं है। मगर हमारा विश्वास है कि सोवियट राज्य की भलाई इसमें नहीं है कि वहा की हुकूमत जो कुछ करे सभी में हम उस का हाँ में हाँ मिलाया करें। वास्तव में अपने तरीकों के द्वारा कम्युनिस्ट समाजवाद तथा सोवियट का फायदा करने के बदले उनका नुकसान-करते हैं। ब्रिटिस साम्राज्यशाही युद्ध में बिना शर्त सहायता करने की बात कहकर कम्युनिस्टों ने कम्युनिज्म को ही बदनाम नहीं किया बल्कि सोवियत के खिलाफ भी, जिसके सनदयाफ्ता एजेन्ट होने का वे दम भरते हैं, सन्देह पैदा किया।

रूस से लौट आने पर सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने रूस के नौजवानों की वीरता और त्याग की प्रशसा करते हुए कहा था—"अपने देश में भी ऐसे ही वीर और सामर्थ्यवान युवकों की आवश्यकता है। हमारा लक्ष्य भी अनिवार्यत. वही होना चाहिये जो कि सोवियत युवक का है। लेकिन उस लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग का स्वरूप हमारे अपने वातावरण द्वारा निर्धारित होना चाहिये

न कि रूस अथवा अन्य किसी देश द्वारा।" इसी तरह भारतीय वातावरण को मास्को नहीं समझ सकता। इसे तो वे ही समझ सकते हैं जो हिन्दुस्तान में जन्म लेते और मरते हैं।

इसके अलावा काग्रेस समाजवादी कम्युनिस्ट पार्टी के इस सिद्धान्त को अमान्य समझते हैं कि झुठाइयों, धोखेबाजी और जालसाजी के द्वारा ही क्रातिकारी सिद्धान्तो पर अमल किया जा सकता है। चालबाजी के जरिये कभी क्रान्ति नहीं लायी जा सकती। जहाँ हम एक तरफ भलाई और बुराई के सम्बन्ध में मध्यमवर्गवालों की मिथ्या धारणाओं को अस्वीकार करते हैं, वहाँ दूसरी तरफ हमारा यह पक्का विश्वास है कि क्रान्तिकारी कार्यों का आधार ईमानदारी, क्रान्तिकारी आदर्शवाद तथा सत्य के प्रति अधिक से अधिक सम्मान होना चाहिये। हम इसमे भी विश्वास नहीं करते कि हृदय-हीनता क्रान्तिकारी कार्य का अग है। क्रान्तिकारी उद्देश्य मे अडिग विश्वास रखते हुए, हम, हृदयहीनता को क्रान्तिविरोधी मान कर, उसकी निन्दा करते हैं और उसे मार्क्सवाद के विरुद्ध समझते हैं। मानव प्रेम तबतक मध्यमवर्गीय उदारता है जबतक वह सामाजिक परिवर्तन के एक वैज्ञानिक सिद्धान्त से सम्बन्धित नहीं है परन्तु सामाजिक क्राति के सहयोगी की हैसियत से वह मार्क्सवाद का मूल है।

कम्युनिस्टों के साथ मतभेद के एक और विषय की हम चर्चा करेंगे। यह है राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रश्न और समाजवाद और मध्यम श्रेणियों के सम्बन्ध की समस्या। अगर पिछले दो महायुद्धों के बीच के वर्षों में कोई बात देखने में आयी है तो वह यह है कि मध्यम वर्गों और राष्ट्रीयता की भावना की उपेक्षा समाजवादियों के लिए घातक ही हो सकती है। हिन्दुस्तान ऐसे मुल्क में, जो कि अपनी आजादी के लिए लड़ रहा है, राष्ट्रीयता का प्रश्न और भी बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। जर्मनी में समाजवादियों और कम्यु-

स्टों के पतन और नात्सीवाद के उत्कर्ष के पश्चात तृतीय इण्टरनैशनल की कार्यपद्धति से यह पता चला कि अन्ततोगत्वा उसने इन प्रश्नों के महत्व को समझा। इन्टरनैशनल की सातवी कांग्रेस ने तो वास्तव मे इन नसीहतों की रोशनी मे अपनी पूरी नीति को एक नया रूप दिया और इसी का यह परिणाम था कि हिन्दुस्तान के कम्युनिस्टों की नजर में राष्ट्रीय कांग्रेस यकायक संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बन गयी किन्तु हाल की घटनाओ से यह पता चलता है कि इस कदर ज्यादा नुकसान उठाकर हासिल की गई नसीहतों का कम्युनिस्ट विचार धारा पर कोई गहरा असर नहीं पड़ा। हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी फिर इस तरह चल रही है मानो कांग्रेस जैसी संस्था का, जिसके ४० लाख सदस्य हैं बाकायदा मेम्बर न होते हुए भी करोड़ों दूसरे भारतीय जिसके फरमाबरदार हैं और जो कि सचमुच आजादी की लड़ाई लड़ रही है, कोई वजूद ही न हो। यह बेवकूफी की हद है और इसका नतीजा सिर्फ यही हो सकता है कि हिन्दुस्तान की जनता से समाजवाद का सम्पर्क जाता रहे और अन्त में हिदुस्तान में वह नाकामयाब साबित हो।

इस प्रसग में यह याद रखने की चीज़ है—लेकिन इस बात की आवश्यकता पर बहुत जोर देता था—कि अत्याचारी देश की असहनीय राष्ट्रीयता तथा अत्याचार पीड़ित देशकी क्षम्य राष्ट्रीयता के अन्तर पर ध्यान दिया जाय। स्वयं लेनिन के शब्दों में "जिस व्यक्ति ने इस अन्तर को नहीं समझा है उसे निस्सन्देह राष्ट्रीय प्रश्न पर मज़दूर वर्ग के रुख के विषय में कुछ भी नहीं मालूम है।"

कांग्रेस समाजवादियों की नीति कम्युनिस्ट पार्टी की नीति के ठीक विपरीत है और पहले भी रही है। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ घनिष्ठ सहयोग के साथ काम करना हमारी मौलिक नीति रही है। वाक़या यह है कि राष्ट्रीय क्रान्ति के अर्थ में हमने अपने कर्त्तव्य की कल्पना की है। इस राष्ट्रीय

क्राति की सिद्धि समाजवादी पार्टी के ज़रिये नहीं बल्कि स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलन से हो सकती है। हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि सामाजिक (आर्थिक) शक्तियों को राष्ट्रीय शक्ति से सन्बन्धित करें और समाजिक शक्तियो को आगे लावें। इस प्रकार हम न केवल राष्ट्रीय क्रान्ति को सफल बनायेंगे वल्कि उसके सामाजिक महत्व और उसकी दिशा मे भी परिवर्तन करेंगे।

राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीयता का भावना का प्रश्न इससे सम्बन्धित विषय है। 'मजदूरों की कोई पितृभूमि नहीं, यह एक ऐसा नारा है जिसे एक पिछड़ा हुआ मजदूर वर्ग जितना कम मात्रा में समझता है उतनी ही अधिक मात्रा में राष्ट्रीयतावादी मध्यमवर्ग उससे नाराज होता है। हिन्दुस्तान की अपनी एक सस्कृति है। इस पर प्रत्येक भारतीय को, जिसमें समाजवादी भी शामिल हैं, गर्व होना चाहिये। मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन ने अपनी राष्ट्रीय सस्कृति में जो श्रेष्ठ बातें थीं उनका सदैव समर्थन किया; उनकी अन्तर्राष्ट्रीयता इस कारण उन्हे अपनाने से नहीं हिचकी। रूस से रेडियो पर जो भाषण ब्राडकास्ट किये जाते रहे हैं वे इस बात को स्पष्टतः बताते हैं कि सभी रूसी किसानों और मजदूरों मे किस हदतक राष्ट्रीय भावना विद्यमान है और किस प्रकार एक समाजवादी सरकार इस राष्ट्रीय भावनो का सहारा लेने से नहीं हिचकती। तब भी भारतीय कम्युनिस्टों ने प्रत्येक भारतीय वस्तु के प्रति अपनी घृणा दिखाकर, भारतीय सस्कृति को, जो कि एक समाजवादी भारत की अनिवार्य पृष्ठभूमि होगी, अस्वीकृत करके, अपनी तोते की तरह रटटू तरीके से काम करने की आदत से और इस बात की जिद से कि भारतीय मजदूरो और समाजवादियो की पितृभूमि सोवियत रूस है, समाजवाद और कम्युनिज्म के प्रति घोर विरोध पैदा कर दिया है। इसके कारण इस देश में समाजवाद का भविष्य ही अँधेरे मे पड़ गया है।

सोवियेट रूस बनाम विश्वक्रान्ति

एक अन्तिम प्रश्न की समीक्षा करना और शेष रह जाता है। वह यह है कि कम्युनिस्ट पार्टियाँ हर बात मे मास्को के आज्ञानुसार क्यों चलती हैं? क्या मास्को से नैतिक और आर्थिक सहायता प्राप्त करने की और एक शक्तिशाली सरकारके सम्पर्क से बल प्राप्त करनेवाली भावना इसमे काम करती है?

इसमें सन्देह नहीं कि यह एक कारण है। पर इससे पूर्णतः इस प्रश्न का समाधान नहीं होता। सच्ची बात यह है कि समाजवादी सरकार की स्थापनो और पूँजीवाद के समुद्र में उसकी एकान्त स्थिति ने इस गलत मार्क्सवादी विचार को जन्म दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादो आन्दोलन के प्रत्येक स्वार्थ, विश्वक्रांति के प्रत्येक स्वार्थ तथा उपनिवेशो को आजादी के आन्दोलन के प्रत्येक स्वार्थ से उस समाजवादी सरकार से स्वार्थ ऊपर होने चाहियें। साधारणतः इस विचार को अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त होने का कोई अवसर नही था। लेकिन प्रथम मजदूर सरकार के केन्द्रस्थल से इसका प्रचार किये जाने और उसके समस्त प्रचार के साधनो का उसके समर्थन मे उपयोग होने से यह तथाकथित कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल का मौलिक विचार बन गया। रूस का प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसकी इस सिद्धान्त मे आस्था नहीं थो, खत्म कर दिया गया। रूस से बाहर जिस किसी ने भी इससे मतभेद रखा उसे इण्टरनैशनल से बुरी तरह निकाल दिया गया। इस प्रकार एक समूचे अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त का विकाश किया गया। इसे मार्क्सवादी भाषा के आवरण में आच्छादित किया गया।

इस सिद्धान्त के अनुसार सोवियत रूस की वैदेशिक नोति में तब्दीली होने के साथ ही कम्युनिस्ट भी पलटे खाते रहे। जर्मनी के कम्युनिस्ट सोशल डेमोक्रेटों से लड़ते रहे और चुनावों में उन्होंने हिटलर का भी साथ दिया।

यूरोप के कम्युनिस्टों ने अबीसीनिया के युद्ध के जमाने में डॉक-मजदूरों की हड़तालो को इसलिए भग किया कि रूसी तेल फासिस्ट इटली को भेजा जा सके (यद्यपि स्वय कम्युनिस्ट इण्टरनैशनल ने इटली के बहिष्कार का एलान कर रखा था)। यूरोपीय कम्युनिस्ट पार्टियो ने पूँजीवादी पार्टियो से सहयोग करना शुरू किया और फौजी रकमो पर अपनी मजूरी देने लगी। फ्रांस के कम्युनिस्टो ने सयुक्त मोर्चे के जमाने मे फ्रेन्च उपनिवेशों के राष्ट्रीय आन्दोलनो का विरोध किया। जर्मन कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से रूस जर्मनी समझौते के जमाने में एलान किया गया कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ससार की सबसे बड़ी प्रतिगामी शक्ति है और उसका नाश इसलिए आवश्यक है कि उसके एजेन्ट-थीसेन का गुट्ट या सोशल डेमोक्रैट—जर्मन मजदूरों के ऊपर अपना आधिपत्य न कायम कर ले। ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी ने पहले चेम्बरलेन को मजदूरों का दुश्मन नं० १ और हिटलर को दुश्मन न० २ बतलाया और बाद मे चेम्बरलेनके उत्तराधिकारी को बिना किसी हिचक के पूरी मदद दी ताकि जिसे पहले दुश्मन न० २ कहा गया था उसे हराया जा सके। भारतीय कम्युनिस्टों ने पहले तो यह एलान किया कि इन्कलाब आ रहा है और ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध जन सग्राम की माँग की और उसके बाद वे उसी साम्राज्यशाही, की बिना शर्त सहायता के लिये भी तैयार हो गये। मार्क्सवाद के प्रति यह सारा अविश्वसनीय विश्वासघात इसलिए किया गया कि सोवियत रूस की भलाई के लिए वह जरूरी था अथवा यह कहा जाय कि रूस की सरकार अपनी भलाई के लिए ऐसा जरूरी समझती थी और कम्युनिस्टो को तो हुक्म की पाबन्दी करनी थी। दूसरे शब्दो मे, कम्युनिस्टो ने सभी मार्क्सवादी सिद्धान्तो को तिलाजलि देकर, उसके स्थान पर इस नये सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया है कि सोवियट सरकार जो हुक्म दे उसे बजा लाना हमारा फर्ज है। यह बात भी ध्यान देने की है कि रूस की भलाई किस बात मे है, इसका

निर्णय भी अकेले स्टालिन पर छोड़ दिया गया है, अर्थात् यह समझा जाता है कि स्टालिन से गलती हो ही नहीं सकती। कम्युनिस्टों को इससे कोई सरोकार नहीं कि स्टालिन की गलतियाँ काकेशस पर्वत की बड़ी से बड़ी चोटी से भी बड़ी क्यों न हों। चूंकि आखिरी फैसला स्टालिन के हाथों मे है इसलिए गलतियाँ करना और उनको दुरुस्त करना उन्हीं के ऊपर छोड दिया जाता है। अनुचर का काम केवल नम्रतापूर्वक आदेशों का पालन करना है।

हमें इस प्रकार के मार्क्सवाद में विश्वास करने से पूरा इन्कार है। जब कि केवल एक ही देश में समाजवादी शासन कायम हुआ हो, इससे बढ कर दूसरी स्वाभाविक बात क्या हो सकती है कि पूंजीवादी देश उसके विनाश की बात सोचे? ऐसी अवस्था में समाजवादी राज्य को बचाने का एक मात्र क्रान्तिकारी उपाय यही है कि सभी देशों में पूँजीवाद को कमजोर करने और उसकी जड़ खोदने की कोशिश की जाय। अगर इस रास्ते पर चला जाय तो समाजवादी राज्य की हार भी (अगर हार हुई भी तो) केवल क्षणिक सिद्ध होगी। उसके पश्चात् न सिर्फ उसी का पुनरुत्थान होगा, बल्कि संसार भर में पूँजीवाद की इमारत चकनाचूर हो जायगी। इस सिद्धान्त में विश्वास न करने का अर्थ यह विश्वास करना है कि पूंजीवादी अवस्था और फासिजमकी अवस्था कायम रहेगी और साथ ही मजदूर जमात की क्रान्तिकारी शक्ति में अपना अविश्वास प्रकट करना है। यह मानना कि समाजवाद की स्थापना सुदूर भविष्य में, केवल सोवियत रूस की शक्ति से हो सकती है, मार्क्सवाद पर पानी फेरना है। पहले उत्साहहीनता से अपनी रक्षा करने की नीति का अनुसरण करने, फिर राजनीतिक अवसरवाद के अटपटे रास्ते को पकड़ने और दूसरे देशों के समाजवादी आन्दोलनों को रूस की वैदेशिक नीति के अनुसार ढालने की कोशिश करने (ऐसे छोटे-छोटे मामलों तक में जैसे तेल की बिक्री करने के लिए मजबूर करने) के बदले अगर सोवियत संघ ने साहस के साथ काम

किया होता और विश्वक्रांति के हितों को दृढता के साथ अपने सामने रखा होता या, कम से कम, विभिन्न देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों मे हस्तक्षेप न करके उन्हे अपने इच्छानुसार प्रगति करने दिया होता तो आज यूरोप का इतिहास दूसरा होता। स्टालिन को जानना चाहिये कि जहाँ क्राति जबर्दस्ती नहीं की जा सकती वहाँ 'कुलकों' (समृद्ध किसानो) के बचाव और आत्म-हनन की भावना को अपना कर भी क्रान्ति नही की जा सकती। हमे यह नही भूलना चाहिये कि रूस के हित विश्व क्रान्ति के हितसे अलग नहीं हैं और सोवियत सघ की रक्षा मात्र ही कोई ध्येय नही हो सकता। सोवियत सघ जिन विचारो का प्रतिनिधित्व करता है वे अमर हैं। फासिस्टो की बड़ी से बड़ी विजय भी उन्हे नष्ट नही कर सकती। हमें घबराकर पीछे भागने और जो कुछ है उसे ही बचाने की ओर दौड़ने की जरूरत नही है। क्रान्ति के झण्डे को आगे लेकर बढते जाना हमारा कर्तव्य है। इस विश्वास के साथ कि ससार में शोषितों का राज्य कायम होकर ही रहेगा।

समाजवादियों और कम्युनिस्टों के झगड़े इन प्रश्नों को लेकर हैं। प्रत्येक समाजवादी का कर्त्तव्य है कि इन्हें समझकर अपना कर्त्तव्य निश्चित करे। इन झगड़ों से अपने को तटस्थ रखना जिम्मेदारी से भागना है।

सोशलिस्ट पार्टी: सिंहावलोकन

१.

पार्टी का जन्म १९३४ में हुआ और यह उसका १४ वाँ वर्ष गुजर रहा है। इन वर्षों में पार्टी बराबर आगे बढ़ती गई है और यद्यपि इसकी मेम्बरी सक्रिय कार्यकर्त्ताओं की जमात तक ही सीमित है, आज लोकप्रियता के लिहाज से यह देश की दूसरी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी है।

बम्बई के म्यूनिसिपल चुनाव को छोड़कर अब तक इस पार्टी ने स्वतन्त्र राजनीतिक पार्टी की हैसियत से काम नहीं किया है। बेशक इसकी मेम्बरी अलग रही है, इसके कायदे-कानून अलग रहे हैं, किसान और मजदूर हल्कों में भी इसने स्वतन्त्र रूप से काम किया है, मगर राजनीतिक दृष्टि से यह पार्टी कांग्रेस का हिस्सा रही है। राजनीतिक कामों के लिए पार्टी कभी कांग्रेस से अलहदा नहीं थी, और उन मामलों में अपने विचारों का प्रचार करने और उन्हें कांग्रेस कमेटियों के आगे पेश करने के सिवा कुछ नहीं किया। अल्पमत होने के कारण पार्टी की नीति ज्यादातर मौके पर कांग्रेस में नामजूर कर दी जाती रही है। इस वजह से लोगों को लगता है कि पार्टी का रुख हमेशा नकारात्मक रहा है। मगर इसका कारण यह नहीं था कि

हमारी नीति ही वैसी थी, बल्कि अल्पमत होने के कारण उन नीतियों को काग्रेस से मजूर करवाने, यानी उसकी बुनियाद पर काम करवाने में पार्टी असमर्थ थी। अल्पमत का—या उस मानी में विरोधी दल का ढग लाचारी उस समय तक नकारात्मक दीख पड़ता है, जब तक कि वह बहुमत मे आने की ताकत न हासिल कर ले।

मगर सच्चाई तो यह है कि हर बडे मसले पर, जो देश के आगे आया पार्टी की अपनी स्वतन्त्र नीति थी। जिस साल पार्टी का जन्म हुआ, काग्रेस मे वैधानिक मनोवृत्ति का दौर-दौरा था, हालाँकि पाँच साल पहले पण्डित मोतीलाल नेहरु ने लाहौर काग्रेस मे एलान कर दिया था कि आजादी हासिल किए बगैर वैधानिक कार्यक्रम को चलाने का उनका प्रयोग नाकामयाब रहा और उन्हे उस प्रोग्राम की कमजोरियो का विश्वास हो गया। सन् १९३४ मे काग्रेस के बाजाब्ता सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस करने के पहले ही डा० असारी और डा० विधानचन्द्र राय ने नई स्वराज्य पार्टी का नारा बुलन्द किया था। इस चाल के आगे मई १९३४ मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी को झुकना पडा, न सिर्फ सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस किया गया, बल्कि यह भी फैसला हुआ कि काग्रेस केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव मे हिस्सा ले।

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के पटना अधिवेशन के एक दिन पहले यह पार्टी कायम हुई और इसका पहला नकारात्मक काम हुआ वैधानिक मनोवृत्ति ओर केन्द्रीय असेम्बली मे फिजूल दौड-धूप करने की नीति का विरोध। पार्टी का तर्क था कि इस नीति से देश का ध्यान अगली लड़ाई की तैयारियो से हट जायगा ओर कार्यकर्ताओं की शक्ति बेजान बहस-मुबाहिसों में बर्बाद होगी।

पार्टी का दूसरा 'नकारात्मक' काम १९३५ के विधान में मत्रिपद ग्रहण करने की नीति का विरोध था। इस विरोध मे सिर्फ यह पार्टी ही नहीं थी,

बल्कि स्वयं पडित नेहरू और दूसरे प्रमुख कांग्रेसी नेता भी थे । पार्टी के सुझाव पर कांग्रेस जनो की मंत्रिपद-विरोधी कमेटी सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर की अध्यक्षता मे बनाई गई । सरदार शार्दूल सिह कवीश्वर ने इस सवाल पर कांग्रेस कार्यसमिति से इस्तीफा भी दे दिया । श्री रफी अहमद किदवई और श्री मीनूमसानी उस कमेटी के सयुक्त मत्री बनाए गए । मसानी उस समय अखिल भारतीय सोशलिस्ट पार्टी के भी सयुक्त-मत्री थे ।

वह विरोध एक प्रकार का 'नकारात्मक' रुख था । किन्तु इतने वर्ष बाद भी उस घटना पर विचार करने पर मेरा विश्वास बना हुआ है कि उस समय मत्रिपद ग्रहण करना बुरा हुआ । उससे फायदा तो कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि उसके चलते कांग्रेस मे ताकत और ओहदा पाने की ऐसी मनोवृत्ति पैदा हो गई कि आज कांग्रेस का सर्वनाश होने का खतरा है ।

इतने वर्षों तक कांग्रेस के अन्दर रह कर पार्टी ने जो कुछ काम किया, उसका ब्योरा मैं यहाँ नही देना चाहता । मेरा मकसद सिर्फ पीछे मुड़कर उन कामों का लेखा-जोखा लेना है । मैं देखता हूँ कि इन वर्षों मे हम लोगों का सारा समय कांग्रेस के कामों में या कांग्रेस पर अपना असर डालने मे खर्च हुआ ।

यहाँ मैं कह देना चाहता हूँ कि कांग्रेस के अन्दर हमलोगो की हैसियत वामपक्षीय अल्पमत की थी फिर भी बहुत से ऐसे मौके आये जब कि बहुमत के विचारों से हमारा पूरा-पूरा इत्तफाक था । खासकर राष्ट्रीय सग्राम के मौकों पर पार्टी के मेम्बरो ने कांग्रेस के उत्साही सिपाहियों की तरह काम किया और दूसरे कांग्रेस जनों के कन्धे से कन्धा भिड़ाया । हमारे आलोचक आम तौर पर हमारे इस काम को नजरअन्दाज कर जाते हैं ।

कांग्रेस के अन्दर रहकर हमने जो-कुछ किया, उसका हिसाब-किताब करने पर कोई भी कह सकता है कि हमने बराबर समझौते की नीति को

रोक-थाम को ; हमने कांग्रेस को लड़ाई का मोर्चा बनने की ताकत दी और हमलोगो ने काग्रेस के अन्दर समाजवाद के लिए मुफीद आबोहवा पैदा की। आज हर काग्रेसी, सचमुच वह समाजवादी हो या नहीं, अपने को समाजवादी करार देने को परेशान रहता है। यह हमारी पार्टी के कामों की मकबूलियत और तारीफ है ।

कांग्रेस के अन्दर अपने कामो के सम्बन्ध में एक और आलोचना है, जिसके मुतल्लिक मैं कुछ कहना पसन्द करूँगा। हमने जिस हद तक कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों मे हाथ बँटाया, उससे कहीं ज्यादा हमे करना चाहिए था। हमने ख्याल पैदा किया कि सब रचनात्मक कार्य गैरइन्कलाबी हैं और सोशलिस्टो के लिए वक्त की बर्बादी । इस तरह के ख्याल की जिम्मेवारी हमलोगों पर और खासकर मुझ पर सबसे ज्यादा है। मैं दर्ज करना चाहूँगा कि वह ख्याल बिल्कुल गलत था। अगर हम उन तामीरी कामो में लगे होते तो मुमकिन है, हम उनमे कितने ही बेशकीमती पहलुओं का इजाफा करते। लेकिन, यह सब किस हद तक हो पाता, आज पूरे भरोसे के साथ नही कहा जा सकता, फिर भी इसमे कोई शक नहीं उन कामो से अलग रहकर हमने तजुर्बे की बहुत-सारी दौलत खो दी। उन कामो में हमारे लिए बडे पैमाने पर जनता के पास पहुँचने का और हिन्दुस्तान के देहात की समस्याओं को नजदीक से समझने का मौका था।

हालाँकि हमारा ज्यादा वक्त काग्रेस के अन्दर के कामो में लगा, फिर भी हमारे काम सिर्फ काग्रेस तक ही महदूद नहीं थे । शुरू से ही हमारे कामो के दो प्रधान विभाग थे : एक काग्रेस के अन्दर और दूसरा काग्रेस से बाहर। जबकि हमारे राजनीतिक कार्य काग्रेस के अन्दर या उसके इर्द-गिर्द चलते हम आर्थिक और समाजी तबको से सम्बन्धित अपने कार्य बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से करते थे। वर्गगत अन्याय को दूर करने और वर्ग की फौरी

माँगों को पूरी करने की लडाई चलाने के लिए किसानों और मजदूरों का सगठन बनाना हमारी पार्टी के प्रोग्राम का पहला काम रहा। यह विश्वास भी बिल्कुल सही था कि इस काम से जनता न सिर्फ समाजवाद कायम करने के लिए तैयार होगी बल्कि फौजी तौर पर साम्राज्यशाही के खिलाफ लोहा भी लेगी।

जिस समय पार्टी कायम हुई, देश का मजदूर-आन्दोलन तीन संस्थाओ में बँटा हुआ था—(१) अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (२) कम्यूनिस्ट रेड ट्रेड यूनियन काग्रेस और (३) नेशनल फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन्स। इन तीनो मे से हम ने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को अपने लिए चुना 'क्योंकि यही सस्था राजनीतिक ख्यालों मे हमसे सबसे ज्यादा करीब थी। शुरू मे ही पार्टी और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के बीच समझौता हो गया जिसके मुताबिक पार्टी ने ट्रेड यूनियन काग्रेस को मजदूरों का केन्द्रीय सघटन माना और अपनी मजदूर-यूनियनों को उससे सम्बद्ध करना मजूर किया, ट्रेड यूनियन काग्रेस ने भी सोशलिस्ट पार्टी को मजदूर-वर्ग की राजनीतिक पार्टी कबूल करके उसे अपनी मदद देना स्वीकार किया।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस की पूरी सहमति से पार्टी ने ट्रेड यूनियन आन्दोलन की एकता का नारा बुलन्द किया और तीनों सस्थाओं को एक करने में बहुत बड़ा काम किया। मेल हो जाने के बाद सयुक्त सस्था का नाम अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस ही रखा गया, क्योंकि इस नाम की सस्था ही मूल सघटन थी जिससे बाकी दोनों दल फूट निकले थे।

समझौते के बाद से तीनो सस्थाओं के एक हो जाने तक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस में पार्टी का ही बोलबाला था। यह पार्टी द्वारा

चलाये गये मजदूर-कार्यों की वजह से नहीं, बल्कि बहुत-से प्रमुख ट्रेड यूनियन नेताओ के पार्टी मे दाखिल हो जाने से हुआ था। हमें स्वीकार करना चाहिए कि उस समय के ट्रेड यूनियन सम्बन्धी हमारे कामो मे वैसी कोई बात नही थी जिसके लिए हम खास तौर से फख्र करे। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि आजादी की लडाई के तकाजे उस समय इतने महत्वपूर्ण थे और हम मे से अधिकतर लोग उससे इतने नजदीक थे कि दूसरी तरह के कामो के लिए हमे बहुत कम वक्त मिलता था। अगस्त क्रान्ति के बाद पार्टी में नया खून दौडा और बहुत सारे नए लोग आए और तब हम मजदूर-आन्दोलन में चारो ओर फैल सके। इसके बाद से इस क्षेत्र मे जो कुछ काम हुआ है उसके लिए पार्टी को वाजिब फख्र हो सकता है। अफसोस की बात है, पजाब मे हमारे इन कामो का बहुत बड़ा हिस्सा उस दुखी इलाके की बर्बादियों मे खत्म हो गया है।

पिछली लडाई के जमाने में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस में कम्यूनिस्टों के कारनामों से जो फूट पैदा हुई है, वह इतनी हाल की बात है कि उसका तफसील में जिक्र करना फिजूल है। अफसोस की बात है कि मजदूर-आन्दोलन मे इस तरह फूट पड जाय। लेकिन अगर राजनीति, उसूलो मे इतना फर्क आ जाय और अच्छे बुरे की परवाह किए बगैर राजनीतिक मकसदो के लिए मजदूर-वर्ग का इस्तेमाल किया जाय तो फिर फूट बिल्कुल लाजिम हो जाती है। अगर काग्रेस गाँधीवादी सिद्धान्तों का मजदूर-आन्दोलन मे प्रयोग करने के नाम पर मजदूर आन्दोलन को सरकार की दुम मे बाँधने की कोशिश नहीं करती तो मजदूर आन्दोलन मे हिस्सा लेनेवाली गैरकम्युनिस्ट ताकतें कम-से-कम एक पाँत मे खड़ी रहतीं। राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काग्रेस की सकुचित और मनमानी नीति की वजह से उन ताकतो के लिए अलग हो जाने के सिवा कोई चारा नहीं था। मुझे तो जान पड़ता है कि इन

ताक़तों को देश की किसी दूसरी मजदूर संस्था में लाजिमी तौर पर संघटित होना ही है।

इस देश के किसान हालाँकि बेतरह पीडित और शोषित हैं, सोशलिस्ट पार्टी के जन्म के समय उनका कोई सुन्दर संघटन नही था। युक्तप्रात में अवध के किसान-आन्दोलन की तरह छिटफुट किसान आन्दोलन चलते थे। बिहार में भी प्रांतीय कांग्रेस ने १९२९ मे प्रान्तीय सरकार और जमीन्दारों की साजिश से लागू किए गए रैयतवारी कानूनों की मुखालिफत के लिए एक किसान-सभा बनाई थी। लेकिन प्रधानत' सोशलिस्ट पार्टी की मेहनत से और स्वामी सहजानन्द सरस्वती और फिर प्रो० एन० जी रगा की जोरदार मदद से अखिल भारतीय किसान सभा कायम की गयी। शुरु में कम्यूनिस्टों का कही से कोई पता नही था लेकिन समाजवादी एकता की खतरनाक नीति कबूल हो जाने के बाद, वे भी उसमे दाखिल हो गए। उसके बाद से इस सस्था का इतिहास फूट और गुटबन्दियों की ऐसी कहानी है, जो अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के इतिहास से भी ज्यादा तकलीफदेह है। आज पार्टी के आगे एक मुश्किल सवाल यह भी है कि किस तरह किसान-आन्दोलन का मुनासिब सघटन किया जाय। क्या हम पुरानी किसान सभाओ से ही काम चलाते रहे, जो वर्ग-संघटन से ज्यादा राजनीतिक अखाडा हैं या हम कोई ज्यादा दुरुस्त सघटन बनावें। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह कान्फ्रेन्स इस सवाल का सही जवाब देगी।

विद्यार्थी और स्वय-सेवक-आन्दोलन भी पार्टी के दो ऐसे कार्यक्षेत्र हैं, जिनका जिक्र किया जा सकता है। जहाँ-कहीं पार्टी ने कांग्रेस स्वयंसेवक सघटन से अलग होकर अपना संघटन बनाया, हमारा काम वक्त की गर्दिश को झेल सका है। अब तमाम प्रान्तीय और जिला स्वयसेवक सघटनों को एक

राष्ट्रीय सघटन में समन्वित करने का काम बाकी है और उसे हमलोगो को पूरा करना है ।

विद्यार्थी आन्दोलन को कम्यूनिस्टों के असर का लाजिमी नतीजा भुगतना पड़ा है । अखिल भारतीय छात्र-सघ के निर्माण में पार्टी का भी बडा हाथ था लेकिन वह शीघ्र ही कम्यूनिस्ट पार्टी का रगमच बन गया और उसका नतीजा हुआ आपसी फूट । छात्र-कांग्रेस के ऊपर पार्टी का अच्छा-खासा असर है और इस सघटन ने आजादी की लडाई मे शानदार हिस्सा भी लिया, लेकिन आज फिर छात्र आन्दोलन मे गड़बड़ी पैदा हो गई हैं । मेरी उम्मीद है कि तमाम गैरकम्यूनिस्ट विद्यार्थी एक होकर रहेगे और कम्यूनिस्टो की एकता के झूठे नारो से सावधान होकर उनके साथ जाने से इंकार करेंगे । मेरा शुरु से ख्याल रहा है कि छात्र-कांग्रेस में हमारी पार्टी के जितने विद्यार्थी हैं वे ओहदे के के लिए कोशिश नहीं करे । हाल की घटनाओ के बाद से मेरा यह विचार और भी दृढ हो गया है । मुझे लगता है कि अगर हमारे विद्यार्थी भाई अध्ययन और वाद-विवाद के लिए सोशलिस्ट छात्र क्लब बनावे और पार्टी के खास खास काम करें, ता ज्यादा अच्छा हो ।

यहाँ अगर हम समाजवादी एकता की नुकसानदेह नीति का जिक्र नही करें तो फिर हमारे पिछले कामो का यह लेखा-जोखा अधूरा ही रहेगा । करीब-करीब अपनी पैदाइश से ही पार्टी ने इस नीति पर अमल किया और इसका जो नतीजा भुगतना पडा वह हम सब को अच्छी तरह मालूम है । उसका वर्णन पार्टी द्वारा प्रकाशित पुस्तक में भी आ गया है। इसलिए इन बातो की तफसील मे यहाँ जाने की जरूरत नहीं । कम्यूनिस्टो के विश्वासघात और दुरगी चाल की वजह से दक्षिण भारत मे पार्टी की पुरानी ताकत आज-तक नही लौट पाई है । लेकिन, हालांकि उस नीति का नतीजा बहुत नुकसानदेह साबित हुआ, तजुर्बे के लिहाज से उस गलती की भी एक कीमत

है। क्योंकि उससे हमें ऐसा सबक मिला है जिसे कभी भूला नही जा सकता। सिद्धातों या दूसरे देशो के तजुर्बे से हम कम्यूनिस्टो को उतनी अच्छी तरह नही जान पाते, जितना कि हमने खुद अपने तकलीफदेह तजुर्बे से जाना है। आज वह सबक हमारे काम आयेगा, क्योंकि कम्यूनिस्टों ने फिर वामपक्षीय एकता का नारा लगाना शुरू किया है।

. पार्टी के कामो को दो और साधारण आलोचनाओं का जिक्र करने के बाद, मैं इस ब्योरे को खत्म करूँगा।

पिछले कुछ महीनो से देश के अन्दर जो घरेलू फसाद जारी है, उसके सम्बन्ध मे कुछ लोगो का कहना है कि यह सब अगस्त क्रान्ति के जमाने मे हिसा के प्रचार का नतीजा है।

यह घरेलू फसाद बुनियादी तौर पर यो आप-से-आप शुरू नहीं हुआ, बल्कि यह सब एक योजना के मुताबिक चलाया गया है। इसकी जड़ें साम्राज्यवादी नीति में छिपी हुई हैं। फसाद का उसूल और तौर-तरीका यूरोप के फासिज्म से जी खोलकर उधार लिया गया है। इसपर तानाशाही और विश्वयुद्ध की वजह से पैदा हुई इन्सानी अराजकता का भी असर है। अगस्त-क्रान्ति के काले पहलुओ की भी इसमें थोड़ी जिम्मेवारी हो सकती है। लेकिन इतना कबूल कर लेने के बाद समाज के डाक्टरो को राष्ट्रीय रोग के एक दूसरे लक्षण की ओर भी ध्यान देना चाहिए। घरेलू फसाद के साथ देखा जाता है कि सार्वजनिक चरित्र भी अचानक काफी नीचे गिर गया है। जो लोग कल तक ऊँचे आदर्श और अहिंसा की बात करनेवाले थे, आज अपने सारे आदर्शों को ताक पर रख कर सियासी ताकतबाजी में और रिश्तेदारों को ओहदो पर बिठाने मे हो लगे हैं। और कुछ तो भ्रष्टाचार मे भी गर्क हैं ऐसा क्यो है? क्यो हमारी राष्ट्रीयता भी बहुत मामलो में बिल्कुल छिछली साबित हुई है? क्यो हमारे दिलों मे साम्प्रदायिकता आ गयी है? क्यो और

प्रान्तीयता, जातीयता और ऐसे ही दूसरे-दूसरे जहर भी हैं ? मैं कह सकता हूँ जिस अहिंसा और सत्य की बढ-बढ़ कर दुहाई दी जाती थी, वह सिर्फ लोगों को खामख्याली थी। सत्य और अहिंसा उनके विश्वास की वस्तु होकर कमजोरियों को छिपाने का बहाना है। मेरा तो ख्याल है 'कि अहिंसा और सत्य को नकाब के तौर पर इस्तेमाल करने के बनिस्बत हिंसा के साफ-सुथरे हथियार में विश्वास करना ज्यादा अच्छा है। 'मगर इसके मानी ये नहीं कि मैं हिंसा की सिफारिश करता हूँ क्योंकि इसकी भी एक नैतिक सीमा है। मेरा इतना ही कहना है कि अगर हिंसा के नतीजे बुरे हो सकते हैं, तो झूठी अहिंसा उससे भी ज्यादा नुकसानदेह साबित होगी।

हमारी दूसरी आलोचना, जो पिछले दिनों हुई है, वह यह कि हम आनेवाली घटनाओं का अनुमान करने में हमेशा असफल रहे हैं या भावी घटनाओं का हमारा अनुमान हमेशा गलत साबित हुआ है। उदाहरण के लिए कहा जाता है कि हमने केबिनेट मीशन के नाकामयाब होने की बात कही थी और बताया था कि अंगरेजों के साथ एक और संघर्ष अवश्यंभावी है। उसी तरह इल्जाम लगाया जाता है कि हमारा विधान परिषद का बहिष्कार करना और कहना कि इसे आजाद हिन्दुस्तान के लिए विधान का मसविदा तैयार करने का आखिरी अख्तियार नहीं है—बिल्कुल गलत निकला।' कहावत है कि ठेस लगने पर अक्ल बढती है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो तजुर्बे से सबक लेना नहीं जानते।

मैं समझ नहीं पाता कि किस तरह इतिहास ने हमारे फैसलों को गलत साबित किया। यदि हम अपने सिद्धान्तो को नहीं छोडते तो अङ्गरेजों से हमारी लड़ाई अवश्यभावी थी। हाँ, यह कहना मुश्किल है कि उस लड़ाई की क्या सूरत होती ? वावेल और जिन्ना का षड्यंत्र सफल हो जाने के बाद कांग्रेस के लिए तमाम पुराने समझौते को खत्म कर फिर लड़ाई छेड़ने के

सिवा दूसरा कोई चारा नहीं था। लेकिन गहरी कीमत चुकाकर हमने अपना बचाव किया—हालाँकि हम में से किसी ने भी नहीं सोचा था कि कांग्रेस किसी दशा में इतनी गहरी कीमत चुकायगी।

सोशलिस्ट पार्टी का युद्ध-कौशल और परिस्थिति का अध्ययन इसी बुनियाद पर कायम था कि कांग्रेस देश का बँटवारा कभी मजूर नहीं करेगी। अगर बँटवारा मजूर नहीं किया जाता, तो कांग्रेस को अन्तरिम सरकार से इस्तीफा देकर, पूर्ण स्वाधीनता के सवाल पर अंगरेजों का सामना करना पड़ता। बेशक कांग्रेस ने अपने समाजवादी पक्ष की समिति के साथ ही आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को मजूर किया था, लेकिन उस सिद्धान्त का प्रयोग अंगरेजों के चले जाने पर होनेवाला था, न कि उनकी मदद और उनकी देख-रेख मे। बँटवारे को कबूल करके कांग्रेस ने सिर्फ अधकचरी आजादी पाई। और यह सब करनेवालो के लिए तो यही मुनासिब था कि वे दूसरो पर घटनाओं के गलत अनुमान का इल्जाम नहीं लगाते।

मैं फिर एक बार कह देना चाहता हूँ कि अगर कांग्रेस अपनी सच्ची राह से भटक नहीं गई होती, और अपने सिद्धान्तों पर झुकी नहीं होती, तो सोशलिस्ट पार्टी के सुझाव के मुताबिक काम करने के सिवा उसके लिए कोई दूसरा चारा नहीं था।

विधान परिषद् के सम्बन्ध में भी कहा जाता है, कि हमने एक बार इसका बहिष्कार किया और अब नक्शे में अपनी कोई जगह न देखकर अफसोस कर रहे हैं। लोगों की आम आदत है कि अपने मापदण्ड से ही वे दूसरों को भी मापते हैं। जहाँ तक हमलोगों का सवाल है, हमें विधान परिषद् के बहिष्कार का कतई अफसोस नहीं है। बहिष्कार करके हम देश को साफ-साफ जता देना चाहते थे कि अगरेजों के साथ समझौता बुनियादी तौर पर गलत हुआ। उस समझौते को पूरा-पूरा नामजूर करना चाहिए था। क्योंकि

उसके एक हिस्से को छोड कर बाकी को कबूल करना हद दर्जे की राज-नीतिक अवसर-वादिता होती। घटनाएँ आगे बढी और मुस्लिम लीग विधान परिषद से बाहर हो गयी, फिर तो उसके बाद साफ हो गया कि विधान परि-षद का जो हिस्सा बाकी बचा है, वह आजाद हिन्दुस्तान के लिए विधान बनाने में असमर्थ है। तब सिर्फ एक ही काम बच गया था। और जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, समझौते को फाडकर अंतरिम सरकार और विधान परिषद् से कांग्रेस को निकल आना चाहिए था, और जनता द्वारा चुनी गयी सच्ची विधान परिषद् बुलायी जानी चाहिए थी। तभी वह विधान परिषद् इन्कलाबी ताकत का केन्द्र होती और आखिरी मुकाबले के लिए अंगरेजों को चुनौती दे पाती। वैसी विधान परिषद के साथ सोशलिस्ट पार्टी पूरा सहयोग करती और उसके फैसलो को अमल में लाने की पूरी जिम्मेवारी लेती।

हमलोगों से कहा गया कि वैसा करने से गृहयुद्ध होगा और पाकिस्तान मंजूर कर लेने से हम उस युद्ध से बच जायेंगे। हमने जवाब में कहा था कि पहले तो हमें उस खतरे को लेना चाहिए और दूसरे, पाकिस्तान को कबूल करने से वह खतरा दूर नहीं होगा, बल्कि बढ जायगा। लेकिन सालो से हासिल होनेवाली ताकत को अपनी चपकलिश थी, जिसके लालच से बचना नामुमकिन था। किंतु इतिहास ने उसके अफसोसनाक नतीजे भी दिखला दिये। इतना कुछ होने के बाद भी ऐसे लोग हैं जो अपनी जीत की डींग हाँकते हैं और दूसरों के सिर सिर्फ गर्मागर्म बहस करने का दोष मढते हैं।

दूसरे दलो की तरह सोशलिस्ट पार्टी ने भी गलतियाँ की हैं, लेकिन अंगरेजों के सम्बन्ध मे उसने जो नीति बनायी थी वह उन गलतियो में नहीं है, बल्कि वह ऐसी नीति थी, जिसके लिए पार्टी को हमेशा फख्र हो सकता है।

आगे का रास्ता

अब मैं ऐसे सवाल पर विचार करूँगा जिस पर बहुत दिनों से वाद-विवाद चल रहा है और अब जिसका अन्तिम फैसला जरूरी हो गया है। हमलोग बहुत दिनों से बहस करते आ रहे हैं कि पार्टी कांग्रेस के अन्दर रहे या निकल आवे? दोनो ओर से वजनी दलीलें पेश की जाती हैं लेकिन इधर हाल से एक ही पक्ष की दलील अधिक वजनी पड़ रही है। कुछ हफ्ते पहले मैंने इस सवाल के पक्ष और विपक्ष का विश्लेषण करते हुए एक लेख प्रकाशित किया था जिसमें मैंने अपने निजी विचार प्रकट किये थे।

उस लेख के प्रकाशित होने के बाद ऐसी घटनाएँ हुई जिनसे मसला और भी साफ हो गया है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दिल्ली अधिवेशन ने कांग्रेस के नये विधान के लिए कुछ बुनियादी उसूल मजूर किये है। इन उसूलों से यह साफ है कि कांग्रेस अब एक राष्ट्रीय मोर्चा नही रही—यहाँ तक कि राष्ट्रीय सकटकाल में भी नही। कांग्रेस अब एक पार्टी की शकल अख्तियार करेगी और कांग्रेस, जो सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती थी, जिसने इसकी आजादी को लडाई लड़ी और जिसमें सारी जनता का विश्वास था, वह कांग्रेस अब न रही, सिर्फ उसका नाम रह गया है। दर असल उसका नाम भी हटा देना चाहिए था ताकि कांग्रेस के नाम जो महान परपरा जुड़ी हुई है, वह दलबन्दी से पाक रहती।

ऐसी परिस्थिति मे पार्टी को कांग्रेस से जरूर अलग हो जाना चाहिए। हिन्दुस्तानी समाजवाद की जरूरतो की यही तकाजा है।

इन दलीलो के अलावा और भी कुछ ऐसी दलीलें हैं जो कि इसी नतीजे पर हमें ले जाती हैं। ऊपर मैंने जिस लेख का जिक्र किया है, उसमें एक

विरोधी पार्टी की जरूरत की ओर सरसरी तौर पर इशारा किया गया है। इधर वह जरूरत और बढ गयी है।

अपने बीच गाँधीजी के रहने से नागरिक अधिकार और जनता की आजादी सुरक्षित थी। अब जब वे हमारे बीच नही हैं तब तानाशाही हुकूमत के खतरे बढ गये हैं। अगर देश में एक विरोधी पार्टी न रही तो ये खतरे और भी बढ जायेंगे, लेकिन विरोधी पार्टी ऐसी हो जिसको देशभक्ति और लोकतन्त्र मे विश्वास अटूट हो।

आज जो लोग सरकार चला रहे हैं वे व्यक्तिगत तौर पर अच्छे लोग हैं और बेशक देश की सेवा करना चाहते हैं लेकिन जहाँ उनमें से कुछ कट्टर लोकतन्त्रवादी हैं, वहाँ कुछ लोगों ने जनता के अधिकार की उपेक्षा तक की है। जो शासन मशीनरी ब्रिटिश सत्ता के हित के लिए गठित की की गयी थी और जिसे जनता की इच्छा तथा भलाई की उपेक्षा करने को सिखाया गया था, वही पुरानी शासन मशीनरी आज भी ज्यो की त्यो कार्य कर रही है। एक वाक्य मे आज की हालत को हम इस तरह लिख सकते हैं कि अग्रेज चले गये हैं, आई० सी० एस० वाले आ गये हैं।

जब अंग्रेजी राज यहाँ था, तब कांग्रेस जनता की चेतना का प्रतिनिधित्व करती थी और उसके हित के लिए लड़ने वाली सस्था थी। अब काग्रेस हूकूमत मे इतनी घुलमिल गयी है कि उसने जनता के अधिकार की हिफाजत की ताकत खो दी है। दर असल काग्रेस का आज प्रमुख कार्य है सरकार का पक्ष लेना और जनता के सामने इसकी हर कार्रवाई को उचित करार देना, चाहे वह गलत हो या सही हो।

इन्हीं सब बातों के कारण आज भयानक स्थिति पैदा हो गई है। टीका-टिप्पणी यहाँ तक कि लाभदायक टिप्पणी का भी विरोध किया जाता है और आलोचना की जबान को बन्द कर देने की कोशिश की जाती है। ऐसी मिसालें

भी हैं कि आपत्तिजनक लेकिन सही खबर या विचार प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक पकडे गये हैं। सरकार के हाथ में जो प्रचार के साधन हैं, जैसे ऑल इन्डिया रेडियो, उनका हुकूमत करने वाली पार्टी द्वारा अपनी पार्टी के फायदे के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हुकूमत की ताकत राजनीतिक कार्यकर्त्ताओंके कार्यों पर बिना सोच-विचार के रोक लगा रही है क्योंकि ये कार्यकर्त्ता सरकार के समर्थकों की राह के कांटे बन जाते हैं। इन्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेताओं की सिफारिशों के मुताबिक मजदूर कार्यकर्त्ताओं को जेलों में बन्द करने की भी मिसालें हैं। प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिक दलों को दबाने के लिए दफा १४४ और १०७ का इस्तेमाल धड़ल्ले से किया जा रहा है। जन-सुरक्षा कानून का भी इस्तेमाल उसी मकसद के लिए किया जा रहा है। ऐसे लोगों के भी उदाहरण हमारे पास हैं जिन्हें सोशलिस्ट पार्टी के प्रति हमदर्दी दिखाने तथा इसके फड मे चन्दा देने के कारण धमकी दी गयी है कि उसका नतीजा बहुत बुरा होगा। सरकारी कर्मचारियों को हुकूमत करने वाली पार्टी का गुलाम बना दिया गया है। जहाँ तिजारती, औद्योगिक तथा इस तरह के अन्य सार्व-जनिक महकमों के कर्मचारियों को छोड़ कर बाकी सभी को सक्रिय दलगत राजनीति से अलग रखना चाहिए, वहाँ अपनी इच्छा के मुताबिक उन्हें किसी भी पार्टी में शामिल होने और चुनावों में उसके लिए वोट देने की आजादी होनी चाहिए बशर्त्ते कि वह पार्टी खुले तौर पर और कानून के अन्दर रहकर कार्य करने वाली हो। आज कर्मचारियों को यह हक नहीं दिया जा रहा है। ऐसी भी बेहूदी मिसाले हैं जब कि स्कूल के शिक्षकों तक को राजनीति से अलग रहने का आदेश दिया गया है। हम जैसे-जैसे समाजवाद की ओर बढ़ेंगे सरकारी नौकरियों में शामिल होने वाले लोगों की तादाद बढ़ती ही जायगी। और अगर उन सब को राजनीति में भाग लेने का मौका नहीं दिया गया तो फिर हम एक भयानक तानाशाही-प्रणाली कायम करेंगे जिसमें हुकूमत

करनेवाली पार्टी के अलावा किसी भी दूसरी पार्टी के रहने की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। इन्ही सब गभीर बातों पर विचार करने से एक विरोधी पार्टी का रहना जरूरी जाना पडता है। एक पार्टी शासन अथवा एक विरोधी पार्टी, जो लोकतन्त्र मे विश्वास रखती हो और जो देश तथा राज्य के प्रति वफादार हो, ऐसी पार्टी के रहने से तानाशाही के विकास को निश्चय ही प्रोत्साहन मिलेगा खास तौर से आज जब कि बिगड़ी हुई हालत के कारण अधिकारियों को बहुत हक मिल गए हैं।

देश की आज जो हालत है, उसमें केवल सोशलिस्ट पार्टी विरोधी पार्टी की जरूरत पूरा कर सकती है। यह कोई बढा-चढाकर नही कहा जा रहा है, दर असल यह वास्तविक स्थिति की सच्ची तसवीर है।

इस तरह सवाल के सभी पहलुओ पर विचार करने के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमें अब काग्रेस छोड देना चाहिए और एक स्वतंत्र राजनीतिक पार्टी के रूप में काम करना चाहिए। मुझे इसमे शक नहीं कि आप सब भी इसी नतीजे पर पहुँचेंगे।

काग्रेस से अलग होने का फैसला हम पर बडी-बड़ी जिम्मेदारियाँ डालता है। मैं यहाँ बडे अदब के साथ कुछ बुनियादी उसूल का जिक्र करना चाहता हूँ जो हमें नये राजनीतिक जीवन मे रास्ता दिखायेगा ?

सबसे पहली बात यह है कि काँग्रेस से अलग होने का हमारा फैसला हमारे बहुत-से ऐसे दोस्तों को चिन्तित करेगा जिनका दलबन्दी से स्वार्थ नही है लेकिन जिनका राष्ट्र के भविष्य से गहरा सम्बन्ध है। मै खास तौर से उन दोस्तो की बात कह रहा हूँ जो यह विश्वास करते हैं कि राष्ट्रीय सकट काल में अलग होने की नही, कन्धे मे कन्धा मिलाकर चलने की जरूरत है।

हम ऐसे दोस्तो को आश्वासन दें और उनके शक को दूर करें। अपने देश मे लोग पार्लमेंटरी सरकार के तरीको से परिचित नहीं हैं, अतः वे लोक-

तान्त्रिक विरोध के स्वरूप को भी नही जानते। विरोध को लोग उसी अर्थ मे समझते हैं जिस मानी मे काग्रेस ब्रिटिश हुकूमत का विरोधी थी। ब्रिटिश हुकूमत की जड उखाडने के लिए काग्रेस ने सीधी चोट का तरीका अख्तियार किया था।

लोकतांत्रिक ढाँचे मे विरोध का वह ढग नही हो सकता है। जब लोकतांत्रिक सरकार हो, तब हुकूमत करनेवाली पार्टी और विरोधी पार्टी (बशर्ते वह लोकतांत्रिक पार्टी हो) दोनों में राज्य के प्रति वफादारी निभाने और लोकतांत्रिक तरीकों पर अमल करने के सवाल पर एकता रहती है, राष्ट्रीय सकट काल में भेद-भाव भुलाकर और अपनी-अपनी पार्टी का अलग अस्तित्व कायम रखते हुए दोनों साथ मिलकर काम करते हैं। एक लोकतान्त्रिक ढाँचे में विरोधी पार्टी अराष्ट्रीय पार्टी नहीं रहती है, बल्कि यह पार्टी राष्ट्र-सेवा के लिए हुकूमत करनेवाली पार्टी से भिन्न और अपने अनुसार बेहतर तरीकों की वकालत करनेवाली होती है। अग्रेजों के जमाने में कांग्रेस विरोधी होना राष्ट्र-विरोधी होना था क्योंकि काग्रेस विदेशियों के विरुद्ध सारे राष्ट्र की ओर से लडती थी। अब जब देश आजाद है, तब लोगों के मन में यह विचार बिठाना होगा कि काग्रेस का विरोध करना अराष्ट्रीय कार्य नही, बल्कि हुकूमत की कुछ नीतियो और तरीको का विरोध करना है और साथ ही दूसरे रास्ते की वकालत करना। इसके अलावा काग्रेस के विरोधी होने का मतलब है लोकतान्त्रिक तरीको द्वारा हुकूमत करनेवाली पार्टी को हटाना।

देश बडे राष्ट्रीय सकट काल से गुजर रहा है और साथ ही इस पर बड़े-बड़े बाहरी खतरे हैं—इससे कोई इन्कार नही कर सकता। ऐसे वक्त एक मकसद तथा आदर्श रखने वाली पार्टियाँ सहयोग करे और सकट का मुकाबला करें। काग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी मे कुछ समानता है,

लोकराज में उनका विश्वास उन्हे देश को दूसरी किसी भी पार्टियों से अधिक नजदीक करार देता है ।

इसका मतलब यह होता है कि सोशलिस्ट पार्टी राज्य तथा लोकतन्त्र की सुरक्षा के लिए और फिरकापरस्त तथा प्रतिक्रियावादी ताकतो के खिलाफ बराबर लडने के लिए तैयार रहेगी । इस तरह की लड़ाई मे पार्टी काग्रेस के साथ हाथ बॅटावेगी ।

देश को इन बातों का भरोसा लफ्जों के बदले काम के जरिए देना हमारा फर्ज होगा ।

इस बारे मे मैं एक आखिरी बात कह भी दूॅ । मैं यह जानता हूॅ कि काग्रेस से अलग होने पर हम बहुत-से दोस्तों और अच्छे साथियो को पीछे छोड़ देंगे, लेकिन जिनसे हम लोगों का व्यक्तिगत और उसूली रिश्ता कभी खत्म नहीं होगा । अलग होकर भी हमारी कोशिश रहेगी कि हम उनका साथ दें ; और मैं उम्मीद करता हूॅ कि विरोधी दल के रूप मे कार्य कर हम लोग उनका काम आसान कर देंगे ।

अब, मैं ऐसे मसले पर विचार करने की इजाजत चाहता हूॅ जिस पर इधर हाल से मैं बहुत सोचता-विचारता रहा हूॅ । वह मसला है साधन और लक्ष्य का । काग्रेस से अलग होने का जो फैसला हम लेने जा रहे हैं उसको ध्यान मे रखकर और साथ ही इधर हाल की दुर्घटनाओ की रोशनी मे यह मसला ज्यादा अहम हो जाता है ।

पश्चिमी देशों मे विरोधी पार्टियाँ प्रतिद्वन्द्वी पार्टी को बदनाम करने के लिए झूठ के इस्तेमाल को गलत नहीं मानती हैं , चुनाव में कामयाबी हासिल करने के लिए वे घूसखोरी और भ्रष्टाचार तक की मदद लेना गलत नहीं समझतीं । कुछ ऐसी पार्टियाँ हैं जो झूठ और भ्रष्टाचार से भी बहुत आगे तक बढ जाती हैं । उनके लिए हत्या, लूट तथा आग लगाना राजनीतिक दाव-पेंच

का हिस्सा है। पिछले महीनो में इस किस्म के दाव-पेंच के चलते जो घृणित कांड हुए हैं उनको हमने देखा है।

जमानेदराज से ऐसे राजनीतिज्ञ हुए हैं जिन्होंने कहा है कि राजनीति में नीतिवाद की कोई जगह नहीं। खैर, पुराने समय में इस अनीतिवादिता का बुरा प्रभाव राजनीति से सवध रखने वाले थोड़े लोगों की जमात तक ही महदूद रहा और राज्य के नेताओ तथा मत्रियो के भ्रष्ट कार्यों के प्रभाव से आम जनता मुक्त रही। लेकिन तानाशाही के उदय से, जिसमें फासिज्म, नाजीवाद और स्तालिनवाद भी सम्मिलित है, इस सिद्धान्त पर बड़े पैमाने पर अमल हुआ है और आज समाज का हर आदमी इसके प्रभाव से ग्रसित है। नतीजा यह हुआ है कि आज सामाजिक जिन्दगी मे नैतिक मूल्यों का इतना पतन हो गया है कि न केवल राजनीति मे वल्कि जिन्दगी के हर क्षेत्र में, और यहाँ तक कि पारिवारिक जीवन मे भी अधेरा छा गया है।

रूस मे स्तालिनवादी तरीकों की कामयावी के वाद यह आम तौर पर विश्वास किया जाता है कि मार्क्सवाद में नैतिक मूल्यों की कोई जगह नहीं। जो समाजवादी इस तरह की वात करते पाये जाते हैं, उन्हे गद्दार या पथ-विचलित कहा जाता है। लेकिन मैं आपके सामने यह साफ कह देना चाहता हूँ कि निजी तौर पर मैं यह मानने लगा हूँ कि समाजवाद कायम करने के लिए साधन का ख्याल करना वहुत ही जरूरी है। भिन्न-भिन्न लोग समाजवाद का भिन्न-भिन्न मतलब लगाते हैं, लेकिन हम अगर समाजवाद से ऐसे समाज का अर्थ लगाते हैं जिसमे हर इन्सान की भौतिक जरूरतें पूरी हो जाती हो और जिसमें व्यक्ति सस्कृत और सभ्य हो, आजाद और वहादुर हो, दयालु और उदार हो, तो मेरी यह निश्चित राय है कि हम इस मंजिल तक विना कुछ मानवीय मूल्यों को स्वीकार किये और चरित्र का मान वनाये रखे पहुँच नही सकते। इस पर अक्सर विश्वास किया जाता है कि समाज में

अगर शोषण न हो और हर व्यक्ति के खाने, पहनने और रहने की अच्छी व्यवस्था हो तो फिर सब बात आप से आप ठीक हो जायगी। लेकिन केवल अच्छे खाने, पहनने और रहनेवालो का समाज, समाजवादी समाज से बहुत दूर की चीज है।

महात्मा गाँधी ने हमें बहुत-सी शिक्षाएँ दी हैं। लेकिन उनकी सबसे बड़ी शिक्षा है कि साधन ही लक्ष्य है। उनका कहना है कि बुरे तरीको को अख्तियार कर हम अच्छे नतीजे हासिल नहीं कर सकते, अत· न्यायोचित लक्ष्य के लिए न्यायपूर्ण साधनों की जरूरत है। हम लोगो मे कुछ लोग भले ही इस बात की यथार्थता पर शक करते हो। लेकिन हाल मे हुई दुनिया की तथा अपने देश की घटनाओं को देखकर मेरा पक्का विश्वास हो गया है कि अच्छे तरीको को अख्तियार कर ही हम अच्छे समाज यानी समाजवादी समाज की मजिल तक पहुँच सकते हैं। कुछ दिन पहले जब मैंने एक वक्तव्य में आत्मिक पुनरुत्थान की बात कही थी, तब आप लोगो में से कुछ ने सोचा होगा कि मैं हाल की दुर्घटनाओ से इतना घबरा गया हूँ कि मैं जिन्दगी के कटु सत्यो से भागना चाहता हूँ। ऐसा जिन लोगो ने सोचा होगा, वे बिल्कुल भूल में हैं। मुझे आध्यात्मिक बातों का ज्ञान नहीं, अगर आध्यात्मिकता को धार्मिक या दार्शनिक अर्थ मे समझा जाता है। और न एका-एक आत्मा या ब्रह्म मे मैं विश्वास ही करने लगा हूँ। मेरा दर्शन केवल मानवी है। समाजमें हम कैसे लोगों के साथ रहना पसन्द करेंगे, केवल इसी समस्या से मेरा सम्बन्ध है। यह साफ है कि मैं झूठे और हत्यारो के समाज मे, निर्दयी, असहिष्णु तथा स्नेह, भाईचारे की भावना से विहीन लोगो के बीच नहीं रहना चाहता हूँ।

कोई भी यह नही बता सकता कि मानव स्वभाव क्या है, लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि मानव स्वभाव हमारे द्वारा बनाया जाता है।

जन्म से ही कोई अच्छा आदमी नही होता। वह शिक्षा के द्वारा अच्छा होता है। अतः हमारी पार्टी का लक्ष्य केवल अच्छा खाने, पहनने और रहनेवालो का निर्माण नहीं, वल्कि अच्छे लोगों का निर्माण करना है, तो मैं कहूँगा कि हमारे सभी राजनीतिक कार्य के पीछे कुछ नैतिक मूल्यो की प्रेरणा जरूर हो। मैं उम्मीद करता हूँ आप इस पर उचित रूप से गौर करेंगे।

मैं अब एक दूसरे मसले पर एक और दृष्टिकोण से विचार करने की इजाजत चाहता हूँ।

कुछ लोग यह मानते हैं कि राजनीतिक कार्य का मतलब होता है ताकत हासिल करना। मैं इस ख्याल को वहुत खतरनाक मानता हूँ।

मैं इस विचारधारा के दो अहम पहलू पर विचार करूँगा। पहले, हम देखें कि इसका असर हमारे पार्टी-सगठन पर कैसा पड़ेगा। जो उक्त विचार को माननेवाले हैं वे स्वभावतया पार्टी के अन्दर ताकत हासिल करने की हर कोशिश करेंगे। मैं यह नहीं कहता कि वे वास्तव में ऐसा कर रहे हैं। और जब इस सिद्धान्त के मुताविक राजनीति का सार ताकत हासिल करना है तव इसके लिए हर तरह के तरीकों को, यहाँ तक कि झूठ, निन्दा और पार्टी के चुनावो मे धोखा देना, इन सभी तरीको को मुनासिव करार दिया जा सकता है। यह साफ है—मैं समझता हूँ मुझसे सब कोई सहमत होंगे—ऐसे तरीको से पार्टी का सगठन बिल्कुल विखर जायगा। अत. मैं आशा करता हूँ और अर्ज भी करता हूँ कि इसमें सव कोई इन तरीकों को नामजूर करेगा और पार्टी के अन्दर ताकत हासिल करने की भावना को दूर कर देगा। सराहना पाने की ख्वाहिश और प्रभाव तथा नेतृत्व की आकांक्षा करना इन्सान के लिए स्वाभाविक है। लेकिन उद्देश्य के लिए अपने द्वारा किये गए कामो और सेवाओं के वल पर ही ऐसी स्थिति तक पहुँचने की ख्वाहिश करनी चाहिए।

मैं अव सवाल के दूसरे पहलू पर विचार करना चाहता हूँ। इस पहलू का

अधिक गहरा और व्यापक महत्व है। सभी राजनीति का मतलब है ताकत हासिल करना—इस सिद्धान्त का मूल आधार है—यद्यपि इस सिद्धान्त के माननेवालों को इसकी वाकफियत न हो, यह ख्याल कि राज्य सामाजिक भलाई का एकमात्र अस्त्र है। दूसरे शब्दो मे, इस सिद्धान्त को मानने वाले विश्वास करते हैं–अगर वे स्वार्थ-साधन चाहनेवाले न हो क्योंकि ऐसा होने से वे विचार करने के लायक ही नही होंगे—समाज की सेवा तथा अपनी इच्छा के मुताबिक सामाजिक तब्दीली लाने के लिए हुकूमत पर कब्जा करना जरूरी है।

मैं इस विचार को बिलकुल ही नामजूर करता हूँ। काग्रेस ने आज हुकूमत पर कब्जा कर लिया है लेकिन हर समझदार काग्रेस-जन हमसे इस बात पर सहमत होंगे कि अगर सामाजिक परिवर्तन और विकास की हर कोशिश के लिए काग्रेस केवल हुकूमत पर भरोसा करेगी तो वह अपनी ताकत के आधार को कमजोर करेगी। दरअसल काग्रेस के रचनात्मक कार्य-कर्त्ताओं का यह आम ख्याल हो रहा है कि पार्लियामेंट की मशीन से वे अपना रिश्ता तोड़ दें और समाज तथा राज्य की सेवा के लिए अलग होकर आजादी के साथ काम करें।

तानाशाह मुल्कों के तजुर्बे ने, चाहे वे फासिस्त या कम्युनिस्ट हो, दिखा दिया है कि हुकूमत को अगर सामाजिक पुनर्निर्माण का एक मात्र अस्त्र माना जाता है तो केवल एक यन्त्रवत् समाज का निर्माण होता है जिसमे हुकूमत सर्वशक्तिमान रहती है और सार्वजनिक क्रियाशक्ति दबी रहती है और व्यक्ति व्यापक अमानवीय मशीन का केवल पहियावाला दाँत बना रह जाता है। निश्चय ही ऐसा समाज हमारी पार्टी का लक्ष्य नहीं है, और न इस तरह का समाज कभी भी लोकतान्त्रिक समाजवादी समाज के विकास का मध्यवर्ती काल ही हो सकता है।

लोकतन्त्र का तकाजा है कि जनता हुकूमत के भरोसे पर कम-से-कम

रहे। और महात्मा गांधी तथा कार्लमार्क्स दोनों के ही अनुसार लोकतन्त्र की आखिरी मजिल वही है जब राज्य की बुनियाद नहीं रह जाती है। लाखों मेहनतकशों का हारे हुए मुट्ठी-भर स्वार्थी लोगों के वर्ग पर सक्रान्तिकालीन डिक्टेटरशिप से बिलकुल भिन्न जो तानाशाही है, वह कभी पूर्ण लोकतन्त्र के विकास का बीच का रास्ता नही हो सकता। पूर्ण लोकतन्त्र के विकास के लिए जरूरी है कि सार्वजनिक प्रयास का पूरा मौका मिले और तरह-तरह के आर्थिक सास्कृतिक सगठनो तथा सस्थाओ के जरिए जनता अपनी हालत सुधारने और अपनी व्यवस्था करने के लायक बने।

मतलब यह कि पार्टी के अन्दर मैं जिस मनोवृत्ति के विकास को पसन्द करूँगा, वह यह है कि हममें से सब कोई इसकी ओर ध्यान न दे कि कौन प्रधान मत्री बनता है, कौन मजदूर कार्यकर्त्ता है अथवा कौन फील्ड-वर्कर है। मैं विश्वास करता हूँ कि हुकूमत चाहे हमारे हाथ हो या न हो, अगर हम रचनात्मक कार्य द्वारा मजदूर आंदोलन को ऐसा बना सकें कि मजदूर उद्योग-धन्धो को चलाने के काबिल हो जायँ, अगर हम मजदूर वर्ग को नागरिक कला की शिक्षा दे सकें, गाँवो में अगर सहयोगी समाजका नर्माण कर सकें, युवको और बच्चो को राष्ट्र का स्वयंसेवक बना सकें, ऐसा सास्कृतिक वातावरण तैयार कर सकें जो सबसे अधिक पिछड़े हुए लोगों तक फैला हो; अगर हम जातिभेद, अन्धविश्वास, कट्टरता दूर कर सकें; हम ऐसे हजारो-लाखों निःस्वार्थ कार्यकर्त्ताओ का सहयोग प्राप्त कर सकें, जिन्हें पद के लिए आकर्षण नहीं—अगर हमें ये सब काम करने में कामयाबी हासिल होती है, तो हम समाजवादी समाज का निर्माण करने में भी कामयाब होंगे। वैसी परिस्थिति में हुकूमत समाजवादी हुकूमत हो जायगी। इस तरह की हुकूमत जनप्रिय समाजवादी आन्दोलन का अस्त्र होगी—अर्थात् समाजवादी जीवन-प्रणाली के लिए राज्य से अलग होकर संगठित जनता का अस्त्र होगी।

वसी दशा में हुकूमत सभी तरह की शक्तियो का स्रोत होगी।

हमलोग जो ऐतिहासिक फैसला लेने जा रहे हैं, उसके प्रसग में इन विचारो की खास अहमियत है। विरोधी पार्टी के सदस्यो को पद हासिल करने की तृष्णा बहुत अधिक रहती है। हमे इस तृष्णा पर जरूर ही काबू रखना चाहिए। आज हमे याद रखना है और आनेवाले दिनो में भी भूलना नहीं है कि पार्लमेंट मे विरोधी नीति अथवा दूसरों की गलतियो से बेजा फायदा उठाकर नहीं, बल्कि रचनात्मक कार्य और सेवा के बल पर ही हम लोकतान्त्रिक समाजवादी समाज के निर्माण करने मे कामयाब होगे।

ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसकी एक महत्वपूर्ण उपपत्ति की ओर मैं अब संक्षेप में कुछ कहूँगा। एक क्रातिकारी पार्टी मे, अर्थात् बुनियादी सामाजिक तबदीली का मकसद रखनेवाली पार्टी में, एक पार्लमेंट का कार्य करनेवालों का गिरोह और दूसरा जनता के बीच काम करनेवालो का गिरोह रहता है। ऐसा एक समय आता है जब दोनों गिरोह मे कौन किस पर हावी हो जाय, इसके लिए सघर्ष पैदा होता है। ऐसा सघर्ष उस काग्रेस मे पैदा हो चुका है, जो पहले क्रान्तिकारी कार्य कर चुकी है, और पार्लमेंट मे काम करनेवाले गुट की जीत भी हो चुकी है। ऐसी हालत मे जनता के बीच काम करनेवाले या रचनात्मक कार्य करनेवाले काग्रेसजन शायद अलग हो जायँ और लोक-सेवको का अलग दल तैयार करें। हम अपनी पार्टी का ऐसा विकास करें कि रचनात्मक और पार्लमेंट का कार्य एक-दूसरे से घुला-मिला हो और रचनात्मक काम करनेवालों की आवाज आखिरी हो। तभी हमारी पार्टी पूर्ण लोकतत्र का सच्चा साधन बन सकती है।

समाजवादी कार्यक्रम

सोशलिस्ट पार्टी भारत में जनतान्त्रिक समाजवादी समाज की स्थापना चाहती है।

समाजवादी समाज का निर्माण एक दिन में नही होता। समाज के वर्त्तमान और भावी स्वरूप के बीच सक्रांति का काल भी आता है।

सोशलिस्ट पार्टी का विश्वास है कि जिन देशों मे प्रजातत्र और नागरिक स्वतन्त्रता है, वहाँ समाजवाद की स्थापना शांतिपूर्ण और प्रजातांत्रिक साधनो के द्वारा होनी चाहिए।

समाजवादी समाज का अन्तिम स्वरूप क्या होता है इसे तो सभी जानते हैं। यह एक ऐसा समाज होता है जिसमें सभी श्रमिक होते हैं यानी समाज वर्गहीन होता है। यह वह समाज है, जिससे व्यक्तिगत मुनाफे के लिए मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं होता। जिसमें सारी सम्पत्ति राष्ट्रीय या सर्व-साधारण की होती है। जिसमे अनुपार्जित आय और अधिक आय की असमानता नहीं होती। जिसमें मानव-जीवन और उसकी प्रगति योजनात्मक ढग से चलती है और जहाँ सबके लिए सब जीवित रहते हैं।

समाजवाद के इस अतिम स्वरूप से तो लोग बहुत परिचित हैं, परन्तु इस अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किसी देश को किन-किन दशाओ को पार करना पड़ता है, इससे सभी अभिज्ञ नही और यह प्रत्येक देश की अपनी परिस्थितियो पर निर्भर करता है। इन दशाओ का निर्णय और उसकी योजना इतनी महत्वपूर्ण होती है कि उसके सिलसिले मे की हुई एक भूल समाजिक विकास के सारे क्रम को पलट सकती है और देश को ऐसे लक्ष्य तक पहुँचा दे सकती है जो समाजवाद से बहुत भिन्न होता है।

अपने देश की हालत पर पूरी तरह विचार करके सोशलिस्ट पार्टी नीचे लिखा कार्यक्रम प्रस्तुत करती है, जो भारत को समाजवाद की ओर ले जाने में पहली मंजिल का काम देगा।

१ राजनीतिक

(क) नया विधान

सोशलिस्ट पार्टी की राय में यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत का नया विधान कुछ महीनो में ही लागू होने के लिए तैयार कर लिया जाय और जैसे ही विधान लागू हो, औपनिवेशिक दर्जे का अंत कर दिया जाय। नए विधान के अन्तर्गत सन् १९४८ के मध्य तक चुनाव और उसके तुरत बाद ही प्रजातंत्र (गणतत्र) की स्थापना हो जानी चाहिए। इसके लिए बहुत शीघ्र मतदाताओ की सूची तैयार करने का काम हाथ मे ले लिया जाय।

नया विधान ऐसा हो जो पूर्ण प्रजातन्त्र—राजनीतिक और सामाजिक प्रजातन्त्र—की स्थापना कर सके।

नया भारतीय राज्य सर्वसत्तात्मक जनतान्त्रिक साधिक प्रजा राज्य होना चाहिए।

जनता की इच्छा को ही राज्य का आधार और अधिकारों का स्रोत समझा जाय।

नागरिकता के अधिकर सबके लिए समान हों।

राज्य का कोई अपना धर्म न हो अर्थात् वह धर्मरहित राज्य हो। सभी धार्मिक सम्प्रदायों को समान रूप से विचार और पूजापाठ की स्वतन्त्रता मिले।

जाति, सम्प्रदाय, लिंग या धर्म का कोई ख्याल किये बिना सभी नागरिकों को सम व्यवहार की गारटी मिलनी चाहिए। समाज की पिछड़ी हुई और दलित जातियों की आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए विशेष सुविधाएँ मिलें। अल्पसख्यकों को पूर्ण सास्कृतिक स्वशासन मिलना चाहिए।

विधान परिषद् नागरिकों को (सघ मे सम्मिलित देशी राज्यो के निवासियों सहित) उन मौलिक नागरिक और राजनीतिक अधिकारो का विश्वास दिलावे, जो भारत के सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा लागू किये जा सकें।

राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए यह आवश्यक है कि सब लोगों की सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार माना जाय और व्यक्तिगत अध्यवसाय का उसी हद तक समर्थन किया जाय, जिस हद तक वे समाजवाद के विकास मे बाधक नहीं हो जाते। व्यक्तिगत सम्पत्ति या व्यक्तिगत व्यवसाय का मुआवजा देकर या बिना मुआवजा के ही कानून के जरिये स्वामित्व छीना जा सकता है या उसका समाजीकरण किया जा सकता है। अगर मुआवजा देना ही हो तो उसकी तादाद का फैसला सरकार पर छोड़ दिया जाय।

उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण और सामाजिक स्वामित्व के आधार पर आर्थिक जीवन को व्यवस्थित तथा विकसित करने के लिए विधान में कानूनी सस्थाओं (Statutory bodies) जैसे आर्थिक कौंसिलो और योजना-कमीशनो के निर्माण की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रजाराज्य और उसकी विधायक इकाइयो (प्रान्तो और रियासतों) का विधान जनतान्त्रिक होना

चाहिए, अर्थात् उनकी कार्यकारिणी (मन्त्रिमडल) को व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए।

सभी व्यवस्थापिका सभाओं में एक भवन (Unicameral) हो, और सभी चुनाव जिसमे सघ की धारा-सभा भी शामिल है, सयुक्त निर्वाचन प्रणाली पर सीधे, गुप्त और वयस्क मताधिकार के आधार पर हों। चुनाव क्षेत्र कई सदस्यवाले हों और मतदान एकत्रित मतों (Cumulative votes) की पद्धति पर हो ताकि अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व हो सके।

विधान मे एक शक्तिशाली सघीय केन्द्र की व्यवस्था हो। किन्तु केन्द्र को शक्तिशाली बनाने का यह तात्पर्य नहीं कि किसी इकाई की अपनी जनता की इच्छानुसार सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक उन्नति का कार्यक्रम अपनाने की स्वाधीनता कम हो जाय।

निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा के अतिरिक्त राज्य के किसी भी अधिकारी को आर्डिनेन्स लगाने और इसी तरह के अन्य असाधारण अधिकारों को काम मे लाने का हक नहीं होना चाहिए।

सरकारी नौकरी मे कर्मचारी की नियुक्ति और पद-वृद्धि योग्यता के आधार पर होनी चाहिए। अपवादस्वरूप पिछड़ी हुई जातियो की नियुक्ति मे कुछ खास रियायतें दी जानी चाहिए।

एक ही अफसर के जिम्मे शासन और न्याय सम्बन्धी कार्य न सौंपे जायँ।

केन्द्र और सघ की इकाइयो मे एक सामाजिक तथा आर्थिक कौंसिल होनी चाहिए जो आर्थिक और सामाजिक कार्यों की योजना बनाये; अपने सामने पेश की गई आर्थिक, सामाजिक या अन्य योजनाओं या मामलों की जाँच-पड़ताल तथा छीन-बीन करे और साधारणतया ऐसे मामलो पर सरकारों को सलाह दे जिनमे विशेष या विशिष्ट सलाह की आवश्यकता होती है।

इन कौंसिलों का निर्माण पेशे (functional के आधार पर होना चाहिए और उनमे अन्य लोगो के अतिरिक्त वैज्ञानिकों, इजीनियरों, डाक्टरों, सर्जनो, शिक्षा-शास्त्रियो, राजनीतिज्ञ और शासन-विशेषज्ञों, व्यापार, अथ और कृषि-विशेषज्ञो तथा मजदूर पचायतों, सहयोग समितियो, किसान संगठनों और इसी तरह की दूसरी सस्थाओ का प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

इन कौंसिलो का वही स्थान होगा जो आजकल की राज्य परिषदों (लेजिस्लेटिव कौंसिलो) का है और उनका कार्य होगा उपर्युक्त समितियो द्वारा सांस्कृतिक और आर्थिक नीतियो का निरीक्षण कराना।

(ख) शासन पद्धति में सुधार

वर्त्तमान नौकरशाही का शासन-यत्र जो अपने ढंग से पुलिसराज के सीमित कार्यों के लिए तो ठीक था, पर एक समाज-सेवी राज्य मे उसके ऊपर जो कार्य आयेंगे, उनके लिए वह बिलकुल बेकार और अनुपयुक्त है, नई परिस्थितियों के अनुकूल और नए सामाजिक उद्देश्यो को पूर्ति के लिए इसका पुनर्संगठन होना चाहिए। कर्मचारियों में एक नया दृष्टिकोण—सेवा और राष्ट्र निर्माण का दृष्टिकोण—तथा सैनिको की तरह का अनुशासित उत्साह उत्पन्न होना चाहिये। अधिकांश पुराने कर्मचारी, विशेषतया जो उच्च पदो पर है, अब तक दूसरी तरह से ही सोचते-विचारते और काम करते आये हैं। उनकी जगह पर नवीन दृष्टिकोण और उच्च सामाजिक आदर्शों से प्रेरित नए आदमी रखे जाने चाहिए। कुछ नई नौकरियों का, उदाहरण के लिए, आर्थिक नौकरियों का निर्माण भी करना होगा। ओहदो पर तरक्की पाने के लिए, विशेषतया ऊँचे ओहदों पर तरक्की पाने के लिए, सीनियर होना ही पर्याप्त न समझा जाय, वरन् उन पदों पर योग्य कर्मचारियों को खास तरक्की देकर रखा जाय या सीधे नियुक्ति की जाय।

सबसे ऊँचे और सबसे नीचे पदों के कर्मचारियों के बीच जो घोर विषमता है, उसका अन्त हो जाना चाहिए।

सरकारी नौकरियों के लिये भरती साधारणतः प्रतियोगिता द्वारा होनी चाहिये। भरती हो जाने के बाद रंगरूटों को आवश्यक और विशिष्ट शिक्षा देनी चाहिये।

जनतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि सरकारी नौकर ईमानदार और बेदाग हो। इसलिए सरकारी नौकरियों से भ्रष्टाचार का उन्मूलन करने की हर तरह से कोशिश करनी चाहिये। लेकिन जनता का सहयोग मिले बिना, यह असम्भव है। आज यदि भ्रष्टाचार का बोलबाला है तो इसके लिए जनता भी उतनी ही दोषी है, जितने भ्रष्ट सरकारी नौकर। राष्ट्रीय जीवन की पवित्रता हरेक के पवित्र होने पर निर्भर करती है।

इस कार्यक्रम में समाज की आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के लिए जो सुझाव दिये गये हैं, उनसे सामाजिक जीवन का भ्रष्ट करनेवाले कई प्रभावशाली कारण तो स्वतः दूर हो जायेंगे, लेकिन मन्त्रियों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे कर्मचारियों को भ्रष्टाचार के लिए कड़ा-से-कड़ा दण्ड दें। इसके लिए यह भी जरूरी होगा कि कर्मचारियों के कार्यों और निर्णयों में गैर-कानूनी ढग से किसी प्रकार का हस्तक्षेप सार्वजनिक व्यक्तियों द्वारा न किया जाय।

यदि जनता अपने दायित्व के प्रति जागरूक हो जाय तो यह एक बड़ी चीज़ होगी। सरकारी कर्मचारियों मे जिम्मेवारी और तवज्जह की भावना लाने के लिए यह आवश्यक है कि उनमे और जनता मे परस्पर घनिष्ठ प्रजातान्त्रिक सम्पर्क हो। इसके अलावा शासन-सम्बन्धी नौकरियों पर स्थानीय स्वशासन के अधिकारियों या इसी काम के लिए नियुक्त किसी सलाहकार-समिति का नियन्त्रण होना भी आवश्यक है।

कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को रोकने के लिए पार्टी दूसरा तरीका यह-

सुझाती है कि हरएक सरकारी नौकर समय-समय पर अपनी सम्पत्ति का व्यौरा दे।

इन साधारण वातों पर विचार करने के वाद हम यहाँ अपने खास सुझाव रखते हैं—

शासन सम्बन्धी सारे ढाँचे का आधार वयस्क मताधिकार पर चुनी हुई ग्राम-पंचायत होनी चाहिए। शांति और व्यवस्था कायम रखने से लेकर ग्राम-पंचायतों को शासन सम्बन्धी सारे कार्य करने चाहिए। उनको स्थानीय स्वशासन का कार्य और गाँव की सड़कों, प्रारभिक शिक्षा, सफाई आदि का प्रवन्ध भी करना चाहिए। ग्राम-पचायतो को न्याय सम्बन्धी अधिकार नहीं होने चाहिए।

चूँकि शुरू-शुरू में ग्राम-पचायतों का काम वहुत पेचीदा रहेगा, गाँव की दलवन्दियाँ और साम्प्रदायिक भावना भी उनके कार्य में रोड़े अटकाएँगी, इसलिए कुछ समय के लिए राज्य कर्मचारी को पचायतों का मंत्री नियुक्त करना आवश्यक होगा।

ऊँचे दर्जे के शासन-कार्यों के लिए यह जरूरी होगा कि शांति व्यवस्था स्थापित रखने वाले तथा नित्यप्रति का शासन-कार्य देखने वाले विभागों और उन विभागों मे कुछ अन्तर रखा जाय, जो राष्ट्र निर्माण के कार्यों, जैसे—सहयोग-समितियों और योजना-निर्माण आदि से सम्वधित हो। जिला अफसर को कई तरह के अधिकार न होकर, जैसा कि आज है, एक सीमित क्षेत्र में शाति और व्यवस्था कायम रखने तथा राजस्व एकत्र करने का अधिकार ही रहना चाहिए। विकास कार्यों की देखभाल करने के लिए कुछ दूसरे अफसर भी नियुक्त किये जाने चाहिए, जिनको अपने क्षेत्र में उनके समान ही अधिकार प्राप्त हों। हर एक विभाग से सवंधित अधिकारियों द्वारा इन अफसरों को सलाह-मशविरा देने के लिए सलाहकार वोर्ड नियुक्त किये जाने चाहिए। इन वोर्डों

को मुख्यतः निर्धारित कार्यों को सम्पन्न करने का अधिकार हो, पर वे नीति-निर्धारण के मामलों पर भी अफसरों को परामर्श दे सकेंगे। जिन प्रश्नों पर मतभेद हो, उनका निपटारा करने के लिए भी नियम बनाने चाहिए। ऐसी दशा में व्यवस्थापिका सभा की सम्बधित कमिटी के पास मामला भेज देना चाहिए। जब तक निर्णय न हो, अफसर अपनी न्याय बुद्धि के अनुसार कार्य करेगा।

प्रान्तीय शासन में, विभिन्न विभागो के अध्यक्षों को सहायता देने के लिए संबधित हितो के प्रतिनिधियो के सलाहकार-बोर्ड होने चाहिए। हर एक मन्त्री को सहायता और सलाह देने के लिए भी व्यवस्थापिका सभा की एक कमिटी होनी चाहिए। इन कमिटियों को अपने क्षेत्र के किसी भी मामले की जाँच करने और उसके लिए कोई भी प्रासगिक प्रमाण एकत्र करने का तथा नीति-निर्धारण करने का अधिकार होना चाहिए।

जिलो से लेकर ऊपर तक इन सलाहकार—बोर्डों का निर्माण समुचित ढग से हो। इसके लिए आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकार भिन्न-भिन्न पेशों को उनके सगठन मे सहायता करे।

शासन की इस नूतन पद्धति में ताल्लुका, परगना और जिला बोर्डों जैसी शासित स्थानीय सस्थाओं के लिए स्थान होना चाहिए। शासन ऐसा हो जिसके द्वारा विशिष्ट टेकनिकल सुझाव मिल सके और जिसमें शासन-पटुता हो, जिसमे स्थानीय सस्थाओ के लिए स्थान हो, जनता को जिससे प्रेरणा मिलती हो जो जनता के दृष्टिकोण को समझता हो और प्रजातान्त्रिक अधिकारो की गारटी देता हो।

स्थानीय स्वशासन की समस्या पर पूरी तरह विचार होना चाहिए। हम प्रयत्न करेंगे कि बाद में इसका एक स्पष्ट चित्र जनता के सम्मुख उपस्थित कर सकें।

(ग) कानून-शासा में सुधार

हमारे देश का कानून अपनी जटिलता और उलझनों के लिए प्रसिद्ध है। उसको सरल बनाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कानून विदेशी भाषा में लिखे गये हैं इससे एक बड़ी तादाद मे जनता उसको समझ नही पाती।

इस प्रकार कानून से बिलकुल अनजान होकर वह पेशेवर वकीलों की दया पर निर्भर रहती है। इसलिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि कानून का अनुवाद भारतीय भाषाओं में कर दिया जाये।

क़ानून से भी अधिक तो कानून के व्यवहार में सरलता लाने की आवश्यकता है। कचहरियो को जनता के निकटतम सम्पर्क में आना चाहिए और घुमा-फिराकर अनावश्यक विलम्ब लगाने वाली कार्य-पद्धति को सरल बनाना चाहिए।

सोशलिस्ट पार्टी इसके बदले निम्नलिखित न्याय-पद्धति का सुझाव रखती है—

(अ) दीवानी

(१) निर्वाचित ग्राम-अदालतों द्वारा ही निश्चित छोटी रकम के मामलो का फैसला हो जाना चाहिए। ऊपर की कचहरियों में इनकी अपील केवल तभी हो सकती है जब कि निर्णय पक्षपातपूर्ण रहा हो या उसके पीछे भ्रष्टाचार का हाथ हो।

(२) बड़े-बड़े मामलों का फैसला अस्थायी अदालती पचायतों द्वारा होना चाहिए। इन पचायतो को वादी और प्रतिवादी न्याय-विभाग की ओर से निर्धारित व्यक्तियों की सूची मे से चुनेंगे। अगर पचायत चाहे तो वह किसी सुदक्ष जज को अपने साथ बैठने के लिए आमंत्रित कर सकती है या

किसी कानूनी प्रश्न पर उसकी सम्मति ले सकती है। जब तक पक्षपात, भ्रष्टाचार या अन्याय की बात न होगी, अदालती पचायत के फैसले के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकेगी।

(३) कुछ खास मामलो की, जिनमे कानूनी पेचीदगी होगी, सुनवाई सुदक्ष जजो द्वारा ही असेसरों की सहायता से होनी चाहिए।

अदालत न० १ और २ मे, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, वकीलो के जाने की अनुमति न होगी।

(आ) फौजदारी

(१) अपमान, मामूली चोट, गाली और अनधिकार प्रवेश आदि साधारण अपराधो के मुकदमों की सुनवाई निर्वाचित गाँव-अदालतों में ही हो जायगी।

(२) संगीन अपराधों के मुकदमों का फैसला अस्थायी भिन्न-भिन्न पचायतो द्वारा होगा जिन्हें आवश्यकतानुसार सुदक्ष जज को सहायता भी मिल सकेगी। तथ्य संग्रह करने और दण्ड देने के कार्यों को एक-दूसरे से पृथक कर देना चाहिए।

जाँच-पड़ताल करने का काम ग्राम-सभा के सुपुर्द नहीं होना चाहिए। इससे यह खतरा है कि शायद सभा के सदस्य गंभीरता से जाँच न करें और जिन मामलों से वे स्वय सम्बन्धित हो, उनकी जाँच में वे गलत तरीकों का सहारा भी लें। जैसा कि रूस मे है, जाँच करने के लिए एक अफसर अलग से नियुक्त होना चाहिए, जो पुलिस अफसर न होकर न्याय-विभाग का अफसर हो। यह बात केवल सगीन अपराधों के लिए ही लागू होगी।

(इ) खास अदालतें

इन अदालतों की स्थापना भी ऊपर लिखे सिद्धान्तों के आधार पर होनी चाहिए, अर्थात् न्याय करने के लिए जनता का सहयोग प्राप्त करना। उदाहरण

के लिए बालको के अपराधो पर विचार करने के लिए अलग अदालतें हों, जिनमें अध्यापक, डाक्टर, सम्मान्य स्त्री-पुरुष नागरिक हो। तलाक वाली अदालतों में फैसला करनेवाले स्त्री-पुरुष नागरिक और डाक्टर हों।

वकीलों को इन अदालतों में नहीं जाने देना चाहिए।

(ई) अपील के लिए अदालतें

मातहत अदालतो को अधिकार होगा कि वे कानूनी मसलो पर अपील की इन अदालतो से आखिरी फैसला करा सकें।

(उ) कानूनी पेशा

कानूनी पेशा में बहुत उलट-फेर करके उसको फिर से सगठित करने की आवश्यकता है। पार्टी का सुझाव है कि रूस की तरह भारत में भी वकीलों के सघ (कॉलेजियम) कायम करने चाहिए। शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद वकील इस सघ (कॉलेजियम) में भर्ती होंगे। यहाँ उनकी योग्यता के अनुसार उन्हे काम दिया जायगा और उनका पारिश्रमिक निश्चित कर दिया जायगा।

२. आर्थिक

कुछ आम बातें

अब जो भी आर्थिक योजना बनायी जाय, उसका प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति होना चाहिए। यदि हमारा अंतिम लक्ष्य समाजवाद की स्थापना करना है तो देश को उस राह पर चलाने के लिए अभी से प्रयत्न करना चाहिए।

कांग्रेस सरकारो की वर्तमान नीति की न कोई दिशा है, न उसका कोई लक्ष्य ही। मौजूदा हालत को बनाए रखने के सिवाय वह हमे अन्यत्र कहीं नहीं ले जा सकती। वर्त्तमान अर्थ-व्यवस्था व्यक्तिगत उद्योगों पर आधारित है, अर्थात् व्यक्तिगत मुनाफे और मजदूरों के शोषण पर उसकी बुनियाद है। इस-

लिए यह स्पष्ट है कि इस अर्थ-व्यवस्था से समाजवाद तक नहीं पहुंचा जा सकता।

समाजवाद की ओर बढने के लिए आवश्यक है कि वर्त्तमान अर्थ-व्यवस्था को सामाजिक नियन्त्रण में ला दिया जाय और विकास की एक विस्तृत योजना के अनुसार उसका सन्चालन हो। उसके कुछ भागों का तो तुरत समाजीकरण हो जाना चाहिए। पूँजी का सरकार द्वारा नियन्त्रण और सचालन हो। आय की असमानता भारी कर लगाकर दूर कर देनी चाहिए। जमींदारी प्रथा जैसे साम्पत्तिक सम्बन्धों को खत्म कर देना चाहिए और मजदूरी और अच्छे मकानों की गारटी मिलनी चाहिये।

इतना हो जाने पर देश समाजवाद के रास्ते पर चल चुकेगा। लेकिन आज के लिए जो आर्थिक व्यवस्थाएँ जरूरी हैं, वे इतने से ही खत्म नहीं हो जाती।

इनके साथ-साथ आर्थिक उन्नति के लिए दूसरी महत्वपूर्ण चीज है उत्पादन मे वृद्धि करना, अर्थात् वर्त्तमान साधनों तथा जन-शक्ति का अच्छा से अच्छा उपयोग और कृषि तथा उद्योगो की और अधिक उन्नति करना।

जिन समस्याओं पर तुरत ध्यान देना चाहिए और जो बहुत महत्वपूर्ण हैं, वे हैं— खाद्य, वस्त्र और मकानों की कमी।

अतिम समस्या है मनुष्य की। राज्य के हरेक व्यक्ति मे सामाजिक उत्तरदायित्व की एक नई चेतना जगानी चाहिए। व्यक्ति को नई प्रेरणा के प्रति जागरूक और बडे उत्तरदायित्वों को सँभालने के लिए तैयार रहन चाहिए।

इन साधारण बातों की ओर दृष्टिपात करने के बाद हम अपनी आर्थिक नीति का थोड़ा विस्तृत चित्र सामने रखते हैं—

(क) उद्योग

(अ) योजना

हमारी पहली आवश्यकता एक ऐसी आर्थिक योजना तैयार करने की है, जिसमे विभिन्न आर्थिक गति-विधियाँ परस्पर सामञ्जस्य रखती हुई चलें। यदि सभी आर्थिक साधनों को योजनात्मक ढंग से संयोजित किया जाय, तो समाज को आर्थिक और सास्कृतिक उन्नति उस परिमाण मे हो, जिसका सपना भी स्वतत्र व्यवसाय उद्योगो मे मिलना असम्भव है।

आर्थिक साधनो और जन-शक्ति का जो उपयोग आज किया जा रहा है, उसके पीछे मुनाफे की भावना काम कर रही है। इस पद्धति में अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की ओर ध्यान नही दिया जाता और केवल ऊँचे मुनाफे के लिए अनावश्यक कार्यों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। यह खयाल किए विना कि हरेक व्यक्ति को क्या मुनाफा रहता है, जब तक हमारे साधनों और जन-शक्ति को एक केन्द्रीय योजना के अनुसार उत्पादन मे नही लागाया जाता, तब तक आर्थिक व्यवस्था गतिरुद्ध और असतुलित ही रहेगी। व्यवसाय में लगी कुछ पूँजी अपने-आप में बहुत उत्पादनशील नही होती, पर सारे क्षेत्र के उत्पादन को बढाने में उसका महत्वपूर्ण भाग होता है। उदाहरण के लिए भूमि की उर्वराशक्ति बढाने, जगल लगाने और नदियों पर बाँध बाँधने की योजना में लगाई हुई पूँजी को लिया जा सकता है। केन्द्रीय योजना इन कामों मे पूँजी का रुख मोड़ सकती है।

केन्द्र और प्रान्तों में योजना समितियाँ और बोर्ड तो बनाने ही पड़ेंगे, किन्तु जब तक सारी जनता योजना को कार्यान्वित करने मे भाग नहीं लेती, तब तक यह सहयोगी अध्यवसाय नही होगा और न जन साधारण में वह उत्साह ही पैदा हो सकेगा, जिसके बिना कोई भी योजना सफल नही हो

सकती। हरेक गाँव और हरेक औद्योगिक कारखाने को इस महत्वपूर्ण कार्य में हाथ बँटाना होगा ।

समाजवादी पुनर्निर्माण के प्रारभ मे सहयोगी आर्थिक व्यवस्था निश्चित रूप से मिश्रित आर्थिक व्यवस्था होगी, अर्थात् समाजवाद और व्यक्तिगत अर्थ-व्यवस्था दोनों कुछ दिनों तक साथ-साथ चलेंगे लेकिन आर्थिक योजना के अन्दर सारे देश की सम्पूर्ण व्यवस्था को लाने के लिए यह आवश्यक होगा कि व्यक्तिगत उद्योगो पर भी नियन्त्रण रखा जाय ताकि देश मे समान रूप से आर्थिक प्रगति हो सके।

(आ) समाजीकरण

सोशलिस्ट पार्टी की सम्मति में कोयला और अबरक की खानो , लोहा, इस्पात और अन्य धात्विक उद्योगों , कच्चा लोहा आदि की खानों, रक्षा-कार्य के लिए समान और हवाई जहाज तथा सामुद्रिक जहाज निर्माण करनेवाले और बिजली-उत्पादन करनेवाले उद्योगो का तुरन्त या शीघ्र ही राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिए। ये बुनियादी उद्योग हैं और सामाजिक विकास के लिए उनका राष्ट्रीयकरण होना आवश्यक है।

इसके अलावा पार्टी सूती मिलों के राष्ट्रीयकरण की भी सिफारिश करती है, क्योंकि इस उद्योग से जनता की एक प्रमुख आवश्यकता की पूर्त्ति होती है।

रेलवे का तो प्राय: राष्ट्रीयकरण हो ही चुका है। बिजली से चलनेवाली सवारियो का राष्ट्रीयकरण करने या उनको म्युनिसिपैल्टी के प्रबध में देने की सिफारिश भी सोशलिस्ट पार्टी करती है।

जिन उद्योगो का राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण हो चुका है, उनके प्रबन्ध के लिए राष्ट्रीय, प्रान्तीय या स्थानीय कानूनी बोर्ड कायम किये जाने चाहिए। इन बोर्डों मे सरकार, उपभोक्ता और मजदूरों (टेकनीशियनो सहित) के प्रति-निधि नियुक्त होने चाहिये।

(इ) नियंत्रित उद्योग

दूसरे उद्योगों को सरकारी नियंत्रण में ला देना चाहिए। नियंत्रण इस प्रकार लगाना चाहिए—

(१) उद्योगो के स्थान और आकार को निश्चित करने के लिए उन्हें लाइसेंस कराने का तरीका चलाया जाय।

(२) पूँजी लगाने पर नियंत्रण।

(३) भवन-निर्माण की सामग्री पर नियत्रण।

(४) शक्ति-साधनों का नियंत्रण।

(५) मजदूरों के वेतन और रहने तथा काम करने की स्थिति के सम्बन्ध में कानूनों के लागू होने की अनिवार्यता।

(६) व्यवस्था-विभाग के पारिश्रमिक और मुनाफे पर नियत्रण।

(७) सरकार की ओर से अनिवार्य रूप से आदर्श विवरण पत्रिका के आधार पर हिसाब-किताव की जाँच।

(८) कच्चे माल और तैयार माल की कीमत पर तथा उनकी तायदाद और सिफन पर नियत्रण।

हमारा देश अत्यत गरीब है। यद्यपि गल्ले की बेहद कमी है, पर खेतिहर मजदूरों को काम के घटों की उसी दर से मजदूरी नहीं मिलती जिस दर से खेती से अलग काम करने वाले मजदूरों को मिलती है। यह अन्यायपूर्ण है।

आमदनी के साधारण स्तर को ध्यान में रखकर ही उत्पादन की प्रेरणा की समस्या पर विचार करना होगा। ऐसी हालत में उद्योग का मुनाफा सरकार द्वारा निश्चित उच्चतम वेतन में अधिक नहीं होना चाहिये।

(ई) नये उद्योग

औद्योगीकरण के कार्यक्रम के सिलसिले में सरकार को यह ध्यान रखना

होगा कि किस उद्योग को पहले विकसित किया जाय और किसको बाद मे। हिन्दुस्तान में हमारे लिए यह सभव नही है कि हम मध्यम श्रेणी के और उपभोग्य वस्तुओ के उत्पादक उद्योगों को छोडकर अपना ध्यान भारी और बुनियादी उद्योगों की ओर केन्द्रित कर सके, क्योंकि स्वामित्व और भूमि के आकार के पुनर्संगठन के कारण एक बडी सख्या मे स्त्री-पुरुष बेकार हो जायेंगे जिनके लिए खास तौर से देहातो मे रोजगार दिलाना होगा।

सभी बुनियादी उद्योग प्रातीय या केन्द्रीय सरकार द्वारा शुरू किये जाने चाहिए। उनका मालिक और प्रबन्धक भी सरकार ही रहे।

अन्य उद्योगों मे से कुछ का विकास जन सस्थाओं और सहयोग-समितियों द्वारा होना चाहिए।

कुछ उद्योग का विकास—व्यक्तिगत उद्योग मे—सरकार को साझेदारी से होना चाहिए।

दूसरे उद्योगो को व्यक्तिगत उद्योग के द्वारा विकसित होने देना चाहिए, किन्तु उनपर जनता का नियन्त्रण रखना चाहिए, जैसा कि ऊपर सुझाया गया है।

औद्योगिक विकास के लिए योजना बनाने के लिए आवश्यक है कि सरकार तुरत देश व्यापी जाँच-पडताल कराके राष्ट्रीय साधनो, पूँजी, वर्त्तमान उत्पादन, उपभोक्ता की आवश्यकताएँ, जीविका-वितरण और राष्ट्रीय आय आदि मदो के सम्बन्ध में आवश्यक आँकड़े इकट्ठा कर ले।

(ख) मजदूर

अगर समाजवाद की शुरुआत करनी है तो उद्योगो और समाज मे श्रमिको की स्थिति पर विशेष ध्यान देना होगा। समाज के सभी क्षेत्रो मे श्रम को महत्व समझना होगा, मालिक और मजदूर के सम्बन्धों मे परिवर्त्तन

कराना होगा, और इसके लिए मजदूरों को मालिक (राज्य हो चाहे व्यक्ति) के समान स्तर पर लाना होगा।

किसी भी व्यवसाय मे मजदूरों को बराबर का साझीदार समझना चाहिए।

जिन उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और समाजीकरण हो गया है, उनके प्रबन्ध मे कारखाने के मजदूरों के प्रतिनिधियो का भी हाथ होना चाहिए। किन्तु जहाँ-कहीं मजदूरो की सामूहिक सामाजिक भावना, माल की किस्म को अच्छा करने और उत्पादन बढाने का उत्तरदायित्व अनुभव नही करती, वहाँ उनको इन अधिकारों से वंचित किया जा सकता है। उनको ये अधिकार तभी दिए जाएँगे जब वे उत्पादन की पुष्ट इकाई सिद्ध हों। व्यक्तिगत उद्योगों में भी कार्य-संचालन समितियाँ स्थापित होनी चाहिएँ जिनमें ऊपर लिखी शर्तों पर उद्योग को चलाने के लिए मजदूरो के प्रतिनिधियो को भी स्थान मिले।

व्यक्तिगत या सामाजिक उद्योगों में जो मुनाफा हो, उससे पहली आवश्यक चीज है—मजदूरो की प्रारम्भिक आवश्यकता-निर्वाह योग्य वेतन और उपयुक्त गृह की पूर्ति करना। जैसे-जैसे उत्पादन मे वृद्धि हो, मजदूरों और उनके परिवार को सामाजिक सुविधाएँ देना भी उद्योग का प्राथमिक कर्तव्य हो जाता है।

उद्योगो के राष्ट्रीयकरण और सामाजीकरण हो जाने पर मजदूरो को मजदूरी देने के पहले वाले सिद्धान्तों में भी परिवर्तन हो जाना चाहिये। व्यक्तिगत उद्योगो में मजदूरो की मजदूरी उत्पादन के व्यय पर चढा दी जाती है और उसे कम-से-कम करने की कोशिश की जाती है ताकि मुनाफा अधिक-से-अधिक हो। किंतु राष्ट्रीय उद्योगों मे मजदूरी और मुनाफा दोनो की वर्तमान मान्यता बदल जानी चाहिए। मजदूर की मजदूरी से ही उद्योग के कुल उत्पादन में उसका हिस्सा तय होना चाहिये। उद्योग की आवश्यकताओं

और राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था से सामञ्जस्य रखते हुए, उत्पादन मे वृद्धि के साथ-ही-साथ मजदूरों की मजदूरी भी बढती जानी चाहिए। इसी तरह राष्ट्रीय उद्योगों में मुनाफा की मान्यता भी बदल जानी चाहिए। अब यह निजी आमदनी का साधन न रहे, वल्कि इससे यह तय किया जाए कि कुल आय का कौन-सा हिस्सा उद्योग को वृद्धि मे और कौन-सा अर्थ राष्ट्रीय व्यवस्था के विकास में लगाया जाय।

(ग) बैंक और व्यापार

पार्टी सभी तरह के बैंकों और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश करती है।

वैदेशिक व्यापार पर तो राज्य का एकाधिकार हो हो, किन्तु भीतरी व्यापार पर भी मूल्य नियन्त्रण तथा राशनिंग के जरिए उसका कन्ट्रोल रहना चाहिए।

(घ) टैक्स

सरकारी राजस्व व्यवस्था का पुनः संगठन व्यावहारिक रूप से होना चाहिए। इसके मानी यह है कि आर्थिक कारवाइयों को परख राजस्व पद्धति के परम्परागत सिद्धान्तों से न की जाय, वल्कि हरेक कार्य का परिणाम देखकर यह निश्चित किया जाय कि अमुक कार्य वाछनीय है या नही।

सारी कर-व्यवस्था की जाँच आलोचनात्मक दृष्टि से करनी होगी। इस बात का ख्याल रक्खा जायगा कि कर का बोझा किसके ऊपर पड़ता है। कालान्तर से कुछ कर बहुत बोझीले हो गये हैं। कुछ प्रकार के व्यवसाय करके बोझ को उचित मात्रा मे नही बर्दाश्त करते। कुछ काम न करने वाले मालिक उनलोगों की अपेक्षा जो उत्पादन बढाने में बड़ा योग देते हैं, बहुत कम कर देते हैं। आय को दो वर्गों मे बाँट देना जरूरी है। एक तो विना कमाई की

पूँजी जो राष्ट्रीय साधनों पर स्वामित्व रखने के कारण भेंट स्वरूप मिलती है। दूसरे, उत्पादन में योग देने के कारण प्रत्यक्ष रूप से कमाई गयी पूँजी, इन दोनो वर्गों की पूँजी पर कर की दर तथा तरीके की स्पष्ट परिभाषा की जानी चाहिए। इस कर-व्यवस्था में हमारे सामाजिक दृष्टिकोण की स्पष्ट झलक मिलनी चाहिए।

यह जरूरी हो जाता है कि आय और सम्पत्ति का वार्षिक विवरण तैयार कराया जाय। युद्धकालीन नफे को कर द्वारा खत्म कर देना चाहिए। कर-व्यवस्था को सामाजिक नीति का साधन बनाने का स्पष्ट तरीका है कि लाभ-कर, मृत्यु कर तथा पूँजी-कर लगाये जाएँ।

सोशलिस्ट पार्टी की राय है कि चोरबाजारी को खत्म करने के लिए कड़े उपाय काम में लाये जायँ। ये उपाय ताजीरी तथा आर्थिक दोनो हैं।

अब तक काम में लाये गये ताजीरी तरीके नाकाफी रहे हैं। पार्टी की राय मे सजा को पुरअसर बनाने के लिए चोरबाजारी करने वालों की जायदाद पर कब्जा कर लेना चाहिए तथा उनसे नागरिक अधिकार छीन लिये जायँ।

चोर-बाजारी का अन्त करने के लिए पार्टी नीचे लिखे आर्थिक उपाय पेश करती है।

जिन चीजों पर, जैसे कपड़ा, राशनिंग है, उनको इस्तेमाल करनेवाली फैक्टरियो की उत्पादन-शक्ति का अन्दाज श्रम प्रतिनिधियों की सहायता से सरकारी विशेषज्ञों को लगा लेना चाहिए। इसके बाद हरेक फैक्ट्री को सरकार के लिए चीजों को तैयार करने का कोटा दे देना चाहिए। इस माल को सरकार नियन्त्रित कीमत की दूकानों तथा उपभोक्ता सहयोगी-समितियों के द्वारा, जिनके सदस्य एक निश्चित आय से नीचेवाले ही लोग हो, उपभोक्ताओं मे बाँटे। हरेक फैक्टरी को अधिकार रहेगा कि वह नियत कोटा से अधिक सामान पैदा करे तथा अनियंत्रित खुले बाजार मे बेचे।

(च) कृषि

कृषि हमारे आर्थिक जीवन का केन्द्र-बिन्दु है। इसमें हमारी जनशक्ति का तीन चौथाई भाग लगा हुआ है और हमारे दो तिहाई प्राथमिक साधन इसमें सन्निहित हैं। फिर भी पिछली सरकार और पूँजीवादी ढग के औद्योगिक योजनाकारों ने इस पर बहुत कम ध्यान दिया है। किन्तु जब तक हमारी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे मौलिक परिवर्तन नही होते, तब तक हमारी आथिक व्यवस्था का पूर्ण और सन्तुलित विकास नही हो सकता। इसलिए यहाँ बता देना आवश्यक होगा कि परिवर्तन किस दशा मे हो और इस सम्बन्ध में तत्काल क्या किया जा सकता है। इस योयना मे पार्टी के तात्कालिक उद्देश्य ये है—

(अ) कृषि मे लगी सरकारी पूँजी की वृद्धि करना, ताकि कृषि के लिए अधिक रकबे की जमीन मिल सके और हर खेतिहर मजदूर की उत्पादन शक्ति में वृद्धि हो सके। कृपि के उत्पादन को दिवालियापन से बचाने के लिए यह भी आवश्यक है कि खेतिहर मजदूर के प्रति घण्टे काम की मजदूरी की जाँच उद्योगो मे लगे हुए मजदूरों की प्रति घटे की मजदूरी के आधार पर की जाय।

(आ) भूमि के स्वामित्व मे इस प्रकार क्रातिकारी परिवर्तन करना, ताकि हरेक व्यक्ति के लिए पर्याप्त सामान्य भूमि, जो वैज्ञानिक कृपि योग्य भी हो, निकल सके।

(इ) अतिरिक्त श्रम-शक्ति को काम देने के लिए गाँवो मे नयी अर्थिक व्यवस्थाएँ करना—जैसे, सहयोग और बहुधधी समितियाँ, अनाज बैंक, मध्यम श्रेणी के उद्योग-धन्धे, विशेषतया उत्पादको की सहयोग-समितियाँ आदि स्थापित करना।

(ई) कई प्रकार के जमींदार, महाजन और व्यापारी—इन्ही तीनों के द्वारा आज किसानों का शोषण किया जाता है। इसीलिए, किसान की समस्या

को नए सिरे से सुलझाने के लिए सभी तरह की जमींदारी को खत्म करना जरूरी है। राज्य और खेतिहर के बीच कोई बेकार लगान वसूल करने वाला व्यक्ति नहीं होना चाहिए। इस समय ऐसे मध्यस्थो की कमी नहीं है।

जमीन को अपने-आप पूर्ण बनाने के लिए चकबन्दी का अनिवार्य होना आवश्यक है।

इन सब चीजो का आवश्यक परिणाम यह होगा कि खेती के चकले का निश्चय जमीन के किस्म (नम या सूखी) के आधार पर किया जाय।

अगर ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को अव्यवस्थित नही रखना है और आर्थिक शोषण को रोकना है, तो यह भी जरूरी है कि खेतिहर मजदूर की स्थिति पर भी नए सिरे से विचार किया जाय। हरएक कृषि-क्षेत्र के लिए न्यूनतम मजदूरी तय कर दी जाय।

इसके लिए यह देखना होगा कि खेती के मौसम में हरेक खेतिहर मजदूरो को प्रति मनुष्य कुल कितने घटे काम करना पड़ता है, और साल-भर में उनकी औसत कितने घटे प्रति दिन पड़ती है। काम थोड़ा है और आदमी उसमें ज्यादा लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त श्रम को आसपास मे स्थापित मध्यम श्रेणी के उद्योगो मे लगाया जा सकता है।

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था—जितना प्रयत्न उद्योग और व्यापार की आर्थिक व्यवस्था को ठीक करने मे किया गया, उतना प्रयत्न कृषि के आर्थिक पहलू को सँभालने मे नहीं किया गया। इस समय देहातों में जो अर्थ-व्यवस्था प्रचलित है, वह न किसानों के लिए न्यायोचित है और न निर्वाह योग्य सुविधा प्रदान करती है। गुजारे लायक खेत बन जाने और कानून के जरिए खेतों के छोटे टुकड़ोको मिलाकर बड़ा चक बना देने के बाद सरकार को कृषि में पूँजी लगाने में सुविधा हो जायगी और मौसमी फसल की बोआई में वह किसानों को आर्थिक सहायता दे सकेगी। नए खेतो की स्थिति दृढ करने के

लिए फसलों का बीमा कराना भी जरूरी है। किसानो को चालू आर्थिक सहायता देने के लिए सबसे उपयुक्त साधन है—समग्र-ग्राम-सहायक-समिति (मल्टि. परपस सोसाइटी) और अनाज बैंक। कानूनन हरेक किसान को इस समिति मे शामिल होना ही पड़ेगा। यह समिति ग्राम के सहयोगपूर्ण जीवन की परिचायिका होगी। समिति को किसानो के आर्थिक कार्यों का सगठन करना चाहिए। किसी भी किसान को अपने सिवा किसी और किसान का लेन-देन करने का अधिकार न होगा। फसल के दिनों में ऋण देने, अच्छे और छाँटे हुए बीजों तथा कृषि के आधुनिक औजारों का प्रबन्ध, अच्छी नस्ल के मवेशी तथा देहाती उपज की बिक्री आदि की व्यवस्था व्यक्तिगत रूप से न होकर इन समग्र-ग्राम-सहायक-समितियों के जरिए ही होनी चाहिए। इसी प्रकार उपभोक्ताओ के लिए भी सहयोग के आधार पर चलनेवाली फुटकर सामानो की दूकानें होनी चाहिएँ।

इन मौसमी सहायताओं के अतिरिक्त किसानों के भूमि की उर्वरा शक्ति बढाने, नालियाँ निकालने, जगल लगाने, बिजली-घरों और मध्यम श्रेणी के उद्योग-धन्धों को कायम करने और छोटे पैमाने पर सिचाई के लिए नहरें तथा गाँव की सड़कें आदि बनवाने के लिए भी किसानों को आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए। इन कार्यों को प्रान्तीय सरकार की जिला-सस्थाओं को अपने हाथ मे लेना चाहिए और इसमें ग्रामीण समितियों का भी सहयोग प्राप्त करना चाहिए। जैसा पहिले तय किया जा चुका है इन कार्यों के लिए श्रम-शक्ति गाँवों से प्राप्त होगी और आर्थिक सहायता बाहर से जुटानी पड़ेगी। गाँवो के सहयोग से जिलो मे जब इन कार्यों का संगठन हो जायगा तो इससे बहुत से नए लोगो को काम मिल जायगा और बेरोजगार मजदूर रोजगार पा जायेंगे और इस प्रकार गावा के खेतो का फिर से बन्दोबस्त करने के काम मे सहूलियत पैदा हो जायगी।

फिर भी इस योजना को सुविधा से कार्यान्वित करने में दो बाधाएँ उपस्थित होंगी—

अनिवार्य चकबन्दी से छोटे काश्तकारो का भूमि का स्वामित्व सीमित हो जायगा। उनमें से कुछ तो खेतिहर मजदूरों की स्थिति मे पहुँच जाएँगे और बेकार तक हो जा सकते हैं। दूसरी ओर खेतिहर मजदूर को इससे निश्चित रूप में लाभ पहुँचेगा और जमीन के छोटे-छोटे बिखरे हुए और अपर्याप्त टुकड़ों के मालिक किसान से उसकी हालत कहीं अच्छी हो जायगी। गाँव में जिन में इतनी उद्योगशीलता नहीं है, वे ही खेतो पर टिके हुए हैं। ऐसे लोगों की सख्या भी थोड़ी नहीं है। वे इस तरह की किसी नई व्यवस्था के विरुद्ध दृढ प्रतिरोध भी करेंगे, जिसकी हमे उपेक्षा नही करनी है। समग्र ग्राम-समिति के कार्यों के सम्बन्ध मे हमे इस तथ्य को ध्यान रखना होगा कि किसान किसी भी नए परिवर्तन का प्रतिरोध करेगा।

हम ऊपर बता चुके हैं कि खेतो पर काम करनेवाला मजदूर और अन्यत्र काम करनेवाले मजदूर के घण्टे काम की मजदूरी में कितनी असमानता है। ग्रामीण अर्थ-व्यवथा पर इसका चिन्तनीय प्रभाव पड़ा है। उद्योगी, साहसी महत्वाकांक्षी और योग्य व्यक्तियों को गाँव छोड़कर शहर में रोजगार खोजने जाना पड़ा है जिनमें इतनी उद्योगशीलता नही है, वे ही खेतो पर टिके हुए हैं। अपरिवर्तनशील और अगतिशील ये गाँव आज बाहरी दुनिया से तिरस्कृत से पडे हैं। एक बड़ी बाधा यह भी है कि ग्रामीण जनता आगे बढ़ कर कोई काम शुरू नही करना चाहती। इससे गाँव आज कई समाज-विरोधी शक्तियों के शिकार हो गए हैं जो गाँव के सामाजिक जीवन पर सामन्तशाही की तरह शासन कर रही हैं। इन ऐक्य-विरोधी और समाज विरोधी ग्रामीण 'प्रभुओं' के कार्यों पर रोक-थाम लगाना और गाँववालो में आगे आकर काम करने की भावना और योग्यता पैदा करना आदि कार्य ऐसे हैं

जिनके लिए हमें विशेष प्रयत्न करना पड़ेगा। जब तक यह नहीं होता, देहाती जीवन का आर्थिक और राजनैतिक स्रोत गँदला और उसकी गति अवरुद्ध बनी रहेगी। इन्हीं कारणो से यह जरूरी है कि इस योजना के प्ररम्भ में जिलो अधिकारी को पथ-प्रदर्शन करना चाहिए। कार्य की प्रगति के लिए गाँव के कुछ चुने हुए नौजवानो को ग्राम-सेना तैयार करना भी सहायक होगा ऐसी ग्राम-सेनाओ को ६ महीनो की ट्रेनिग दे देने से जन-शक्ति के अभाव की संभावना न रहेगी। इससे अच्छी तरह और मिल-जुल कर काम करने की भावना में भी वृद्धि हो सकेगी। सधारणतया गाँव का कोई लड़का ६ सप्ताह की लगातार शिक्षा के बाद एक अच्छा सैनिक बन जाता है। इसी प्रकार यदि ग्राम पुनर्संगठन के लिए भी ग्रामीणों की सेना भिन्न साधनों और औजारो से तैयार की जाय, तो ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए गाँव वालो का समर्थन प्राप्त किया जा सकता है। इस कारण पहले-पहल कार्य प्रारभ करने को उत्तरदायित्व जिला का होना चाहिए। जैसे-जैसे ग्राम सेना तैयार होती जाय, वैसे-वैसे एक गाँव के बाद दूसरें गाँव में काम शुरू होता जाय।

फिर भी इस तरह की योजना टी० बी० ए० के नमूने पर बनी हुई होनी चाहिए। जब तक इस तरह का चौमुखी प्रयत्न न किया जायगा, हमारे राष्ट्रीय जीवन मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को समुचित स्थान नहीं मिल पायगा। सोशलिस्ट पार्टी सिफारिश करती है कि हरएक राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना को पहले इन ग्रामीण समस्याओ पर ध्यान देना चाहिए, क्योकि हमारा ध्येय है एक नए ग्रामीण और आदर्श ग्राम का निर्माण।

छ) गाँव के सहायक और छोटे उद्योग

ऊपर जिन साधनो और नीतियों का हमने उल्लेख किया है, यदि उनको

कार्यान्वित किया गया तो इसमें शक नहीं कि किसान का जीवन आर्थिक दृष्टि से प्रगतिशील हो जायगा। किन्तु ये कार्यक्रम अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। ग्रामीण और छोटे उद्योग धधों को पुनर्जीवित करने की भी आवश्यकता होगी। इस विकास के लिए स्थानीय परिस्थितियों का अध्यन भी बहुत जरूरी है, लेकिन स्थूल सिद्धान्त तो निश्चित किये ही जा सकते हैं।

जहाँ तक सभव हो ऐसे सभी उद्योग-धन्धे औद्योगिक सहयोग-समितियों के अन्तर्गत चलाए जाने चाहिए।

उद्योग से उत्पादन और टेकनिक में उन्नति करने के लिए हर तरह से कोशिश होनी चाहिए।

गाँववालों को उत्साहित करने के लिए विशेषयता उन्हीं उद्योगों को चलना चाहिए जिनकी टेकनिक विस्तृत उत्पादन की मशीन टेकनिक से बहुत दूर न हो।

उन उद्योगों को यथाशीघ्र सस्ती बिजली प्राप्त करने की सुविधा कर देनी चाहिए।

———

जयप्रकाश की विचारधारा

द्वितीय खंड

क्रान्ति की लपटों में

आजादी के सैनिकों के नाम

पहला पत्र

[१९४२ की क्रान्ति के समय हजारीबाग सेन्ट्रल जेल से भाग जाने के कुछ दिनो बाद जयप्रकाश ने यह पत्र प्रकाशित किया]

इन्क़लाबी सलाम,

साथियो,

सबसे पहले मैं आपलोगों को और उन साथियों को जो युद्ध के बन्दा बना लिये गये हैं अपना हार्दिक अभिनन्दन आपलोगों द्वारा दुश्मन से लड़ी गई शानदार लड़ाई के लिए अर्पित करता हूँ। मुद्दतों से कुचले गये हमारे इस पीड़ित देश मे ईस तरह की घटना न कभी घटी और न इसकी उमीद की जाती थी। निस्सन्देह ही यह "खुली बगावत" थी, जैसी कि हमारे अनुपम नेता महात्मा गाँधी ने कल्पना की थी।

यह "बगावत्त" दवा दी गई है, इस समय ऐसा ही मालूम पड़ता है। किन्तु मेरा ख्याल है, और आप भी इस बात से सहमत होंगे कि हमारी बगावत कुछ ही समय के लिए दवाई जा सकी है। इसपर हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये। आश्चर्य की बात तो यह होती कि हम अपने पहले धावे में

ही इस साम्राज्यवाद को चकनाचूर करके पूरी तरह सफलता प्राप्त कर चुके होते। दुश्मन द्वारा यह स्वीकार कर लिया जाना कि यह बगावत करीब-करीब उसकी सत्ता को नष्ट कर चुकी थी, साबित करता है कि अपनी राष्ट्रीय क्रान्ति की पहली मंजिल मे हम कितने सफल हुए हैं!

और हमारी क्रान्ति की यह पहली मजिल भी किस तरह कुचली गई? क्या दुश्मन की सैनिक शक्ति—उसकी गुडागिरी, लूट, अगलगी और हत्या की हुकूमत—ने यह काम किया? "बगावत कुचल दी गई"—ऐसा सोचना भी गलत है। हर क्रान्ति का इतिहास बताता है कि क्रान्ति कोई छिटपुट घटना नहीं हुआ करती है। क्रान्ति तो एक सामाजिक प्रक्रिया है और क्रान्ति के विकास के सिलसिले मे ज्वार और भाटे आया ही करते हैं। इस समय हमारी क्रान्ति का पानी उतार पर है। हमारी क्रान्ति ऊपर से ऊपर उठती हुई विजय पर विजय नहीं प्राप्त कर सकी, तो इसका कारण साम्राज्यवादी लुटेरों की पाशविक शक्ति की प्रबलता नहीं, बल्कि इसके दो अन्य कारण हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि राष्ट्रीय क्रान्तिकारी शक्तियो के पास कोई चुस्त सगठन नही था जो इस क्रान्ति से पैदा हुई महान शक्तियों का नेतृत्व कर सके। काँग्रेस एक महान सस्था है, किन्तु जिस ऊचाई पर यह क्रान्ति जा पहुँची, उसके अनुरूप वह भी अपने को सिद्ध नही कर सकी। सगठन की कमी का यह हाल था कि प्रमुख काँग्रेसी नेता और कार्यकर्त्ता भी नही जानते थे कि क्रान्ति कहाँ पर किस मजिल तक पहुँच चुकी है। और, बहुत दिनो तक तो यह विवाद ही चलता रहा कि यह काँग्रेस के कार्य-क्रम से कहाँ तक मेल खाती है। इस दुखद सत्य को भी हमें स्वीकार ही कर लेना है कि बहुत से प्रभावशाली काँग्रेसजन अपने दिमाग को आजादी को इस अन्तिम लड़ाई की ऊची सतह तक ले जाने मे असमर्थ सिद्ध हुए। महात्मा गाँधी, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद या सरदार पटेल में जिस गम्भीरता, शीघ्रता

और दृढनिश्चय का रुख था, उसका प्रतिबिम्ब सभी कांग्रेस नेताओं के दिल और दिमाग में नहीं देखा गया था।

दूसरी बात यह, कि क्रान्ति की जब पहली मंजिल खत्म हुई, तो जनता के सामने आगे का कोई कार्यक्रम नहीं रह गया। अपने हल्कों मे अङ्गरेजी राज्य का खात्मा करके जनता ने मान लिया कि उसका कर्तव्य पूरा हो गया, वह चुपचाप अपने घर जाकर बैठ रही। इसमे उसका कोई कसूर नहीं था। यह तो हमारी गलती थी—यह हम थे जिन्हे जनता को आगे का कार्यक्रम देना था। जब हमने वह कार्यक्रम नहीं दिया, तो क्रान्ति की धारा रुक गई और अब ज्वार के बाद हम भाटे का दृश्य देख रहे हैं। अङ्गरेजी फौज के पहुँचने के पहले ही यह भाटा शुरु हो गया था, उसने तो हटती हुई तरंग को धक्के देकर और जल्द हटा दिया। यहाँ सवाल उठता है कि क्रान्ति की इस दूसरी मंजिल मे कौन सा कार्यक्रम हमे देना था। इसका जबाब क्रान्ति की प्रकृति पर निर्भर करती है। क्रान्ति सिर्फ सत्यानाश करने वाली शक्ति नहीं होती, वह निर्माण की बहुत बड़ी प्रेरिका शक्ति है। कोई क्रान्ति सफल हो नहीं सकती, जो सिर्फ नाश ही नाश करे। यदि क्रान्ति को जिन्दा रहना हो, तो जिस शक्ति को वह नाश करती है, उसकी जगह पर तुरत नई शक्ति का सृजन करे। हमारी क्रान्ति बड़े-बडे हल्कों मे अङ्गरेजी राज की सत्ता नष्ट कर चुकी थी, अब उसे उसकी जगह पर किसी नई सत्ता का निर्माण करना था। अङ्गरेजी हाकिमो को भगा कर और हुकूमत की कड़ियों और प्रतीकों को तोडफाड या जला कर ही सन्तोष नहीं कर लेना था, बल्कि उन हल्को में फौरन ही नई क्रान्तिकारी सरकार का संगठन कर लेना चाहिये था और उसके लिए फौज और पुलिस की टुकडियाँ भी तैयार कर लेना था। यदि ऐसा किया गया होता, तो लोगो मे कल्पनातीत उत्साह और शक्ति का संचार हो गया होता, रचनात्मक कार्य के लिए एक विस्तृत क्षेत्र खुल गया होता जिससे क्रान्ति की

लहर ऊँची से ऊँची सतह पर चढ़ती जाती, उन हल्कों में भी वह फैल जाती जहाँ ऐसी लहर नहीं आई थी और अन्ततः हम अपने समूचे देश में एक सर्वोच्च सत्ता की सृष्टि कर लिये होते।

चुस्त सगठन का अभाव और राष्ट्रीय क्रान्ति के लिए एक पूरे कार्यक्रम की कमी—हमारी बगावत के उतार के कारण ये ही दो हैं।

अब सवाल यह है कि इस समय हम क्या करे ? सबसे पहला काम तो यह है कि हम अपने और जनता के दिमाग से पस्ती की भावना दूर कर दें और जो सफलता मिल चुकी या जो आगे मिलने वाली है उस ओर ध्यान आकृष्ट कर देश भर मे आशा और उत्साह की भावना पैदा करे।

दूसरा काम यह है कि हम अपने और जनता के दिमाग के सामने इस क्रान्ति की प्रकृति को स्पष्टता और दृढता से रखें। हमें यह समझ लेना है कि यह हमारी आजादी की आखिरी लड़ाई है। इस लिए हमारा उद्देश्य एक-मात्र विजय है, इसके नीचे कुछ नहीं। हम बीच मे रुक नही सकते, रुकने की जगह नही है। राजगोपालाचारी ऐसे लोग राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के लिए जो उछलकूद मचा रहे हैं, उससे हानि ही हानि है। ऐसे कामो से जनता का ध्यान मुख्य प्रश्न से हट जाता है। "भारत छोड़ो" और "राष्ट्रीय सरकार" के बीच में समझौता हो नहीं सकता। जो लोग काग्रेस और लीग में सुलह करना चाहते हैं, वे साम्राज्यवादी प्रचार को लाभ पहुँचा रहे हैं। एकता की कमी की वजह से राष्ट्रीय सरकार नहीं बन रही है, जो इस तरह सोचते हैं वे गलती में हैं। सही बात यह है कि विदेशी हुकूमत अपने को यहाँ से हटाना नहीं चाहती है और तरह-तरह के बहानों की शरण लेती है। चर्चिल ने यह साफ कर दिया यह कह कर कि वह साम्राज्य को डुबोने के लिए बादशाह के वजीरेआजम नहीं बने हैं। वे लोग इतिहास के बेवकूफ विद्यार्थी हैं जो सोचते हैं कि साम्राज्यवाद आप ही खुदकुशी कर

लेगा। कल तक जो अपने को 'क्रान्तिकारी' समझते थे, वे यदि अर्जियों और आरजू-मिन्नतों के जोर से भारतीय साम्राज्य के खात्मे का स्वप्न देख रहे हैं, तो उनसे बढ कर बेवकूफ इतिहास किसको मानेगा ?

भारतीय समाज के हर फिरके या तबके के बीच एकता स्थापित की जाय, आज की माँग हमसे यह नही है। समय की पुकार यह है कि राष्ट्र की सभी क्रान्तिकारी ताकतो मे एकता हो। यह एकता कांग्रेस के झडे के नीचे स्थापित हो चुकी है। कांग्रेस और लीग में एकता हो जाने से इन क्रान्तिकारी शक्तियों को बल नहीं मिलेगा, बल्कि उनका कदम धीमा पड़ जायगा क्योंकि मुस्लिम लीग क्रान्ति के पथ पर जाते ही डगमग करने लगेगी।

साम्राज्यवाद का बिल्कुल खात्मा—अपने इस उद्देश्य को हमे कभी नही भूलना है। इस सम्बन्ध मे हम कोई समझौता कर नही सकते—चाहे हम हारे या जीते। और हम हार नहीं सकते। सिर्फ इसलिए नहीं कि हमने अन्त तक लड़ते रहने का निश्चय कर लिया है, बल्कि ससार मे ऐसी शक्तियाँ पैदा हो रही हैं जो फासिज्म के साथ ही साम्राज्यवाद को भी अन्त कर देंगी। यह कभी नहीं सोचिये कि युद्ध के बाद विजयी राष्ट्रों द्वारा आयोजित कोई शान्ति-सम्मेलन लड़ाई के बाद के ससार के भाग्य का निबटारा करेगा। युद्ध एक अजीब प्रयोगशाला है ? इसके तहखानोंमें ऐसी शक्तियाँ तैयार और सग्रहीत होती रहती हैं, जो एक ही विस्फोट मे विजयी और पराजित दोनों की योजनाओ को हवा पर फेंक दें। पिछली लड़ाई के किसी शान्ति-सम्मेलन ने यह नही तय किया था कि चार विशाल साम्राज्य नष्ट कर दिये जायँ—रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया और तुर्की के साम्राज्य। और, रूस, जर्मनी या तुर्की मे जो क्रान्तियाँ हुईं, उनपर लायड जार्ज, क्लिमेसो या विल्सन ने दस्तखत नहीं किये थे।

जहाँ कहीं भी युद्ध हो रहा है, आदमी मर-कट रहे हैं, वहाँ-वहाँ

युद्ध की वह प्रयोगशाला अपना काम कर रही है। भारत में जो कुछ हुआ है, वह उसी का खेल है। इस युद्ध के बाद की दुनिया का भविष्य चर्चिल-रूजवेल्ट या हिटलर-तोजो पर निर्भर नहीं करेगा। जो शक्ति हमारी इस खुली बगावत के रूप में सामने आई है, ऐसी ही शक्तियाँ अपने ऐतिहासिक कार्य को सम्पन्न करेंगी। क्या इसमें सन्देह की गुंजायश है कि क्रान्तिकारी शक्तियों ने चारों ओर उथलपुथल मचाना शुरु कर दिया है? क्या हम इस पर विश्वास कर सकते हैं कि आज लाखों-करोडो लोग जो इतना कष्ट सह रहे हैं, वे अपने भविष्य के बारे मे नहीं सोच रहे होंगे? क्या हम इसपर विश्वास करें कि सभी देशों की जनता अपने शासकों द्वारा फैलाई गई झूठ पर आँख मूँद कर विश्वास कर रही है? नहीं, ऐसा हो नहीं सकता!

इसलिए अपने भविष्य पर दृढ विश्वास करके हमें आगे बढते जाना है। तो, हम इस समय कौन-सा निश्चित काम करें? जब कोई सेनापति हारता या जीतता है, तो क्या करता है? वह बिखरी शक्तियों को केन्द्रित कर दूसरे मोर्चे की तैयारी करता है। एल-अमीन में अपनी विजय के बाद रोमेल रुक गया, जिससे आगे बढ़ने के लिए वह तैयारियाँ कर ले। हारा हुआ एलेक्जेन्डर भी संगठन और तैयारी में लगा और अपनी पराजय को विजय बनाकर ही रहा। हम तो हारे भी नहीं हैं। पहली लड़ाई में तो हम जीत गये जब हमने देश के एक बड़े हिस्से से विदेशी लुटेरों को बिल्कुल खदेड़ दिया। अब जनता यह जान गई है कि अँगरेजी राज किस तरह ताश का घर है। एक ही फूँक मे उसकी पुलिस, उसकी कचहरी, उसके जेल, उसके थाने हवा में उड़ जा सकते हैं। जनता अपनी संगठित शक्ति को पहचान गई है—अब वह उसे भूल नहीं सकती और अगली लड़ाई में वह वहीं से शुरु करेगी।

इसलिए हमारा तीसरा और सबसे बड़ा काम यही है कि हम अगली

चढ़ाई के लिए तैयारियाँ करें। सगठन और अनुशासन–ये ही दो हमारे उद्देश्य-शब्द हैं।

अगली चढाई—अगला धावा! हमारी अगली चढ़ाई कब शुरू होगी? कुछ लोग समझते हैं कि अगामी पाँच-छः वर्षों के अन्दर जनता फिर उमड नहीं सकती। यह अन्दाजा शान्ति के जमाने के लिए ठीक हो सकता है, किन्तु लडाई के जमाने के लिए ऐसा सोचना गलत है—क्योंकि लडाई के जमाने में सबकी गति में क्षिप्रता आ जाती है। ससार भी तेजी से बदलता है इस दौरान में। ॲगरेजी फासिस्टों ने—लिलिथगो, हैलेट, स्टीवार्ट और उसके भाईबन्दों ने तथा उसके जूते चाटनेवाले हिन्दोस्तानियों ने—ऐसे झपट्टे मारे कि जनता को लेट जाने को भले ही लाचार हो जाना पड़ा हो, किन्तु सारे देश में कहीं भी जनता ने उठकर उनसे हाथ नहीं मिलाया। नाजी-नरक के ॲगरेजी रूप देश के जिन कोनों में हमें देखने को मिला, वहाँ-वहाँ की जनता असन्तोष, घृणा, क्रोध आदि प्रतिशोध की भावनासे छटपट कर रही है। ज्यों ही जनता को मालूम हो जाय कि क्रान्ति की हम एक विशाल आयोजन कर रहे हैं, त्यों ही वह हिम्मत बाँधकर खड़ी हो जायगी और हमारी योजनाओं में क्रियात्मक भाग लेने लगेगी। ज्योंही उनमें सहयोग और अनुशासनपूर्ण कार्य की भावना आई, हम धावा बोल देगे। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी हमारी मदद करेंगी। और, फिर गाँधीजी के आमरण उपवास की बात हम नहीं भूलें—वह कभी भी हमारे सामने आ सकता है, इसलिए हमें न तो ढिलाई करनी है, न हिचक में पड़ना है, न आराम से बैठना है।

हमारी अगली चढाई के सवाल के साथ क्रान्ति की अगली मजिल की रूप-रेखा नत्थी है। यह अगली मजिल होगी क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना की। क्रान्तिकारी सरकार के साथ फौज रखने और हिसा का प्रयोग करने का

सवाल भी उठ खड़ा होता है। मैं चाहता हूँ कि इस संबध में भी अपने विचार आपके सामने रख दूॅ, क्योंकि मेरे खयाल में क्रान्ति के भविष्य को यह बहुत ही प्रभावित करेगा।

सबसे पहले मैं अँगरेजो द्वारा फैलाये गये इस होहल्ला पर दो शब्द कहना चाहता हूॅ कि क्रान्ति के दरम्यान हिंसा की गई। मैं मानता हूँ कि अधिक उत्तेजना के वशीभूत कई स्थानों मे हिंसा भी हो गई; किन्तु जितनी बड़ी बगावत थी और लोगो ने जैसी व्यक्तिगत और सामूहिक अहिंसा का परिचय दिया उनको देखते हुए यह हिंसा नगन्य ही समझी जानी चाहिये। लोग यह भूल जाते हैं कि हजारों अँगरेजों या अँगरेजी सरकारके हिन्दोस्तानी अफसरों की जान कुछ दिनों तक जनता की दया पर निर्भर करती थी और उन्होंने न सिर्फ उनकी जान के प्रति बल्कि उनकी दौलत के प्रति भी अजीब दया और सयम का भाव दिखलाया। फिर जरा उन हजारो नौजवानो और बूढो की हिम्मत और बहादुरी की तारीफ कीजिये जिन्होंने दुश्मन की गोलियाँ अपनी छाती पर हँसते-हँसते ली और अपने होठो पर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की मुहर लगाते शहीद हो गये। इस दैवी साहस पर अँगरेजो ने प्रशसा के कितने शब्द कहे हैं?

किसी भी हालत में अँगरेजों के लिए यह शोभा नहीं देता कि वे दूसरे द्वारा की गई हिंसा पर उँगली उठायें। आखिर हिन्दुस्तान में उनका राज्य किस चीज पर निर्भर है? वह हिंसा पर निर्भर है, वह खून से लथपथ है, वह दिन-रात ऐसी क्रूर हिंसाएँ किया करता है जिसकी मिसाल नहीं। वह करोड़ो आदमियों को दिन-रात पीसता और उनके प्राण रक्त को चूसता है। अँगरेजों को यह पूछने का कौन-सा मुँह है कि हम आजादी की अपनी लड़ाई किस हथियार से लड़ेगे? क्या हम पूरी अहिंसा निभावें तो वे अहिंसा को अपनाने को तैयार हैं? क्या हजारों अहिंसक सत्याग्रहियों को उन्होंने

गोलियों से नहीं भून डाला है ? हम चाहे अहिंसा का प्रयोग करें या हिंसा का, अंगरेजों के पास हमारे दमन के लिए एक ही हथियार है वह है गोली, वह है लूट, वह है औरतों पर बलात्कार। इसलिए उन्हें चुप ही रहना चाहिए। हम किस तरह लड़ेंगे, किस हथियार से लड़ेंगे—इसका निर्णय करना बिलकुल हमारा काम है।

जहाँ तक अपने लोगों का सवाल है, इस पर विचार करते समय मैं आप लोगों को याद दिला देना चाहता हूँ कि गांधीजी की अहिंसा की धारणा में और कार्यसमिति और अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की धारणा में बहुत अन्तर है। गांधीजी किसी भी हालत में अहिंसा से हटने को तैयार नहीं हैं। अहिंसा उनके लिए जीवन-सिद्धान्त है, धर्म है। किन्तु, कांग्रेस के लिए ऐसी बात नहीं है। इस लड़ाई के दरम्यान कांग्रेस ने कई बार इस बात को दुहराया है कि यदि हिन्दुस्तान आजाद हो जाय या राष्ट्रीय सरकार कायम की जाय, तो वह चढ़ाई करनेवालों का सामना हथियार से करने को तैयार है। यदि हम लोग जापान और जर्मनी से हथियार लेकर लड़ने को तैयार हैं, तो फिर हम अँगरेजों से हथियार की लड़ाई क्यों न लड़ें ? इसका जवाब सिर्फ एक हो सकता है कि यदि कांग्रेस का सरकार होगी तो उसके पास फौज भी रहेगी। लेकिन, आज तो ऐसी कोई बात नहीं है। किन्तु, मान लीजिये कि एक क्रान्तिकारी सेना संगठित की गई या आज की हिंदुस्थानी सेना या उसके किसी हिस्से ने विद्रोह कर दिया, तो क्या यह असंगत नहीं होगा कि पहले हम सेना को विद्रोह करने को कहें और फिर विद्रोही सैनिकों को सलाह दें कि वे अपने हथियार नीचे डालकर अंगरेजों की गोली खुली छाती पर लें ?

मैं यह साफ कह देना चाहता हूँ कि बहादुरों की अहिंसा में मेरा पूरा विश्वास है और यदि यह बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाई जाय तो हिंसा की कोई

जरूरत नहीं रह जाती। किन्तु, जहाँ ऐसी अहिंसा का अभाव है, वहाँ शास्त्रीय सूक्ष्मताओं की आड मे प्रचारित कायरता को मैं क्रान्ति के विकास का बाधक और उसकी असफलता का कारण नही बनने दे सकता।

अपनी क्रान्ति की अन्तिम मंजिल की पूरी तस्वीर दिमाग में रख कर हमारा यह कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने को सगठित करें, आगामी युद्ध की तैयारी करें, और क्रान्ति की फौज को शिक्षित और अनुशासित बनायें। यह सब करते हुए हमें हमेशा यह याद रखना है कि सिर्फ षड्यन्त्र हमारा लक्ष्य नही है। पूरी जनता एक साथ बगावत कर दे, हमारा लक्ष्य यह है। इस लिए क्रान्ति के टेकनिकल कामों को करते हुए भी हमे जनता में व्यापक कार्य करना है, गाँवों के किसानो में और कारखानों, खानों, रेलवे और दूसरे उद्योग-धधों के मजदूरों मे हम लगातार काम करते जायँ। उनके बीच हमें लगातार प्रचार करना है और उनकी आये दिन की तकलीफों में मदद पहुँचाना है। सामयिक मांगों के आधार पर उनका संगठन करते जाना है और उनमें से अपने लिए सैनिक भी भर्ती करते जाना है। फिर, इन सैनिकों को राजनीतिक शिक्षा और टेकनिकल ज्ञान भी हमे देना है। यदि हमने शिक्षित सैनिकों की अच्छी टोलियाँ बना लीं, तो फिर एक मुट्ठी लोग वह कर दिखायेंगे कि जिसे हजारों नहीं कर सकें। हर ताल्लुका और थाने में, हर कारखाने और दूसरे औद्योगिक केन्द्र मे हमे नौजवानों की ऐसी लड़ाकू टोलियाँ चाहिये जो अगली बग़ावत के लिए दिमाग से और सामान से तैयार रहें।

फिर हमे हिन्दुस्तानी फौज और सर्विसों के बीच काम करना है। प्रचार और प्रदर्शन का काम भी है। स्कूलों मे, कालेजों मे, बाजारों मे भी काम करना है। देशी राज्यों में और हिन्दुस्थान की सरहदों पर भी हमें डटना है। यह मेरे लिए संभव नहीं कि सारी तैयारियों को हम यहाँ गिना सकें। इतना

ही कहना काफी है कि बहुत से काम करने हैं और सब आदमी के लिए काम है। हम बहुत कुछ कर रहे हैं किन्तु ज्यादा काम करने को ही धरे पड़े हैं।

सिवा नौजवानों के ये सारे काम कौन करेगा? क्या मैं आशा करूँ कि हमारे विद्यार्थी साथी जिन्होंने इस बग़ावत मे इतना किया है, वे इस काम मे भी डट जायेंगे और अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति करेंगे? इसका जवाब हम उनसे चाहते हैं।

मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि तैयारी का यह मतलब कभी नहीं है कि अबतक जो काम हो रहे हैं, वे रोक दिये जायँ! नही, हाथापाई, सरहदी कार्रवाइयाँ, छोटी-छोटी मुठभेड़—ये सब तो चलते ही रहना चाहिये। ये सब चढाई की तैयारियों में ही शुमार किये जा सकते हैं।

जनता में पूरा विश्वास रख कर और अपने उद्देश्य में पूरी भक्ति रखते हुए हमें आगे बढते जाना है। हमारे कदम मजबूती से उठें, हमारा हृदय चचल न हो, और हमारी आँखें साफ देखें। हिन्दुस्थान की आजादी का सूरज क्षितिज पर उग चुका है, हमारी शकायें, हमारे आपसी झगड़े, हमारी निष्क्रियता, हमारी विश्वासहीनता बादल बन कर कहीं उस सूरज को ढँक न लें और कही हम फिर अपने ही पैदा किये हुए अधकार मे भटकने न लगें।

अन्त मे, साथियो, मुझे यह कहते बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि मैं एक बार फिर आपलोगों के बीच आकर अपनी सेवायें आपको समर्पित करने का अभिमान अनुभव कर रहा हूँ। आपकी सेवायें करते हुए अपने नेता को 'करो-या-मरो' का नारा मेरा ध्रुवतारा होगा और आपकी आज्ञा का पालन ही मेरा एकमात्र आनन्द!

हिन्दुस्तान के किसी कोने से —जयप्रकाश नारायण

आजादी के सैनिकों के नाम

दूसरा पत्र

साथियो,

आज से कई महीने पहिले, दुश्मन के कैदखाने से निकल भागने के बाद ही, मैंने अपनी राष्ट्रीय क्रांति के संबध में अपने विचार तथा इस सिलसिले में अपने कुछ सुझाव आपके सामने रखे थे तव से छः महीने गुजर गये और वहुत कुछ उलटफेर भी हुए अतः मैं समझता हूँ कि पिछले महीनों पर गौर कर लेना और अपनी लड़ाई की मौजूदा स्थिति को समझ लेना हमारे लिए अच्छा होगा।

(१)

अपनी क्रांति की प्रगति के पिछले आधे वर्ष के साथ निकट सम्पर्क में रहने के वाद मैं देखता हूँ कि शुरू मे जो मेरे ख्याल थे, उन्हें वदलने की कोई वजह नही। साथ ही अपनी पिछली चिट्ठी में मैंने जो विश्लेषण किया था उसमें भी, एक वात को छोड़ कर जो वहुत मौलिक न होते हुए भी महत्वपूर्ण है, किसी विशेष संशोधन की जरूरत मैं नहीं समझता।

पिछले दिसम्वर में मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कुछ ही महीनों में एक-

बार फिर जन-विप्लव की संभावना है। यह जन-विप्लव अभी तक नहीं हो सका है और, मानना पड़ेगा कि, निकट भविष्य में होता नहीं नजर आता। अब सवाल यह है कि इस बात का हमारी वर्त्तमान नीति और हमारी लड़ाई के ऊपर क्या असर पड़ता है। इस सवाल के जवाब के लिए जरूरी है कि हम जनता के अब तक दोबारा न उभड सकने की थोड़ी तह में जायँ।

मैं समझता हूँ कि इससे यह नतीजा निकालना गलत होगा कि जनता की आजादी की भावना को कुचल डाला गया या उनमें लड़ाई का कोई दम ही नही रह गया। लोगों में अंग्रेजी राज के लिये उतनी नफरत कभी न थी, जितनी आज और वे उससे छुटकारा पाने के लिए आज-जैसे बेचैन और कटिबद्ध कभी न थे। इसमें शक नही कि आज लोगो मे कुछ कमजोरी भी नजर आती है लेकिन वह यदि पूर्णतः नहीं, तो मुख्यतः शहरों में और समाज के ऊँची सतह के लोगों मे ही है। देहातो मे जहाँ दमन का नगा नाच हुआ था, लोग झुकने के बजाय बदला लेने की उत्कट इच्छा से जल रहे हैं। उपयुक्त मौका मिलते ही वे उठ खड़े होंगे और ब्रिटिश शासन की धज्जियाँ उड़ाके छोड़ेंगे। जिन गावों के लोग ब्रिटिश गुडाशाही के शिकार होने से किसी तरह बच गये थे, वे ही अब भी कभी-कभी डर के लक्षण दिखलाते हैं और किसी न किसी तरह जोखिम से बचना चाहते हैं। लेकिन मेरा विश्वास है कि जब घड़ी आ पहुँचेगी तब इन लोगों को भी अपने दूसरे भाइयों के साथ-साथ आगे बढे चलने के लिए तैयार किया जा सकेगा। यह बात सही है कि वे विद्यार्थी जिन्होंने पिछले विप्लव में अहम भाग लिया था, फिर से अपने स्कूलो और कॉलेजों मे चले गये हैं। लेकिन जहाँ तक मैं समझ सका हूँ वे बिल्कुल हतोत्साह नही हुए हैं और वे हमें

आनेवाले विप्लव की अगली कतार में तैयार मिलेंगे। खाद्य-संकट की नित्य बढती हुई उलझनें, जीवन-निर्वाह की बढती हुई कठिनाइयाँ और मजदूरों के पैसों का रोज गिरता हुआ मोल, क्या ये सब सरकार के युद्ध-प्रयत्नों के लिए मजदूरो के दिल मे हमदर्दी पैदा करेंगे ? यदि और जब दूसरी खुली बगावत हुई तो उसमें मजदूरों का हिस्सा पिछले अगस्त-सितम्बर से कम नही, बल्कि अधिक ही रहेगा। पुलीस विभाग के निम्न कर्मचारी ऊपर से तो मुजरिमाना हुकूम के प्रति फिर से वफादार बन गये मालूम होते हैं जरूर, लेकिन वे, उससे सतुष्ट होने की बात तो अलग रहे, उल्टे अगले जन-सघर्ष के मौके पर १९४२ की बनिस्वत कहीं कम विश्वास-पात्र साबित होंगे। लड़ाई के दौरान के साथ-साथ हिन्दुस्तानी फौज के सिपाहियो और अफसरो का असतोष घटने के बजाय और बढ गया है और कमान्डर-इन-चीफ की, उनके वेतन इत्यादि के सवन्ध की, नयी स्कीम भी शायद उसे कम न कर पावेगी।

अब यह पूछा जा सकता है कि अगर ऊपर दिया गया चित्र सही है, तो फिर दूसरी बगावत क्यो नही हुई और इसके निकट भविष्य में हो सकने की संभावना क्यों नहीं है ? मेरे ख्याल से इसका कारण गूढ मनोवैज्ञानिक तत्वो में निहित है। अक्सर इन तत्वों के बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती यद्यपि इनको सही तौर पर समझना नेताओं का कर्त्तव्य है। इस सवन्ध की अनेक आवश्यकताओं में से एक है जनता के दिल में यह विश्वास पैदा हो जाना कि शासकों का दम उखड गया है और वे अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। गत वर्ष अगस्त के पूर्व के महीनों में विश्व-युद्ध की ऐसी अवस्था हो गई थी कि भारतीय जनता को यह निश्चय हो गया था कि ब्रिटिश साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा है और उनके एक धक्का मात्र से वह ढह पड़ेगा। वर्त्तमान में और इसके कुछ पहिले लोगों के दिमाग में या तो इस

धारणा का अभाव है या वह इतनी क्षीण हो गई है कि जोश और उत्साह की जगह झिझक पैदा हो गई है। लक्षणों से ऐसा मालूम पड़ता है कि अमेरिका ने डूबते हुए ब्रिटिश साम्राज्य को बचाकर उसके टूटे हुए अगो को जोड़ कर उठाने का जिम्मा लिया है। लेकिन सच तो यह है कि यह अभागा साम्राज्य पूर्ववत् विनाश की ओर बढता जा रहा है और तुर्रा यह कि इसमें अमेरिकन लोग भी हाथ बँटाये बिना न रहेंगे, क्योंकि इसके जिन इलाकों को वे दुश्मन के हाथों से "मुक्त करेंगे" उन पर वे अपना अव्वल हक जमाये बिना न रहेंगे। लेकिन यह बात साधारण दृष्टि मे नहीं आती और इसीलिए जनता के दिल में ठंढक आ गई है।

यह झिझक दो हालतों में मिट सकती है: या तो यदि अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में सुधार हो, अर्थात् वह ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिकूल हो, अथवा एक सगठित क्रातिकारी ताकत दुश्मन पर लगातार दृढ प्रहार करके जनता के मन में यह विश्वास पैदा कर दे कि अपनी विशाल सेना के बावजूद ब्रिटिश साम्राज्य विद्रोही भारत के मुकाबिले असमर्थ है और साथ ही उनमे इस आशा का सचार कर दे कि आनेवाली क्राति का नेतृत्व मजबूत हाथो में होगा और उसके सफल होने की पूरी उम्मीद है।

पिछले साल के अगस्त मे अनुकूल मानसिक वातावरण पैदा करने में सिर्फ लडाई की परिस्थिति ने ही नही मदद पहुँचाई, बल्कि इस बात ने भी कि कांग्रेस पूरी ताकत से देश का नेतृत्व कर रही थी। जनता को अपने नेताओ पर भरोसा था और इसलिए जब उनकी पुकार हुई तब वह पूरे विश्वास और उत्साह के साथ मैदान में आ कूदी। आज ये नेता जेलों में बन्द हैं और इसलिए जनता की नजर में लाचार दीख रहे हैं। इस तरह विद्रोह के लिए अनुकूल सार्वजनिक मानसिक वायुमडल पैदा करने का दूसरा कारण भी आज मौजूद नही है।

लेकिन, यद्यपि हम ऊपर बतलाई हुई पहली हालत तो पैदा करने में असमर्थ हैं, फिर भी दूसरी हालत के सम्बन्ध में तो हम स्थिति मे सुधार कर ही सकते हैं और हमें यह करना चाहिये ही। इस झूठे बहाने की ओट में कि जनता आगे नहीं बढना चाहती, वह हमारा साथ नही देती, युद्ध-क्षेत्र से दूर हटने की प्रवृत्ति इधर हमारे सैनिकों में बढ रही है। यह तो एक तरह से पराजय की मनोवृत्ति है। जब तक जनता को आगे बढा सकने का दम हम में नहीं होगा, वह कभी आगे नहीं बढ सकती। जब तक हम अपनी कार्रवाइयों से, अपने संगठन की ताकत और कुशलता से जनता का विश्वास नहीं हासिल कर सकेंगे, तब तक वह हमारा साथ नही दे सकती। जनता ने तो एक वार अपना फर्ज अदा किया ही, चूक हमारी ही ओर से रही। वह फिर अपना कर्त्तव्य पूरा करेगी बशर्ते कि हम भी अपने कर्त्तव्य से न चूकें। पिछले वर्ष के अगस्त में जनता की आँखों के आगे कांग्रेस की ठोस ताकत और महात्मा गांधी का नेतृत्व था। आज यदि लोग यह समझने को मजबूर हों कि वे अकेले रह गये हैं और देश में कोई भी ऐसी सगठित तथा अपराजित शक्ति नही रह गई है जो लडाई को जारी रख सके तो ऐसी हालत में वे स्वभावत· ही निराशा मे डूब जावेंगे और भाग्य के भरोसे बैठ जायेंगे।

अत· वर्त्तमान स्थिति मे उन लोगों को आगे आना चाहिये, जिन्होने क्रांति के सिपाहियों में अपने नाम दर्ज कराये हैं और जो आजादी की लड़ाई से किसी भी हालत में मुँह मोडने वाले नहीं। उन्हें अपने सगठन को मजबूत बनाकर दुश्मन से अनवरत लड़ाई जारी रखनी है। कैसा भी कष्ट, कितना भी बलिदान हमारे लिए थोड़ा ही है। कोई विवाद, कोई प्रलोभन, किसी तरह की झूठी आशा हमें पथ से विचलित न कर पावे! लड़ाई के सभी रास्ते हमारे सामने खुले पड़े हैं। हमारे धर्म और मत चाहे जो भी हों, हमारे हथियार और तरीके चाहे जैसे भी हों, हमारा रास्ता स्पष्ट है—हमें लड़ाई को जारी

रखना है। लडाई चाहे एक साल चले या दस साल, हमें इसकी परवाह नहीं। अमेरिका को अपनी आजादी के लिए सात साल तक लडना पडा था, चीन के स्वतन्त्रता-सग्राम ने सातवे वर्ष में प्रवेश किया है। हमारी लडाई का तो अभी पहिला ही साल खतम हुआ है। अमेरिका और चीन की लड़ाइयो में ऐसे मौके आये थे, जब मालूम पड़ता था कि कोई आशा शेष नहीं रह गई, लेकिन फिर भी वहाँ के लोग और उनके नेता हिम्मत नहीं हारे। अन्त में अमेरिका की विजय होकर रही और चीन की भी होकर रहेगी। हमारी लडाई की वर्त्तमान स्थिति तो निराशा की घड़ी से कोसों दूर है, फिर भी पस्त-हिम्मतो और बुज-दिलो ने आवाज उठाने की हिम्मत दिखलाना शुरू कर दिया है। ऐसे लोग देश के दुश्मन हैं और इन्हें अपने रास्ते से दूर फेककर हमे आगे बढते जाना है। हमें इससे भी बुरे दिन देखने पड सकते हैं। लेकिन कष्टों और मुसीबतों से हमें घबडाकर पीछे नहीं हटना है, हममें तो इससे और दृढता आनी चाहिये। तभी हम जनता के विश्वास के पात्र हो सकेंगे और तभी लोग हमारा साथ दे सकेंगे।

(२)

पिछले कुछ महीनो से, खासकर गाधी जी और बड़े लाट के पत्र-व्यवहार के प्रकाशित होने के बाद, हमारे साथियो मे हिंसा और अहिंसा को लेकर एक विवाद उठ खड़ा हुआ है। इस सम्बन्ध में मैं अपने पहले पत्र के जरिए अपने विचार स्पष्ट रूप से आपके सामने रख चुका हूँ और मै आज भी उन पर कायम हूँ। मैंने उसमें जो कुछ कहा उसे यहाँ दोहराने की कोई जरूरत नहीं, फिर भी इस विवाद के बारे में दो-एक शब्द कह देना चाहता हूँ। मेरे ख्याल मे इस विषय पर इस समय किसी तरह का विवाद उठाना बेमतलब है। आजादी का हर सैनिक अपना तरीका खुद चुन लेने के लिए स्वतन्त्र है। जिनके तरीके एक-से हैं, उन्हे मिलकर पूरे अनुशासन मे रहकर काम करना चाहिये।

और, जो मित्र भिन्न रास्ते पर चलना चाहते हैं उन्हें कम-से-कम इतना तो ख्याल रखना ही चाहिये कि वे एक-दूसरे के लिए बाधक न हों और व्यर्थ के आपसी झगड़ों में अपनी शक्ति बरबाद न करें। "करो या मरो" के मंत्र को लेकर जहाँ आगे बढना है, वहाँ आपसी झगड़े की कोई गुंजायश ही कहाँ है! जो अहिंसा में विश्वास रखते हैं, उन्हे हिंसावादियों से यह डर हो सकता है कि वे गाधीजी के मर्यादा को धक्का पहुंचावेंगे। लेकिन यह डर निर्मूल है। अहिंसा में गाधी जी की आस्था इतनी पूर्ण है और इस सम्बन्ध में उनकी स्थिति इतनी स्पष्ट है कि लाखों चर्चिल और एमरी उन्हे बदनाम नही कर सकते। हमें यह भी याद रखना चाहिये कि हम चाहे जो भी करें, चाहे हम जितनी भी कोशिश क्यों न करें, हम अंग्रेज राजनीतिज्ञों को, चाहे वे टोरी हो या मजदूर दल के, झूठ बोलने से कभी रोक नहीं सकते, क्योंकि झूठ हो उनके साम्राज्य का एक मुख्य स्तंभ है। यह भी याद रहे कि अगर हिन्दुस्तान में हिंसा है भी, तो उसके लिये खुद अंग्रेजी सरकार दोषी है।

गांधी-वायसराय-पत्र-व्यवहार के प्रकाशन के बाद से एक यह भी विवाद उठ खड़ा हुआ है कि आज की मौजूदा लडाई काग्रेस ने छेड़ी है और इसे 'काग्रेस की लडाई' कहा जा सकता है या नहीं। कुछ लोग; जो यह कहने की जुर्रत करते हैं कि ऑल इंडिया कांग्रेस कमिटी के मुट्ठी-भर बचे-खुचे मेम्बर बैठ कर बम्बई प्रस्ताव को रद्द कर दें, वे तो यहाँ तक दावा करते हैं कि चूँकि लड़ाई की घोषणा कर सकने के पहले ही गाधी जी तथा दूसरे काग्रेस नेता गिरफ्तार कर लिये गये, इसलिये यह लड़ाई कतई काग्रेस की लड़ाई नहीं है। इस तर्क का तो यह मतलब हुआ कि यदि अगरेज नेताओं को ऐन मौके पर गिरफ्तार कर लिया करें, तो कभी कोई लड़ाई बाजाब्ता काग्रेस की ओर से छेड़ी ही नहीं जा सकती। ऐसी अवस्था मे तो कांग्रेस सिर्फ एक मखौल की चीज होकर रह जायेगी। जो मौजूदा लड़ाई को काग्रेस के नाम और

मुहर से वचित रखना चाहते हैं, उनके विचार से अगस्त मे नेताओ की गिरफ्तारी की कायरतापूर्ण कार्रवाई के बाद देश को क्या करना चाहिये था ? उनकी समझ के अनुसार महात्मा गाधी और वर्किंग कमिटी के लोग अपनी गिरफ्तारी की अवस्था में लोगों से क्या उमीद रखते थे ? क्या इन रण-छोड़ो को इससे खुशी होती अगर नेताओ की गिरफ्तारी की कोई प्रतिक्रिया न हुई होती और देश ने साम्राज्यवादी लुटेरों के आगे चुपचाप गर्दन झुका ली होती ? क्या वे यह चाहते हैं कि सिर्फ विरोध सभाएँ होती जिनमे नेताओं की रिहाई के प्रस्ताव पास होते (जैसा कि अब तक के क्रातिकारी कहे जानेवाले लोगों का विचार है) और इतने पर भी उन्हे न छोडा जाता तो फिर और मीटिंगें होतीं और यह सिलासिला तब तक जारी रहता कि जब तक उन सभाओ में आनेवाले ऊबकर उनमे आना बन्द न कर देते और इतना कर करा के ये "विरोधवादी" भलेमानस आत्मसतोष के साथ चुप बैठ जाते। यदि ऐसा ही था तो बम्बई अ० भा० का० क०/के उस बहादुराना प्रस्ताव का और उसमें देश के महापुरुषो के मुँह से निकले हुए उन बहादुराना शब्दो का क्या तथ्य रह जाता है ? लेकिन यदि यह सही नही है और जनता से यह उमीद की जाती थी कि वह अगरेजी हमले के जबाब में उठ खडी हो, यदि वास्तव मे नेताओ की गिरफ्तारी जन-सघर्ष की पूर्व सूचना थी तो फिर मौजूदा लडाई को काग्रसी और बेजाब्ता बतलाकर उसकी निन्दा करना कहाँ की ईमानदारी है ? लड़ाई के रास्ते चलने वाले के लिए दुश्मन से यह उम्मीद रखना कि वह शान्तिकाल के विधान के अनुसार सभी जाब्ते की कार्रवाइयो को पूरी करने के लिए मौका देगा— मूर्खता नही तो और क्या है ? इसलिए मेरे ख्याल से यह दिखलाने की कोशिश करना कि हमारी राष्ट्रीय लडाई जो १९४२ के ९ अगस्त मे छिड़ी, काग्रेस के जाब्ते और मुहर से वचित है— नीचता और कायरता है।

हाँ, अलबत्ता यह दूसरी बात है कि मौजूदा लड़ाई के प्रोग्राम को गांधीजी ने या वर्किंग कमिटी ने मजूर किया है या नहीं? यह बात वस्तु जगत की है, न कि सिद्धान्तों और राजनैतिक आचारों की। और इसकी वास्तविकता के बारे में कोई विवाद नहीं है। जाहिर है कि वर्किंग कमिटी ने कोई कार्य-क्रम तैयार न करके सिर्फ लडाई का नेतृत्व गाधीजी को सौंपा था। गांधीजी के पास भी कोई कार्यक्रम नहीं था। उन्होंने अपने भाषण में अ० भा० कां० क० के सामने उसकी रूपरेखा मात्र रखी थी। उनका यह नक्शा और हरिजन के लेख ही जनता के सामने रह गये थे और इन्हीं के आधार पर उन बचे-खुचे कांग्रेस-कर्मियों ने व्यापक कार्यक्रम तैयार किया, जिन्होंने झटपट बम्बई में इकट्ठे होकर उस गैर-कानूनी कांग्रेस के संगठन की नींव रखी जो तब से काम कर रही है। वही प्रोग्राम आज भी हमारे राष्ट्रीय युद्ध का आधार है। इसमें न तो हत्या के लिए कही गुंजायश है और न किसी के शरीर पर चोट पहुँचाने की। अगर हिन्दुस्तान में हत्यायें हुई—और बेशक हुईं—तो उनमे से ९९ फीसदी ब्रिटिश फैसिस्ट गुंडो के द्वारा और केवल १ फीसदी क्रोधित और क्षुब्ध जनता के द्वारा। हर अहिंसात्मक तरीके से अंग्रेजी राज के लिए ज़िच पैदा करना, उसे पंगु बना कर उखाड़ फेंकना ही उस प्रोग्राम का मूल मंत्र है और "अहिंसा के दायरे में सब कुछ कर सकते हो" यही है हमारा ध्रुव तारा। यद्यपि यह सच है कि कुछ लोग अहिंसा के नाम पर इस प्रोग्राम के कुछ अंशों को अब अस्वीकार कर रहे हैं, जिन्हें उन्होंने पहिले खुद मंजूर किया था और श्री किशोरी लाल मशरूवाला जैसे अहिंसा के आचार्य का दिल भी जिनकी निन्दा करने या जनता को उनपर अमल करने से मना करने को तैयार न हो सका था, तो भी इसमें शक की कोई गुंजायश नहीं कि जिस प्रोग्राम पर १९४२ के अगस्त से अब तक कांग्रेस संस्थाओं ने अमल किया है उसका बौद्धिक आधार अहिंसा है—उस अर्थ में अहिंसा जैसा, उसके अधिकारी

पुरुषों ने इस अर्से में वताया है। जिन लोगों ने यह प्रोग्राम वनाया वे इसकी जिम्मेवारी से भागना नही चाहते और अवसर आने पर वे बेशक कांग्रेस के मंच के सामने खडे होकर "अत्यंत नाजुक मौके पर अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए" प्रशसापत्र प्राप्त करेंगे।

चाहे और जो हो लेकिन अगस्त प्रोग्राम को गाधीजी के मत्थे मढना एक ऐसा फरेब है जो सिर्फ अंग्रेज शासक ही कर सकते हैं।

३

पिछले दो महीनों से एक ऐसी बीमारी के लक्षण नजर आ रहे हैं जो उपरोक्त विवादों से भी ज्यादा खतरनाक हैं। हमारी लड़ाई के छिडने के समय से ही कुछ हिन्दुस्तानियो का एक गिरोह रहा है जिन्हे बम्बई (अ० भा० कां० क०) की कार्रवाई नापसंद रही है और जो अपने पुराने ढग के अनुसार "जिच को दूर करने" की कोशिश करते रहे हैं। मेरे खयाल से कांग्रेस-जन को न तो कभी उनमें कोई दिलचस्पी रही है और न आज होने की जरूरत है। हर वार जव हिन्दुस्तान अपनी आजादी के लिए लड़ाई छेड़ता है तब यह गिरोह "जिच (deadlock) को दूर करने के लिए" निकल पड़ता है। श्री राजाजी, भूला भाई और मशी जिनकी उपयुक्त जगह आजादी के सैनिकों के बीच थी, आज स्वतत्रता आंदोलन को व्यर्थ करानेवालों की जमात मे जा मिले हैं, इस वात से स्थिति में कोई अंतर नहीं आना चाहिये।

लेकिन, जैसे जैसे समय वीतता जाता है और हमारे साथी जेलों से छूट कर वाहर निकलते हैं उनमे से कुछ—यद्यपि इनकी सख्या वहुत थोड़ी है—थकान और कमजोरी दिखाते हैं। आज उन्होंने भी "जिच को हटाओ" का नारा लगाना शुरु कर दिया है और इसके लिए तरह-तरह के सुझाव भी उन्होने रखे हैं। जव कि हमारे सेनानायक लडाई के अगले मोर्चे पर हैं, तव इन कांग्रेसजनों का पीछे कदम हटाने की नीति का जन्म देना महान्

विश्वासघात है। अनुशासन की असली जाँच तो लड़ाई के मैदान में ही-होती है। जब तक कोई विषय विचाराधीन है तब तक उसकी आलोचना करना या उससे मतभेद जाहिर करना जनतत्र प्रणाली में जायज है। लेकिन, असल में और खास कर लड़ाई के दौरान मे सख्त से सख्त अनुशासन होना जरूरी है। आज हमारे अनुशासन का यही तकाजा है कि कांग्रेसजन लड़ाई के मोर्चे पर डटे रहे और पीछे हटने या आत्मसमर्पण का खयाल भी मन मे न लावें। इन विषयों पर विचार करना सेनापतियों का काम है। महात्माजी और मौलाना आजाद जेल में हैं, लेकिन लडाई या सुलह की कुंजी आज भी उन्ही के हाथों में है, जैसा कि किसी लडाई के उभय पक्ष के नेताओ के हाथो में सदा से रहती आई है। महात्मा जी चाहे जब भी आत्मसमर्पण करके आसानी से "जिच को हटा सकते थे।" लेकिन उन्होंने ऐसा करना पसद नही किया। उसका यही मतलब है कि वे चाहते हैं कि हमारी लडाई जारी रहे या इसको बुरे से बुरे रूप मे लें तो जिच बनी रहे।

अब हम इस जिच के मामले पर जरा ज्यादा डूब कर सोचें। यह तो हर किसी को मानना होगा कि जिच दूर करना ही ध्येय नहीं है। यह बे-मतलब होगा अगर यह हमारे राष्ट्रीय ध्येय को आगे नहीं बढाता, हमें अपने उस लक्ष्य की ओर एक कदम आगे नहीं बढाता जिसे हमने अपने आगे रखा है और जिससे हम डिग नहीं सकते।

इस बात को मद्दे नजर रखते हुए अब हम जरा जिच को दूर करने के तरीकों पर भी विचार कर लें। इसकी तीन सभावनाएँ हो सकती हैं: (१) या तो हम अंग्रेजी सरकार को अपनी माँगों को मान लेने को मजबूर करें, (२) यदि हम आत्मसमर्पण कर दें, (३) या हिन्दुस्तान और इंगलैंड में सम-झौता हो जाय। पहिली संभावना का मतलब है हिन्दुस्तान की पूरी जीत—और वह तो लडाई के तरीके से ही हो सकती है। अब जो लोग जीत की उमीद

से बैठे हैं और मौजूदा जिच से ऊब कर असेम्बलियों और कौंसिलों के नाटक मे भाग ले सकने को ललक रहे हैं, उनके सामने आत्मसमर्पण का रास्ता है। लेकिन, इससे तो काग्रेस बिल्कुल मुर्दा हो जायेगी और देश की प्रतिरोध की भावना कम-से-कम एक पुश्त तक बुझ जायेगी। इसका अर्थ होगा कि ब्रिटेन की पूर्ण विजय।

अब हमारे सामने रह जाती है समझौते की सभावना, जिसका ऊपरी आकर्षण बहुत-से ईमानदार लोगों को भी इसके जाल की ओर खीचता है। समझौते मे दोनो पक्षो को कुछ लेना और कुछ छोड़ना पड़ता है। ऐसी हालत में काग्रेस को कम से-कम फायदा यह हो सकता है कि जो राष्ट्रीय लड़ाई के सिलसिले मे कैद मे है उन्हे छोड़ दिया जाय और कांग्रेस तथा उसकी सहायक सस्थाओ को फिर से कानूनी करार दिया जाय। ब्रिटेन को इससे जो कम-से-कम फायदा हो सकता है वह है उस भयकर बोझ से छुटकारा पा जाना, जो अग्रेजी राज को हमारी लड़ाई के चलते उठाना पड़ रहा है। मेरा दृढ विश्वास है कि ऐसे समझौते में ब्रिटेन को फायदा ही फायदा है और काग्रेस का भारी नुकसान। अब हम जरा इस तरह के समझौते के लाजिमी अर्थों पर भी विचार करें। युद्ध के सम्बन्ध मे काग्रेस की क्या स्थिति होगी? गत वर्ष के अगस्त के बाद ऐसी कोई बात नही हुई जिससे कांग्रेस युद्ध के बारे मे अपनी राय बदले या वह उसमें शरीक हो जब तक कि वह अपने को भारतीय जनता की ओर से उनके हित के लिये लड़ाई चला सकने की स्थिति में न पावे। उलटे पिछले साल भर मे ऐसे भयकर काड हुए हैं जिनके चलते कोई खुददार कांग्रेसी किसी हैसियत से किसी रूप में भी उन गुडों और हत्यारो के साथ सहयोग नही कर सकता जो आज हिन्दुस्तान पर शासन कर रहे हैं और जिन्होने हमारे देश को नरक की भट्ठी में जलाया है—जिस नरक को लपटें आज तक भी बुझ नहीं पाती हैं। मैं इसकी कल्पना भी नही

कर सकता कि काग्रेसजन उन लोगों के सामने अपने हाथ कभी कैसे बढ़ा सकते हैं जिन्होंने हमारे भाइयों और बहिनों के खून से अपने हाथ रंगे, घर ढाहे और जलाये, बलात्कार किये तथा कोमल बालकों पर जेल की काल-कोठरियों के अन्दर भयकर अत्याचार किये हैं। उपरोक्त कारण से और इस कारण से भी कि कांग्रेस बिना पूरे अधिकार प्राप्त किये पद-ग्रहण नहीं कर सकती, मैं तो यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि कांग्रेस फिर से १९३५ के विधान को अमल में लाना कबूल करेगी। काग्रेस ने एकबार इस विधान को तोड़ने का ध्येय लेकर इसको आजमा चुकी है और इस प्रयत्न में खुद ही प्रायः टूटने के करीब पहुँच चुकी है। युद्ध ने इस मनहूस फरेब को अच्छी तरह तोड-फोड़ दिया है और जैसा कि मौलवी फजलुल हक ने बंगाल असेम्बली में अपने उस महत्वपूर्ण वक्तव्य में बतलाया है, नौकरशाही शासन के भद्दे नंगापन पर पर्दा डालने को प्रातीय स्वतन्त्रता की एक धज्जी भी शेष न रह गई। (सरसरी तौर पर मैं यहाँ यह कह दूँ कि इस योग्यता से प्रांतीय स्वतन्त्रता की पोल खोलने के बाद भी मौ० हक और बंगाल एसेम्बली के अन्य राष्ट्रवादी मेम्बर जिनमें वे लोग भी शामिल हैं जो किसी न किसी काग्रेसी झडे को माननेवाले हैं, अभी भी निरर्थक वैधानिकता के मोह में फँसे हुए हैं। मेरी समझ से उस महान वक्तव्य के बाद उनके सामने एक ही मनुष्योचित और देशभक्तिपूर्ण रास्ता रह गया है और वह है मौजूदा एसेम्बली को स्थायी रूप से छोड़ कर गैर-वैधानिक तरीकों से राक्षसी हर्बर्ट-अमलशाही को उखाड़ फेंकने की कोशिश करना।) अब हम अपने असली विषय पर आ जायँ। प्रातीय स्वराज्य की असलियत जानने के बाद कांग्रेस से यह उमीद करना तो निरा राजनैतिक पागलपन होगा कि वह फिर प्रांतों में अपने मन्त्रियों को भेज कर इस (मुर्दा) फरेब को फिर से जिन्दा करेगी। १९३५ का विधान मर चुका, अब हमें इसके पास तक फटकना नहीं है, इस

बात को हम खूब समझ लें। साथ ही हिन्दुस्तान अब उन जालिमों के साथ अमन से नहीं रह सकता जिन्होंने उसके साथ अवर्णनीय दुर्व्यवहार और पाशविक अत्याचार किये हैं, हम इसे भी गाठ बाध ले।

इस तरह के समझौते से काग्रेस की स्थिति बडे सकट में पड जायेगी। काग्रेस को "कानूनी स्वतन्त्रता" मिल तो जायेगी, लेकिन फिर भी उसे साम्राज्यवादी युद्ध और उन सभी आर्थिक तथा राजनैतिक कार्रवाइयों का विरोध करना होगा जो लुटेरी सरकार ब्रिटिश पूंजीवाद के स्वार्थ के लिए युद्ध को चालू करने के लिए करेगी? वह देश के शासन में हाथ बॅटाने में या आर्डिनेन्स—यदि उसके लिए उपयुक्त शब्द का प्रयोग करें तो, फैसिस्ट शासन को थोडा से थोड़ा भी जनतंत्रात्मक रूप दे सकने में एकदम असमर्थ रहेगी। वह जनता के कष्टों को दूर नहीं कर पाएगी, भूखों को अन्न, नंगों को वस्त्र, आश्रयहीनों को आश्रय दे नहीं सकेगी। संक्षेप मे यों कहे कि अगर कांग्रेस अपने सिद्धान्तों पर ईमानदारी से कायम रही तो उसे हर कदम पर लुटेरे ब्रिटिश अधिकारियों का विरोध करना होगा और फिर वह अपने को जेलखाने की सीधी और छोटी सड़क पर पावेगी और इस तरह "जिच का हल होना" व्यर्थ हो जायगा।

इसके अलावा काग्रेस को एक और भी भारी घाटा होगा। ज्योंही महात्मा गाँधी, मौ० आजाद, पडित नेहरू और दूसरे नेता जेल से बाहर आ जायेंगे, त्यो ही दुनिया हिन्दुस्तान को भूल जायेगी। ससार के भाग्य का सूत्र आज जिन लोगों के हाथ मे है उनके दिल से जिचका असर अचानक दूर हो जायगा और चर्चिलो तथा एमरियो को सुख की नींद सोने का मौका मिल जायेगा। और, वे सोचेंगे कि चलो, कम-से-कम कुछ दिनो के लिए तो हिन्दुस्तान का मसला हल हो ही गया और जब तक पगला गाँधी अपनी भेड़ो को फिर जेल की ओर हाँक लाने की बात न सोचे, तब तक के लिए

तो फुर्सत मिल ही गई। जेल से छूटकर पंडित नेहरू वक्तव्य जारी करेंगे, जिन्हें अमेरिकन संवाददाता बड़े चाव से अपने पत्रों में भेजेंगे, लेकिन वे वक्तव्य सुन्दर और मार्मिक होते हुए भी बेजान होंगे। इस तरह सुन्दर वक्तव्य से बड़े-बड़े देशों के राजदूतों को मुग्ध करनेवाले नेहरू की अपेक्षा बन्दी नेहरू रूजवेल्टों और चर्चिलों के लिये कहीं बड़ी समस्या हैं।

कहा जा सकता है कि ऊपर जो चित्र खींचा गया है, समझौते का आधार कांग्रेस के लिये उससे ज्यादा लाभदायक भी हो सकता है। अब जरा देखें कि वह आधार क्या हो सकता है। ब्रिटेन क्रिप्स योजना से आगे नहीं जाना चाहता—जिसका अर्थ है लड़ाई के दौरान में कोई अधिकार मिलने को नहीं तथा लड़ाई के बाद के लिए झूठा वादा। कांग्रेस ने क्रिप्स योजना को ठुकरा कर ठीक ही किया और कोई भी होश वाला आदमी यह उमीद नहीं कर सकता कि वह आज उसे फिर कबूल कर ले। कांग्रेस की कम-से-कम माँगें, जिनसे मैं सहमत नहीं हूँ और मुझे इसमें शक है कि आज वर्किंग कमिटी भी उस पर कायम रहेगी, अप्रिल १९४२ में शैतान के वकील (क्रिप्स) के आगे रख दी गई थीं। अंग्रेजी सरकार ने उन्हें नामजूर कर दिया। अगर थोड़ी देर के लिए मान ले कि कांग्रेस उन्हीं मांगों से संतुष्ट हो जायेगी तो जो लोग जिच हटाने के लिए इतने बेचैन हैं वे इन मांगों को ब्रिटिश सरकार से कैसे मनवावेंगे? क्या लड़ाई के सिवाय कोई दूसरा जरिया उनके कामयाब होने का है? अतः हम फिर जिच ही पर आ अॅटकते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि जिच अनिवार्य है। कांग्रेस की शर्तों को पूरी करवाये बगैर किसी और तरीके से इसका हल करना देश के लिए घातक साबित होगा। लेकिन इसका यह मतलब हर्गिज नहीं है कि हम निश्चिन्त बैठे हैं। हमारी लड़ाई चालू है, हमारा प्रतिरोध जारी है। हम राष्ट्रीय तथा

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के हर उलट-फेर से फायदा उठाने के लिए तैयार बैठे हैं। ब्रिटिश शासन के प्रति हमारा विरोध मात्र ही, सिर्फ यही बात कि हिन्दुस्तान के सर्वश्रेष्ठ लोग जेल में बन्द हैं, इस बात की गारटी है कि भारत पराजित नहीं हो सका है, कि प्रतिरोध की भावना कुचली नहीं जा सकी है; कि हिन्दुस्तान का मसला एक दुनिया का मसला है; कि एशिया और अफ्रिका की गुलाम कौमों को हिन्दुस्तान के संघर्ष से बल और प्रोत्साहन मिलता है; कि ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रो के मजदूरों को बराबर यह चेतावनी मिल रही है कि उन्हे किस तरह के जनतत्र के लिए लड़ना पड़ रहा है; कि युद्ध के बाद एक बेहतर दुनिया की सभावना ज्यादा नजदीक आ रही है और हिन्दुस्तान ससार के उन जनसाधारण का नेतृत्व प्राप्त करता है जिनका युद्ध के दोनो पक्षो के बाहर एक तीसरा पक्ष है और जिन्हें न तो मित्र और न धुरी देशो की विजय से ही मुक्ति या आनन्द की कोई आशा है। अतएव यदि लड़ाई के अन्त तक केवल जिच ही बना रहा तो मुझे इतने से भी सतोष होगा। कोई यह नहीं कह सकता कि लड़ाई और कितने दिनों तक चलेगी, वह कब क्या रुख अख्तियार करेगी और किन-किन शक्तियो को उभारेगी। लड़ाई जितना ही अधिक दिनों तक चलेगी उतना ही न सिर्फ हिन्दुस्तान में बल्कि दुनिया के हर देश की भीतरी स्थिति बिगड़ती जायेगी। लड़ाई की एक नई करवट, किसी एक नई सामाजिक शक्ति का उभड़ पड़ना ही हिन्दुस्तान मे परिस्थिति को इस कदर बदल दे. सकती है कि यह जिच ही आज हमारे लिए एक लम्बी उछाल की आरभ-भूमि बन जा सकता है। लेकिन, अगर हम फिर साधारण परिस्थिति की ओर पीछे लौटें तो यह साधारण परिस्थिति ही हमारे पावो में एक जबर्दस्त बेड़ी बन जा सकती है। भविष्य की हमारी सफलता के लिए यह जिच ही सब से बड़ी गारटी है।

यह वहस उठ सकती है कि ज़िच को जारी रख कर हम ब्रिटेन के हाथ का खिलौना वन रहे हैं, क्योंकि ब्रिटेन भी चाहता है कि हिन्दुस्तान मे राजनीतिक जिच वना रहे। लेकिन ऐसा सोचना ब्रिटिश-नीति का गलत अर्थ लगाना होगा क्योंकि ब्रिटेन हिन्दुस्तान मे राजनीतिक जिच नहीं, वल्कि राजनीतिक "रोशनी गुल" (Black out) चाहता है। वह काग्रेस को कुचल कर उसकी आवाज वन्द कर देना चाहता है, जनता की प्रतिरोध की भावना और आजादी की चाह को मिटा देना चाहता है जिससे काग्रेस की ताकत बढती है, प्रतिरोध की भावना दृढ वनी रहती है, आजादी की लड़ाई चलती रहती है ; जिससे ब्रिटेन की प्रतिष्ठा तथा प्रभुता जहाँ हर रोज मिटती जाती है, वहाँ विद्रोहियों की बढती जाती है, ऐसे ज़िच से ब्रिटेन का उद्देश्य विफल हो जायेगा और इससे खुद उसका अपना हथियार ही उसकी पराजय का साधन वन जायेगा।

राष्ट्रीय सरकार और काग्रेस-लीग समझौते का भी ऊपर की वातों से गहरा सम्वन्ध है। माना, राष्ट्रीय सरकार जरूर वने। लेकिन इस सिलसिले मे सवसे मजेदार वात तो यह है कि जहाँ काग्रेस ऐसी सरकार के लिए लड़ती और कष्ट झेलती है वहाँ दूसरे लोग सिर्फ़ बाते वनाते हैं। अगर राष्ट्रीय सरकार १९३५ के विधान की मातहत सयुक्त मन्त्रिमडलों से या वायसराय की शानदार कौंसिल से भिन्न कोई और चीज है तो वह कान्फ्रेन्सी के जरिये नहीं वन सकती। वर्षों हुए, काग्रेस ने इस निकम्मे रास्ते को त्याग दिया है और यदि हमारे कम्युनिस्ट दोस्त अपने साम्राज्यवादी आकाओं के पास प्रार्थनापत्र भेजकर ही ऐसी सरकार कायम कर ले सकेंगे, तो उन्हें यह जी-हुजूरी मुवारक हो! लेकिन उन्हे इससे जनता के उपहास तथा अपने मालिकों की हिकारत के सिवाय और कुछ हाथ न लगेगा। राष्ट्रीय सरकार के लिए कांग्रेस-लीग समझौते को अनिवार्य आवश्यकता कह कर उसके लिए प्रचार

करना कोई नई वात नहीं है और मेरे लिए यहाँ इसकी चर्चा करना जरूरी नहीं था। लेकिन कुछ कांग्रेस जनों के निराशावाद ने, जो वैधानिकता के रास्ते पर फिर से लौटना चाहते हैं, एक वार फिर उन्हें इस निष्फल आन्दोलन की तरफ़ ला घसीटा है। "सीधी चोट" के रास्ते से घवडाकर वे इस आसान राह को पकडना चाहते हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि इस आन्दोलन के जनक श्रीराजगोपालाचारी अभी जिन्ना साहव के महल के फाटक पर ही ठोकरें खा रहे हैं और लीगी नेता के नाम महात्मा गाँधी का पत्र अभी तक उन्हें नहीं दिया जा सका (यद्यपि अप्राप्त तथा वेपढी हुई चीट्ठी का जवाव पढ सकने का दुर्लभ सौभाग्य हमें मिल चुका है)। इसी वजह से इस विषय का भी मुख्तसर जिक्र मैंने जरूरी समझा।

वुद्धिमान लोगों को भी अॅगरेजों की प्रचार-कला का शिकार होते देख कर उसकी तारीफ करनी पडती है। या तो यह सही है, नहीं तो मानना पड़ेगा कि हम राष्ट्रीय पतन के गहरे गर्त मे जा गिरे हैं। यदि अँगरेजो का प्रचार भोले अमेरिकनो को चकमे में लाता है (यद्यपि मुट्ठी भर ऐसे अमेरिकन भी हैं जो इस चाल की ताड जाते हैं), तो वात समझ मे आ सकती है, लेकिन जव कोई हिन्दुस्तानी भी इसके घपले में आ सकता है तो हमे इसको दुनिया के महान आश्चर्यों मे गिनना होगा। हिन्दुस्तान की ताजी घटनाओ ने अॅगरेजों के हर झूठे दावे की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के असली रूप और उद्देश्य पर किसी तरह का पर्दा नहीं रह गया। इतने पर भी ऐसे हिन्दुस्तानी हैं जो मानते हैं और देशवासियों से भी मनवाना चाहते हैं कि अगर हिन्दुतान की आजादी की राह मे कोई बाधा है तो वह है कांग्रेस और लीग के वीच समझौते का न होना।

अगर पिछले कुछ महीनों में अग्रेजों को नीति से कोई वात साफ झलकती है तो वह है अपने भारतीय साम्राज्य को जकड़ रखने का अग्रेजों

का दृढ़ निश्चय। क्रिप्स वार्ता से यह बात साफ झलक गई कि अंग्रेजों ने यह पक्का निश्चय कर लिया है कि वे लड़ाई के दौरान में हिन्दुस्तान को वास्तविक अधिकार नहीं देंगे चाहे देश में कितनी भी एकता क्यों न हो जाय। क्रिप्स ने साफ तौर पर एलान कर दिया था कि यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग मिल कर भी असली राष्ट्रीय सरकार की माँग करें तो वह लड़ाई के दौरान में मंजूर नहीं की जा सकती। लेकिन अंग्रेजों के भावी वादों में किसका विश्वास रहा है या है? ब्रिटिश नीति के इस स्पष्टीकरण के बाद भी कांग्रेस लीग समझौते के आन्दोलन का सिवाय इसके कोई दूसरा फल न होगा कि चर्चिलों और एमरियों को उन झुठाइयों को बल और प्रतिष्ठा मिले जो वे अथक रूप से सारी दुनिया में फैलाते रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों मे कांग्रेस-लीग समझौता का हो हल्ला भी राष्ट्रीय भारत के विरुद्ध साम्राज्यवाद के हमले का एक अंग बन जाता है।

अब यह पूछ सकते हैं कि यदि कांग्रेस-लीग समझौता हिन्दुस्तान को राष्ट्रीय सरकार देने के लिए ब्रिटेन को न भी मजबूर कर सके तो क्या इससे आज़ादी की ताकतें और मजबूत नहीं होंगी? अगर हाँ, तो क्या यह खुद एक ऐसी अभीष्ट चीज नहीं है जिसके लिए कोशिश की जाय? यदि इसका आधार सही है तो फिर यह निष्कर्ष भी सही माना जायेगा। लेकिन यहाँ तो आधार ही एकदम गलत है। हमारे देश में आजादी की सिर्फ वही ताकतें हैं जो आजादी के लिए लड़ने और कष्ट झेलने को तैयार हैं। मुस्लिम लीग ने अपने सारे जीवन में न तो कभी लड़ाई और मुसीबतों के रास्ते को अपनाया है और न उसे आज भी अपनाने को तैयार है। हिन्दुस्तान बिना लड़े अपनी आज़ादी हासिल नहीं कर सकता। पर जब मुस्लिम लीग लड़ाई में भाग लेने को तैयार ही नहीं है तो फिर उसके साथ समझौता करने से आजादी की शक्तियाँ मजबूत नहीं हो सकतीं। पंडित नेहरू के वे शब्द खोखले नहीं थे

जब उन्होंने कहा था कि यदि लीग आजादी की लडाई में शामिल होने को तैयार हो, तो उसके साथ कभी भी समझौता हो जाना एकदम आसान हो जाय।

यहाँ तक तो काग्रेस-लीग एकता को बात हुई। अब जरा दो शब्द लीग की असली नीति के बारे में भी कह दूँ। पहिले इसे स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि लीग ब्रिटेन को मेली है। जिन्ना साहब जानबूझ कर देश के साथ गद्दारी कर रहे हैं और वे वर्तमान काल के मीरजाफर हैं। उन्हे यकीन है कि वे जो कुछ भी चाहते हैं वह उन्हें ब्रिटेन से मिल जायगा। लेकिन ब्रिटेन अपने कठपुतलो को अपने साम्राज्य के टुकड़े सौंपने का आदी नही है। इसमे कोई सदेह नहीं कि जिन्ना साहब का पूरा इस्तेमाल कर चुकने के बाद वह उन्हें टूटे फूटे औजारों के कूड़ेखाने में फेक देगा जैसा कि वह पहिले भी औरों को फेंक चुका है, जिनमें मीरजाफर भी शामिल है। मुसलमानो को याद रखना चाहिये कि आज बगाल का शासन मीरजाफर की औलाद के हाथ नही बल्कि क्लाइव के नीच भाई बदों के हाथ में है। जिन्ना साहब अपने को अलबत्ता बहुत होशियार समझते हैं, लेकिन उनकी सारी मगरूरियत और हिटलरी अदाओं के बावजूद इतिहास इसका साक्षो देगा कि उन्हें एक ऐतिहासिक बेवकूफ बनाया गया।

जिन्ना साहब अपना पाकिस्तान चाहते हैं। लेकिन अगर वे इस मामले में सजीदा हैं, तो उन्हे इसके लिये मरना होगा, बलिदान करना होगा, शायद मरना भी पडे। लेकिन यहीं आकर तो गाड़ो अटक जाती है। यही तो जिन्ना साहब और उनके अनुयायी कभी करने को तैयार नहीं। इसीलिये तो जिन्ना साहब पाकिस्तान की अपनी माँग की चीख महात्मा गाधी को सुनाते हैं। लेकिन जिन्ना साहब का पाक वतन तो विचारे गांधी के पास है नही। वह तो साम्राज्यवाद के खून मे डूबे हुये पाँवों के तले पड़ा हुआ है जो उसे कुचल

रहे हैं तथा भ्रष्ट और नापाक कर रहे हैं। यदि जिन्ना साहब अंग्रेजो से अपने 'वतन' ले सके तो इसमे काग्रेस को कोई एतराज नही होना चाहिये—इससे कम-से-कम हिन्दुस्तान का एक हिस्सा तो आज़ाद हो जायेगा। लेकिन, वे उसे नही ले सकेंगे क्योकि वे इसकी कीमत चुकाने को तैयार नही। इसलिये वे काग्रेस को धमका कर बढना चाहते हैं। लेकिन अन्त मे चर्चिल जिन्ना को धमका कर रहेगा। यदि 'पार्लमेन्टों की जननी' के तत्वावधान मे कभी हिन्दुस्तान का बॅटवारा हुआ, तो साम्राज्यवाद का स्वार्थ इस बात में होगा कि वह हिन्दुस्तान के तथाकथित मुस्लिम राष्ट्र को अलग आजादी न दे। अलस्टर से आयरिश लोगो को कोई लाभ नही हुआ, लेकिन वह आयर्लैण्ड के सीने में चुभाई हुई ब्रिटेन की छुरी है।

लीग की असली नीति साम्राज्यवाद की चालबाजियों और कौमी गद्दारी का एक कुरूप फरजन्द है।

(५)

आप को तो शायद यह मालूम ही होगा कि श्री सुभाषचन्द्र बोस ने शोनान (सिगापुर) में एक अस्थायी भारतीय सरकार की स्थापना की है जिसे जापानी सरकार ने मान लिया है। उन्होंने एक भारतीय राष्ट्रीय सेना का भी सगठन किया है जो तेजी से विस्तार कर रही है। ये घटनाएँ हमारे लिये कुछ महत्व रखती हैं। यहाँ पर आपको यह भी सूचित कर दूँ कि सुभाष सरकार ने जो पहिला काम किया है वह है हमारे लिये इतना चावल भेज देने का जिम्मा लेना जितना कि बंगाल के भूखों मरते हुये लोगों को खिलाने के लिये जरूरी हो; लेकिन अंग्रेजी सरकार को तो यही कबूल है कि देशी खटमल-पिस्सू मल मर जायँ!

क्विसलिंग करार दे कर सुभास को गाली देना आसान है। जो खुद ही ब्रिटेन के क्विसलिंग हैं वे बडे इतमीनान के साथ आज उन्हे गालियाँ दे रहे

हैं। लेकिन राष्ट्रीय भारत तो उन्हें एक उत्कट देशभक्त तथा एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता है जो देश की आजादी की लड़ाई के मैदान मे सदा आगे रहा है। हम तो यह सोच भी नही सकते कि वह कभी अपने देश को बेच डालने के लिये तैयार हो सकता है। यह सच है कि जो भी धन या सामान उनके पास है वह सब उन्हें धुरी राष्ट्रों से मिला है। लेकिन, वे लोग जो उनकी सरकार या राष्ट्रीय सेना मे हैं, सभी ऐसे भारतीय हैं जिन्हें अंग्रेजी राज से नफरत है और जिनमें अपनी मातृभूमि को आजाद करने की इच्छा जल रही है। इसके अलावे हमें यह भी खयाल रहे कि उन सभी भगोड़ी यूरोपियन सरकारों का सारासाजों सामान जो आज मित्र-राष्ट्रों की छत्रछाया में चल रही हैं, उन्हे इन्हीं राष्ट्रो से मिला है। फिर कोई यह भी तो नहीं कह सकता कि आज की इस भूमडल-व्यापी लड़ाई का कौन-सा दाँव जाने किस शक्तिशाली राष्ट्र को अपनी गरज के चलते एक छोटे और अशक्त देश के आगे दबने को न मजबूर करे। जापानियों द्वारा बर्मा की आजादी की घोषणा का काफ़ी प्रचार है और यहाँ तक ख़बर है कि इससे सोवियत सरकार को इतनी दिलचस्पी हुई है कि उसने तो सरकार को उसकी इस उदारता के लिये बधाई तक दे डाली है। बात चाहे जो हो, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं मालूम पड़ता कि बर्मा वालों को आज एक फैसिस्ट सरकार की छात्रछाया मे उससे कही अधिक आजादी प्राप्त है जो उन्हे "ब्रिटिश जनतत्र" के अधीन थी। अब हम श्री सुभाष बोस की बात को लें। जाहिर है कि उन्होंने, राजनीति के उस पुराने सिद्धान्त के अनुसार जो मैशिवेली तथा कौटिल्य से भी पुराना है, अपने देश के दुश्मनों के दुश्मनों से मदद लेना गवारा किया है। इस तरह एक तीसरे पक्ष से मदद लेकर वे अन्त मे ठगे भी जा सकते हैं, लेकिन इस बात से उनकी नेकनीयत तथा बुद्धिमानी में कोई फर्क नहीं आता। अपने देश की आजादी हासिल करने मे वे कितनी मदद पहुँचा सकेंगे, यह

तो ऐसी घटनाओं पर निर्भर है जिन पर उनका या किसी भी देश के किसी राजनीतिज्ञ का अधिक वश नहीं।

शोनान की भारत सरकार और राष्ट्रीय सेना के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि हमारी आजादी का सबसे ज्यादा दारोमदार है हमारी अपनी ताकत और तैयारियों पर। बाहरी मदद की उम्मीद में निठल्ले बन कर बैठ जाना तो खुदकुशी की नीति होगी। कोई भी बाहरी मदद अकेले हमें आजाद नहीं करा सकती। यह सोचना भारी मूर्खता होगी कि सुभाष की फौज, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, हिन्दुस्तान-स्थित मित्र-राष्ट्रों की फौजों को हरा सकेगी। यदि कोई फौज उन्हें परास्त कर सकती है तो जापान की। लेकिन यदि जापानी हिन्दुस्तान में अंग्रेजों को हरा भी देते हैं, तो वे चुपचाप हिन्दुस्तान हमारे हाथों सौंप नहीं देंगे—चाहे तोजो और सुभाष में इस विषय पर कैसा भी समझौता क्यों न हो चुका हो। हमें इसके लिये तैयार रहना है कि हिन्दुस्तान में मित्रों और धुरी के संघर्ष छिड़ने पर हम खुद अधिकार छीन लें। यदि हम ऐसा प्रयत्न करने को तैयार रहेंगे तभी सुभाष की फौज जैसी मदद से हम फायदा उठा सकते हैं। यह कह सकना कठिन है कि सुभाष हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय दाँव-पेंच के इस पहलू से किस हद तक वाकिफ हैं।

अब हम इस सवाल पर आ जाते हैं कि अगर लड़ाई हमारे घर में आ पहुँची तो हम क्या करें? अंग्रेजों की नीति ने औसत हिन्दुस्तानियों को आज इतना ब्रिटिश-विरोधी बना रखा है कि यदि वे जापान का स्वागत करने को तैयार नहीं, तो कम-से-कम ब्रिटिश-जापान संघर्ष में तटस्थ तो जरूर रहना चाहते हैं। यही तटस्थता हमारी मौत बुला सकती है। हमें इसे दूर करके निश्चित क्रियाशीलता की नीति अपनाने की जी-तोड़ कोशिश करनी है। जिन

इल्कों में लड़ाई होती है या जापानियों का कब्जा हो जाता है या जापानी घुस पड़ते हैं वहाँ विदेशियो का सिविल शासन या तो एकदम निर्बल पड़ जायेगा या एकदम टूट हो जायेगा। इन इलाको मे हमें स्वराज्य सरकार कायम कर लेना होगा। इसी सरकार के नाम पर पोछे हटती हुई हिंन्दुस्तानी फौज को एक कर जनता की फौज मे परिणत हो जाने की अपील करनी होगी। उसी दिन से हमे हिन्दुस्तान के पूर्वी सूबों मे एक ऐसी सरकार बनाने के लिये तैयारी करनी होगी जो समय आने पर सारे देश पर अधिकार कर लेगी। इस तैयारी के काँम के सिलसिले में बहुत-से ऐसे सवाल उठ खडे होते हैं जिन पर हम यहाँ विचार नहीं कर सकते। इतना ही काफी होगा कि हम साधरण नीति की ओर इशारा कर दें और अपने सैनिकों तथा सारे देश का ध्यान इसकी ओर खींचें।

(६)

इस पत्र को समाप्त करने के पहिले युद्ध के बारे मे भी कुछ कह दूँ। देश को जीवन-धारा की ढाब में लडाई के रूप को लेकर आज भी मजेदार बहस छिडी हुई है। दुश्मन से मिले हुए देशद्रोही स्वभावतः अभी भी इस बात पर जोर दे रहे हैं कि यह जनता की लड़ाई है। ऐसे लोग जिनके लिये राजनीति का अर्थ और इति सिर्फ विवाद में है इस विषय को लेकर भयकर जोश मे आकर शाब्दिक विवाद करते-करते कभी-कभी मारपीट तक कर बैठते है। लेकिन भारत की जनता को ब्रिटेन की लड़ाई के रूप के बारे मे या उसका समर्थन करनेवाले अपने देश के भाइयो के बारे मे कोई शक नहीं है। अब उन्हें बताने की कोई जरूरत नहीं रह गई कि फैसिज्म क्या चीज है या यह कि यह लड़ाई उनकी अपनी ही है। पिछले साल ब्रिटिश फैसिज्म ने अपनी भयकर क्रूरताओं के जरिये उनके आगे अपनी कलई खोल दी है जो जेलों मे सड़ रहें है, जिनके प्रियजन उस देश-व्यापी भयकर

हत्याकांड के चलते उनसे सदा के लिये बिछड गए जिसके जरिये अंग्रेजो ने फिर से अपना "अमल और कानून" कायम किया, जिनके घर लूटे और जला दिये गये, जिनकी स्त्रियो की इज्जत लूटी गई, जो आज सड़कों और गलियो में चूहो की तरह बिलबिला कर भूखो मर रहे हैं—कोई जरा इनसे पूछे कि यह किस तरह की "जनता की लड़ाई" है। एक अग्रेज जेनरल ने बावर के वश के शाहजादो के सिर उतार कर उन्हे एक तश्तरी मे सजा कर उन अभाग शाहजादो के बाप अन्तिम मुगल बादशाह के पास रानी विक्टोरिया की ओर से उपहार के रूप मे भेजा था। इस घटना के एक सौ पचास साल बाद टोटेनहम ने अमेरिकन पत्र सबाददाताओ के सामने (गांधी जी के उपवास के मौके पर) शेखी बघारते हुए कहा कि उसने गाधी की लाश को जलाने भर को काफी चन्दन की लकड़ी मॅगा रखी है? इन सभी कारनामो को और ब्रिटिश शासन के शुरू से अन्त तक (इसका अन्त निकट ही है) के सारे काले कारनामो को भारत अच्छी तरह जानता है और उसे मार्क्सवादी के नकली वेश में फिरनेवाले देशद्रोहियो के मुँह से वह नहीं सुनना है कि फैसिस्टवाद क्या चीज़ है?

लड़ाई का पांचवा साल शुरू हुआ। लोगों की जान और सुख की जो भयंकर बर्बादी इसमे हुई है उसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती। उभय पक्षों के साधारण जनो के हितों का यह तकाजा है कि वह जल्द से जल्द खतम हो जाय। लेकिन चर्चिल-रूजवेल्ट और हिटलर-तोजो इसको खतम नहीं कर सकते। यदि वे आज इस नृशस हत्या को बन्द भी करा दें, तो सिर्फ इसलिये कि जिसमें वे भविष्य मे और अधिक भयकर नृशसता के लिये और अधिक घातक हथियार बना सकें। लड़ाई के बाद की दुनिया के लिये मित्र-राष्ट्रों की जो योजना है और जिसकी एक मामूली झलक साधारण जनों को मिल चुकी है, उसमें उन्हीं विशेष स्वत्वों की, एक वर्ग तथा राष्ट्र का दूसरे वर्ग

या राष्ट्र पर अत्याचार की पूंजीवादी प्रतियोगिता तथा अराजकता की उसी पुरानी दुनिया का जिक्र है जिसने एक ही पीढी मे दो महासहारी युद्धो को जन्म दिया और निश्चय ही एक तीसरे को भी पैदा करेगी।

इन परिस्थितियो में भारत ही सारी दुनिया के अधिकार-च्युत तथा लुंठित कौमो की आकाक्षाओ एव अभिलाषाओं का क्रियात्मक प्रतिनिधित्व कर रहा है। हिन्दुस्तान की आजादी की लडाई साम्राज्य विरोधी (और फौसिस्ट विरोधी भी, चूँकि साम्राज्यवाद ही फैसिस्टवाद को भी जन्म देता है) साथ ही साधारण जनो द्वारा हस्तक्षेप के जरिए लड़ाई का अन्त करने का एक प्रयास भी है। हमारा ध्येय न तो मित्रो की विजय है और न धुरी की और न इनमे से किसी एक पर हमारी उम्मीद ही टॅगी हुई है। हम दुनिया के जन-साधारण के हाथों साम्राज्यवाद तथा फसिस्टवाद दोनो ही की पराजय के लिये कोशिश करते हुए अपनी लड़ाई के जरिए लड़ाइयों का अन्त करने तथा काले-गोरे और पीले लोगो की मुक्ति का रास्ता दिखलाते हैं।

(७)

मैने आपका बहुत समय ले लिया और अब इसे खतम करूँगा मैंने ऊपर यह दिखलाने की कोशिश की है कि हमारे लिए लाभ का सिर्फ एक ही रास्ता है और वह है लडाई को जारी रखना। लेकिन हम लड़ें किस तरह ?

मैं यह बतला चुका हूँ—मौजूदा स्थिति ऐसी है जिसमे मुख्यत. तुले हुए सैनिक अपना जौहर दिखला सकते हैं।

इन सैनिको का पहिला काम है अपने सगठन को बनाये रख कर उसें मजबूत और व्यापक बनाना। सगठन के बिना कोई भी फौज—चाहे वह अहिंसात्मक ही क्यो न हो—नहीं लड सकती। जन-सघर्ष प्राय. एक खुद से उभरनेवाली चीज है और वह सामाजिक शक्तियो के परिणाम के रूप

में होता है ; लेकिन उसकी आकृति को ठीक करने और निर्णयात्मक बनाने के लिए चुने हुए क्रांतिकारियों का एक सगठन अत्यत आवश्यक है । जन सघर्ष का अपने-आप उभरना भी ऐसे चुने हुए क्रान्तिकारियो का जनता में सगठित काम का एक सम्मिलित फल है । हमारी लड़ाई के हाल के इतिहास मे उसके नेताओं ने सगठन के मसलों के बारे में बहुत बेपरवाही दिखलाई है । नेता अपनी गिरफ्तारी की हालत में सदा से सब—कुछ जनता की मर्जी पर छोड़ते आये हैं । बेशक सगठन के मामले में इस बेपरवाही की जड में अहिंसा और गोपनीयता का परस्पर विरोध रहा है । अहिंसा छिप-छिपाकर काम करने की इजाजत नहीं देती । फिर भी लड़ाई की हालत में सगठन को गुप्त रखना ही होगा । मेरा यह दावा नहीं है कि मैंने इस धर्म-सकट का हल निकाल लिया है । मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि जब तक अहिंसा के विशेषज्ञ इसका कोई हल नहीं खोज पाते, तब तक अहिंसा के कट्टर से कट्टर अनुयायियों को भी कार्य सचालन के खयाल से अपने सिद्धान्त से कुछ झुककर भी गुप्त सगठन कबूल करना होगा । महात्मा गाँधी तक को भी ऐसा समझौता करना पड़ता है । सिर्फ गोपनीयता की निन्दा करके और खुलमखुल्ला काम करने की नीति की प्रशसा करके हम न तो अपनी कठिनाई को हल कर सकते हैं और न अपने उद्देश्य को ही आगे बढाते हैं ।

अतः सगठन ही हमारी लडाई के प्रोग्राम का पहिला अश है । यह किसी भी सघर्ष का मूल आधार है । इस सिलसिले मे मैं मौजूदा गैर-कानूनी कांग्रेस सस्थाओं को जिंदा और सुव्यवस्थित रखने पर बहुत जोर देता हूँ । ये ही सस्थाएँ हमारी लड़ाई को एक सूत्र में बाँध रखने की एकमात्र साधन हैं । यह सही है कि उनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है ; लेकिन सिर्फ उन्हीं के जरिए आज कांग्रेस अपने काम चला सकती है जनता तक पहुँच सकती तथा दुश्मन से लोहा ले सकती है । कुछ सूबों में ये सगठन ठीक से नहीं

काम कर रहे हैं। संगठन की इस कमजोरी का कारण कार्य-कर्त्ताओं की कमी नहीं है। अधिकाश जगहों में इसके कारण हैं धन का अभाव तथा योग्य संगठन करनेवालो की कमी। लेकिन इनमे से कोई भी असाध्य नही हैं। अखिल भारतीय काग्रेस का केन्द्रीय डिरेक्टरेट प्रान्तों की कम-से-कम जरूरतों को पूरी करने की कोशिश करता रहा है और इस दिशा में वह एकदम नाकामयाब भी नहीं रहा है। अभी इसका मौका नही है कि हम इस पर विचार करें कि हिन्दुस्तान के धनियों का वर्तमान क्राति में क्या भाग रहा है। यहाँ इतना ही कह देना काफी होगा कि उनमे समझ और दूरदेशी का विल्कुल अभाव रहा है। यदि उनकी नजर थोडी दूर भी पहुँच पाती तो वे इस बात को आसानो से समझ सकते कि यदि राष्ट्रीय आन्दालन कुचल दिया गया तो फिर लड़ाई के बाद की समस्याओं से हैरान और परीशान ब्रिटिश पूँजीशाही उन्हे दम तक नहीं लेने देगी। अतः ओर कुछ नही ता सिर्फ अपने ही स्वार्थ के लिहाज से उन्हे दिल खोलकर राष्ट्रीय क्राति मे अपना धन लगाना चाहिये। लेकिन उन लोगो ने अपने को न सिर्फ घोर स्वार्थी बल्कि अत्यन्त हीन भी साबित किया है।

चाहे जो हो, लेकिन धन के अभाव की पूर्ति तो होनी ही चाहिए और जो इसमे मदद कर सकते हैं उन्हें करनी ही चाहिये। कुछ प्रान्तो मे, जैसे यू० पी० मे, कुछ भूतपूर्व कांग्रेसी मिनिस्टर जेल के बाहर हैं। वे लोग तथा जेल से छुटे हुए अन्य प्रमुख काग्रेसी यदि और कुछ नहीं, तो कम से-कम सिर्फ अपने प्रान्तो की आर्थिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति करा दे। जहाँ तक केन्द्रीय सगठन का सम्बन्ध है, उसका सबसे प्रमुख काम होना चहिये प्रान्तों को धन की मदद देना। यदि उनके अमल में लाने के जरिए नहीं, तो सिर्फ प्रोग्राम और आदेश-पत्र भेजना बेकार-सा होगा।

ऐसे योग्य सगठनकर्त्ता और नेताओं के अभाव का सवाल, जो लोगो के

सामने नये कार्यक्रम बनावें और दूसरो से काम ले सके, जरा ज्यादा टेढा सवाल है। फिर भी, इसमे आशिक सुधार तो इस तरह हो सकता है कि जो थोडे-से लोग बचे रहे हैं, वे घूम-घूमकर दूसरे कार्य-कर्त्ताओं से मिलें, उनके साथ अपने व्यावहारिक मसलों पर विचार करें और उन्हे सलाह और शिक्षा दें जो सभव हों। सौभाग्य से जहाँ योग्य कार्यकर्त्ताओ की सख्या जरूरत से ज्यादा हो उनमें से कुछ को ऐसी जगहो में भेज दिया जाय, जहाँ या तो कोई भी नही या बहुत कम हो। नये कार्यकर्त्ताओं की, विशेषकर विद्यार्थियो मे से, भर्त्ती की जाय और जो जेल से छूटकर बाहर आ रहे हैं उनको खीच कर फिर मैदान में लाना चाहिये।

यदि पैसा, नये रगरूट और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध हो जाय तथा प्राप्त बुद्धि और अनुभव का अच्छा उपयोग किया जाय, तो हमारे सगठन के मसले हल हो सकते हैं।

दमन के सामने अपने संगठन को बनाये रखना हमारी लडाई का एक अंग है—लेकिन सिर्फ एक अग मात्र। हमारे सगठन की हर टुकड़ी (यूनिट) का जनता से सम्पर्क रहना चाहिये। हमारे सैनिकों और जनता का सम्बन्ध किसी भी हालत में टूटने देना नही चाहिये। सम्पर्क की एक शब्द मे व्याख्या करें तो उसे कहेगे प्रचार—जबानी और लिखित प्रचार अर्थात् पर्चे पैम्फलेट, पोस्टर, रेडियो ब्रॉडकास्ट और देहातों में घूमते रहनेवाले सैनिकों की गतिशील टोलियाँ जो लोगो से मिलें और बाते करें। प्रचार-साहित्य का लिखना और छपवा कर तैयार करना जितना अहम है उतना ही उसका लोगो मे बॅट जाना भी, अतः हर काम पर बराबर ध्यान देना चाहिये। प्रचार के क्षेत्रों का भी पूरा अध्ययन कर लेना चाहिये। विद्यार्थी, मजदूर दूकानदार, किसान-जैसे जनता के वर्गों के अलावे हमें अपनी आवाज सरकारी नौकरों तक, विशेषत: पुलिस और फौज के छोटे ओहदों वालों तक भी पहुँचानी

चाहिये। विदेशों में प्रचार करना भी हमारे काम का एक अंग होना चाहिये।

प्रचार सिर्फ प्रचार ही नहीं, बल्कि हमारी लडाई का एक रूप भी है क्योंकि रेडियो चलाना, गैरकानूनी पर्चे निकालना, जहाँ मीटिंग करने की मनाही हो, वहाँ मीटिंग करना ऐसी बाते कहना जो गैरकानूनी हैं, ये सभी चीज लुटेरी सरकार के प्रति विद्रोह और उसके खिलाफ लडाई का एक अंग हैं।

हम और अधिक क्या कर सकते हैं? मेरा तो यह विश्वास है और मैं इसे खुलेआम कहने को तैयार हूँ कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति मे परिवर्त्तन नहीं होता—जैसे रूस और जर्मनी मे सधि, चीन और जापान मे सधि, अंग्रेजी सेना की गहरी हार या हिन्दुस्तान की सरजमीन पर घमासान—तब तक हम कोई बड़ी चीज नहीं कर सकते। मैं चाहता हूँ कि हमारे सैनिक धोखे में न रहे। जो तात्कालिक फल की उम्मीद न होते हुए भी लडते रह सकते हैं वही विजयी हो सकते हैं। जो लोग इससे भिन्न हैं वे मैदान छोड-कर भाग खडे होगे और बड़ी-बड़ी बाते बनाकर राजनीतिज्ञ बनने का ढोंग रचाएंगे। लेकिन, इतिहास उन्हे ऐसे भगोड़ विश्वासहीन और कायर की उपाधि देगा जो कष्टों से उठकर अपना कर्त्तव्य छोड बैठे। हमारे बहुत-से साथी यह सोचकर निराश हो रहे हैं कि आज हम चाहे सत्याग्रह और हडताल के रूप में या तोड़-फोड़ के रूप में जिस पैमाने पर प्रतिरोध चला सकते हैं वह कारगर नहीं है। यह इस मानी मे सही भी है कि यह इतना जबर्दस्त नहीं है कि अंग्रेजी शासन का चलना रोक दे सके। लेकिन यह एक दूसरे अत्यन्त आवश्यक, अर्थ में कारगर भी हो रहा है और वह यह कि यह एक जबर्दस्त प्रोपगैन्डा है, इसमें जनता का साहस दृढ बना रहता है, यह आगे की बड़ी लड़ाई की उम्मीद को जिन्दा रखता है, इससे हमारे सैनिकों को

ट्रेनिंग मिलती है, इसके जरिये हमारी लडाई का बाहरी स्वरूप बना रहता है और दुश्मन को यह सोचकर परेशानी होती है कि उसका सारा दमन-कार्य व्यर्थ साबित हुआ। यह इस मानी में कारगर है कि यह हमारा आखिरी कारगर प्रतिरोध की एक तैयारी है। अतः हमें अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध प्रत्येक रूप में अपने-अपने विश्वास और प्रोग्राम के अनुसार अपना संघर्ष जारी रखना है।

वर्त्तमान के लिये हमारा कम-से कम प्रोग्राम यह होगा : संगठन, प्रचार और जाहिरा प्रतिरोध। इसके अलावे हमारे सामने तैयारी करने का समूचा विशाल क्षेत्र है। विद्यार्थियों और मजदूरों में हमारा काम चलते रहना चाहिए, फौज तथा सरकारी नौकरों के साथ हमारा सम्पर्क बना रहकर और बढता जाय, तोड-फोड़ के लिए हमारी तैयारी जारी रहे। हमारा लक्ष्य होना चाहिये ९ अगस्त की तरह का लेकिन उससे भी बड़ा और ज्यादा संगठित तथा संचालित संघर्ष। खाद्य-समस्या के बारे में भी एक शब्द कह देना चाहता हूँ। इसकी गंभीरता के बारे में कुछ कहना फिजूल होगा। वह तो सभी तरह जानते और समझते ही हैं। लेकिन, इस संबंध में लोग यह ठीक से नहीं समझ रहे हैं कि इसका वास्तविक समाधान है स्वराज्य-सरकार। अंग्रेजों ने कुछ तो अपनी अयोग्यता के कारण और कुछ जान-बूझ कर इस समस्या को पैदा किया है और जब तक वे यहाँ बने हुए हैं तब तक दुर्भिक्ष अनिवार्य है। इस तरह आजादी की लड़ाई का मतलब हो जाता है रोटी की असली लडाई। लेकिन इतना ही कहना काफी न होगा। हमें आजादी की लड़ाई के ही एक अंग के रूप में रोटी की लडाई भी चलानी है। वर्त्तमान में तो खाद्य-संकट से जनता में एकमात्र प्रतिक्रिया हुई है दान देने की। वर्ग-समाज में दान की भी एक अपनी जगह है और हालांकि मैं एक साम्यवादी होने के नाते इसे समर्थन नहीं करता हूँ, फिर भी भूखों मरनेवालों को मौत

है बचाने का प्रयास करनेवालों की मानवता की भावना को खुशी से स्वीकार करता हूँ। यह सार्वजनिक प्रयास सराहनीय है। लेकिन, दान और भीख पर्याप्त नहीं हैं। इससे समस्या का हल नहीं होता। अतः हमारे सैनिकों का यह महान् कर्त्तव्य हो जाता है कि कंगलों और भुखमरों के दिल मे क्षोभ और क्रोध की भावनाएँ जगावें और इन भावनाओं को उस विदेशी सत्ता के विरुद्ध उभारें जो उनकी इस दुर्दशा की जड़ मे हैं। क्षुधार्त्त जनता ऐसी स्थिति पैदा कर दे जिसमें रोजमर्रे के ब्रिटिश शासन का चलना एकदम असभव हो जाय। जहाँ-कहीं भी पा सके वहाँ से अन्न छीन लेने के लिए हम उन्हे सिर्फ यह कर ही न सतोष कर ले, बल्कि इसमें उनकी मदद भी करें। देहातो से हम गल्ला बाहर न जाने दे और ग्राम पचायतो तथा इस तरह की दूसरी सस्थाओं के जरिये गल्ले का वितरण करावें, पर इसका खयाल रखना चाहिये कि इसमें हम सरकार या सरकार-परस्त सस्थाओं से दूर ही रहें। हमारे जो सैनिक गुरिल्ला-सगठनों में हैं उन्हे चाहिये कि वे सरकारी गुदामो और इसी तरह की दूसरी जगहों से गल्ला लूटकर उसे हाजतमन्दों मे बाँट दें। सरकार द्वारा फसल या गल्ले का जबर्दस्ती ले लेने का प्रतिरोध होना जरूरी है। शहरो मे रहनेवाले भुखमरो और दरिद्रों की निष्क्रियता को भी हमे क्षोभ और क्रोध मे बदल कर उसे प्रदर्शन तथा सीधी चोट का प्रगट और क्रियात्मक रूप देना चाहिये। सैनिक अक्सर मुझसे प्रोग्राम के बारे मे पूछ बैठते हैं। उनके लिये यह तो एक ऐसा प्रोग्राम है जिसे दूरदेशी और हिम्मत के साथ यदि चलाया जा सके तो सारा देश एक खौलती हुई कड़ाह बन जाय जिसमे पड़कर ब्रिटिश साम्राज्य जलकर स्वाहा हो जायेगा।

सगठन के सिलसिले में बात करते हुए मैंने सिर्फ काग्रेस ही का नाम लिया है। जो लोग काग्रेस की सैद्धान्तिक सीमा से परे जाना चाहते हैं, उन्हे तो अपनी विशेष तरह की कार्रवाइयों को चलाने के लिये स्वभावतः एक

अलग संगठन की जरूरत होगी। मैंने इस काम के लिये एक गुरिल्ला-संगठन की सलाह दी है और गुरिल्ला आंदोलन के विकास में कुछ प्रगति तो हो भी चुकी है। इस विषय में यहाँ कुछ विशेष कहना उचित नहीं होगा। इतना ही काफी होगा कि इस संबंध में मेरे विचार आसानी से उचित लोगों तक पहुँच सकते हैं और जिन्हें इस तरह के कामों से दिलचस्पी है उन्हें इसके संगठन के सम्पर्क में आने में विशेष कठिनाई नहीं होगी।

साथियो, अब मैं इस पत्र को यहीं समाप्त करता हूँ। मैंने मौजूदा स्थिति का ठंढे दिल से विश्लेषण किया है और बिना शब्द जाल या तड़क-भड़क का सहारा लिये आपके सामने अपने विचार रख रहा हूँ। अब इसमें जो बातें आपके स्वीकार के लायक हों, उन्हें खुशी से चुन लें। मैं सदा आपकी खिदमत में हाजिर रहूँगा। "करो या मरो" मेरा और आपका भी ध्रुवतारा है। अतः हम करें या मरें।

हिन्दुस्तान के किसी कोने से
१ली अक्तूबर, १९४३

आपका साथी
जयप्रकाश नारायण

आजादी के सैनिकों के नाम

तीसरा पत्र

साथियो,

जेल से छूटते ही जब मैंने "जनता" के जरिये आपको मुबारकबाद भेजा, तभी मैंने वादा किया था कि शीघ्र ही मैं वर्त्तमान परिस्थिति पर अपनी राय आपके सामने रखूँगा और हमारा आज क्या कर्त्तव्य है उस पर प्रकाश डालूँगा। मुझे दुःख है कि अपने वादे को पूरा करने में मुझे इतना विलम्ब हुआ। विलम्ब अनिवार्य ही था, क्योंकि यह जरूरी था कि मैं अपने सहयोगियों से मिलता और उनसे सलाह-मशविरा करता। सलाह-मशविरा के बाद अब मुझे मौका मिला है कि मैं निश्चित रूप मे आपके सामने कुछ बातें रखूँ।

इसके पहले भी, मैंने और मेरे सहयोगियो ने वक्तव्यो के जरिए, जिन्हे अलग-अलग या हम सबने मिलकर साथ प्रकाशित किए हैं, आपके ख्यालात को आपके सामने रखने की कोशिश की है। गत अखिल भारतीय काग्रेस कमिटी की गत बैठक मे हमारी क्या नीति रही, उसे आप जानते ही हैं। नीचे मैंने अपने विचारो को—और मुझे यकीन है अपने साथियों के विचारो को भी—'सिलसिलेवार और पूर्ण रूप से रखने की कोशिश की है। इसमे

मैंने यह भी बताने की कोशिश की है कि हमारे सामने क्या प्रश्न हैं और उन्हें हल करने के लिए हमें किन-किन तरीकों पर अमल करना है।

वर्त्तमान स्थिति अस्थायी है, और शीघ्र बदलती रहती है। ए० आई० सी० सी० ने यह निश्चय किया है कि काग्रेस जनों को ब्रिटिश तत्वावधान में बुलाई गई विधान परिषद् में सम्मिलित होना चाहिए। एक मध्यकालीन सरकार ब्रिटिश वायसराय के मातहत शीघ्र ही बननेवाली है। यह सरकार जब भी बने, तबतक स्वतन्त्र राष्ट्र की स्वतन्त्र सरकार नहीं हो सकती, जब तक वायसराय, ब्रिटिश सेना और ब्रिटिश अफसर हिन्दुस्तान से चले नही जाते। इसकी प्रार्थना करना कि इस सरकार को स्वतन्त्ररूप से चलने दिया जाय, परिस्थिति से आँखें मूद लेना है। जिसके पास यह शक्ति है कि स्वेच्छा से जब चाहे हुकूमत दे दें, उसके पास यह भी शक्ति है कि स्वेच्छा से हुकूमत को जब चाहे वापिस भी ले ले। इसलिए हम इस बात के धोखे में न रहें कि (मध्यकालीन) अस्थायी सरकार "यथार्थ" में स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की सरकार होगी।

तब क्या तथाकथित विधान-परिषद् द्वारा हम स्वतंत्रता हासिल कर सकेंगे? दूसरे शब्दो मे क्या वह विधान-परिषद् हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र प्रजातंत्र घोषित कर सकेगी और फिर उस घोषणा को कार्यान्वित कर सकेगी? मसलन, क्या वह एक ऐसी अस्थायी सरकार कायम कर सकेगी जिसके जिम्मे वायसराय देश की सारी हुकूमत सौंपकर हिन्दुस्तान से चले जायँ? क्या यह अस्थायी सरकार ब्रिटिश सेना और ब्रिटिश अफसरों को यहाँ से विदा कर सकेगी? क्या वह सरकार ब्रिटिश पूँजी की दम घोटनेवाली रस्सी को, जो देश के गले पड़ी हुई है, तोड़कर फेंक सकेगी? क्या यह विधान-परिषद्, अंग्रेजों के चले जाने के बाद, स्वतंत्र अस्थायी सरकार को बालिग-मताधिकार के आधार पर चुने हुए प्रतिनिधियों की सच्ची विधान-परिषद् को

बुलाने का अधिकार देकर खुद अपने को भंग कर सकेगी ? क्या प्रस्तावित विधान-परिषद् इन सब कामों को कर सकेगी, जिनका सम्भव होना देश की पूर्ण स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्रवाद के लिए आवश्यक है ? यह सोचना बड़ी मूर्खता होगी कि वर्त्तमान परिस्थिति मे और शक्तियों के मौजूदा संतुलन के रहते हुए यह विधान-परिषद् उपर्युक्त सभी कामों को करने के लिए कदम बढा सकेगी और इनमें से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी। और यदि हम यह मान भी लें कि विधान-परिषद् इसके लिए प्रयत्नशील हो भी, तो निश्चित है कि ब्रिटिश सरकार उसके रास्ते मे खड़ी हो जायगी । उस हालत में यदि परिषद् में ईमानदारी और सच्चाई है, तो उसे ब्रिटिश सरकार की चुनौती को मान लेना पड़ेगा और अपने मकसद पर पहुँचने के लिए देश की आम जनता की शक्ति का आह्वान करना पड़ेगा। ऐसी दशा में वायसराय जो परिषद् की बैठक खुद बुलाते अब उसे भंग करने का हुक्म जारी करेंगे। तब देश की आजादी की लड़ाई पूरी ताकत में शुरू हो जायगी, जिसके गर्भ से प्रजा की सच्ची विधान-परिषद् और एक स्वतन्त्र, अविच्छिन्न भारतीय प्रजातन्त्र निकलेंगे।

लेकिन, प्रस्तावित विधान-परिषद का इस रास्ते पर चलना सभव नहीं। राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू जिसे परिस्थिति का दवाव कहते हैं, उसे ध्यान में रखते हुए यानी, अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता पर जो अवरोध है उसे ध्यान मे रखते हुए अपनी कमजोरियो को ध्यान में रखते हुए, इस बात को भी ध्यान मे रखते हुए कि ब्रिटिश सरकार के पृष्ठपोषक और स्वतंत्रता तथा प्रजातन्त्रवाद के दुश्मन अपने बीच भरे पड़े हैं, ब्रिटिश वायसराय और ब्रिटिश सेना की मौजूदगी को भी ध्यान मे रखते हुए—इन सब बातो को और इनके अलावा और भी जितनी बातें हैं उन सबों को मद्देनजर रखते हुए विधान-परिषद् उसी रास्ते को अपनाएगी जिसे, मेरा विश्वास है, यथार्थवाद का मार्ग कहा

जायगा। दूसरे शब्दों में परिषद् एक के बाद दूसरा समझौता करती जायगी और अन्त में ऐसी चीज कायम करेगी जिसे न स्वतंत्रता कहा जा सकता, न प्रजातंत्र और न राष्ट्रीय एकता। इस तरह देश को परीशान होकर और धोखे से निकल कर फिर उसी मार्ग पर आना पड़ेगा जिससे उसे आज विचलित किया जा रहा है—वह मार्ग क्रान्ति का मार्ग है, लड़ाई और मुकाबले का रास्ता है, स्वतन्त्रता का सीधा परन्तु कठिन मार्ग है।

यों हम देखते हैं कि दोनों ही अवस्थाओं में, विधान-परिषद् "सफल" होती हो तो या मोर्चा लेकर "विफल" होती हो, स्वतंत्रता का संग्राम अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति जिसे देश के शक्ति-सन्तुलन का सही ज्ञान है, हमारे इस निष्कर्ष से सहमत होगा। आज, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिए अभी भी संभव है कि हमारे मुकाबिले में "परिस्थिति के दबाव" को रखे। जब तक यह दबाव क्रान्ति के जरिए हटाया नहीं जाता, तब तक स्वतंत्रता मृगमरीचिका ही रहेगी। न इसकी हमें उम्मीद करनी है कि मौजूदा परिस्थिति को बहस, समझौते और कूटनीति के कौशल से कोई भी बदल सकेगा।

अस्तु, हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं—इसे मैं दुहराना चाहता हूँ—कि ब्रिटिश के वैधानिक प्रस्तावों को स्वीकार कर लेने पर स्वतंत्रता की लड़ाई का अन्त नहीं हो जाता।

यह लड़ाई चलती रहेगी। वस्तुतः इस जंग का नक्शा और दायरा ज्यादा गहरा और विस्तृत होगा। आजादी की लड़ाई के साथ राष्ट्रीय एकता तथा रोटी की लड़ाई का भी गठबन्धन हो जायगा।

ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावों को स्वीकार कर लेने पर ऐसी ताकतें अपना सर उठाएँगी जो राष्ट्रीय एकता के लिए घातक होंगी। यह एक आम ख्याल है कि ब्रिटिश सरकार ने जो एक चीज हिन्दुस्तान को दी है वह है देश को

एकता के सूत्र में बाँध देना। इसलिए अब यह आम शिकायत हो गई है कि वे अपनी इस उज्ज्वल कृति को स्वय नष्ट करने पर उतारु हैं। इस धारणा से बढकर भ्रमसूलक कोई दूसरी चीज नहीं हो सकती। एकता की स्थापना करना तो दूर रहा, अंग्रेज हमेशा हमारे बीच फूट पैदा करने की भरपूर कोशिश करते आये हैं। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों को एक दूसरे से और हरिजनों को दूसरे हिन्दुओं से अलग करने में कुछ उठा नहीं रखा है। सिक्खो को एक अल्पमत जमात बनाने का, देशी रियासतों को देश के और भागो से अलग करने का और देशी नरेशों को प्रजा के खिलाफ उभाड़ने का उनका प्रयत्न रहा है। जमीदारो को बृटिश हुकूमत का एक स्तभ बनाने की, और पूजीवादी और मध्य वर्गों को रिशवत देकर मुल्क के दुश्मन बनाने की उनकी कोशिशें रही हैं। यानी, एक शताब्दी के शासन काल मे उन्होंने सारी कोशिशे इस बात के लिए कीं कि बृटिश हुकूमत ज्यो ज्यो कमजोर पड़ती जाय देश में अशान्ति और फूट फैले। जो एकता बृटिश हुकूमत से स्थापित हुई है वह तानाशाही हुकूमत की एकता है, न कि जनता या राष्ट्र की एकता है। इस ढग की सच्ची एकता तो कांग्रेस ने कायम की है, और आज यही एकता खतरे मे है। इसलिए, राष्ट्रीय एकता की लड़ाई बृटिश प्रस्तावों को मान लेने के बाद एक खास अहमियत अख्तियार कर लेती है।

दूसरी बात यह है कि होनेवाले वैधानिक परिवर्तन आर्थिक और वर्ग-सम्बन्धी प्रश्नो को निश्चय ही सामने लाकर रख देंगे। स्वराज की शक्ल के प्रश्न या इस तरह के प्रश्न कि स्वराज्य किसके लिए होगा? दूर के किताबी प्रश्न न रहकर तात्कालिक और जरूरी प्रश्न हो जायेंगे, जिनका अविलम्ब उत्तर देना आवश्यक हो जायगा। और ये सवाल हमारी राजनीति के ऊपर सैद्धान्तिक दृष्टि से नहीं, बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से प्रभाव डालेंगे। यानी,

आर्थिक लडाई, जो हमेशा ही स्वतन्त्रता की लडाई का एक अभिन्न अग रही है, अब अधिक से अधिक महत्व हासिल करेगी।

मैं इसे साफ कर देना चाहता हूँ कि ये तीनो प्रकार की लडाइयाँ, जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया है, पृथक लडाइयाँ नही हैं, बल्कि जनता की एक ही आम लड़ाई के विभिन्न हिस्से या पहलू हैं। विभिन्न अवसरो पर इनमें से कोई एक-दूसरे से ज्यादा अहमियत हासिल कर लेता है, लेकिन वर्तमान वैधानिक योजना का ज्यों-ज्यों विकास होता जाएगा, ये तीनो समान महत्व रखने लगेंगे।

वर्तमान वस्तुस्थिति में जनता की यह आम लड़ाई विधान-परिषद की पृष्ठ भूमि में लड़ी जायगी। यह सम्भव है कि मध्यकालीन सरकार फिर बाद में यूनियन सरकार या प्रान्तीय (Group) सरकारों के नक्शे में लड़ी जाय।

ऐसा जान पड़ता है कि कांग्रेस, जिसके हम अग है इन सब प्रगतियों से सम्बन्धित होगी। इसलिये यह निश्चित जान पडता है कि यदि कांग्रेस लड़े भी तो उसकी यह स्वाधीनता, एकता और रोटी की सम्मिलित लड़ाई अब राजकीय (State) और वैधानिक तरीकों से ही लडी जाएगी। अभी ही काग्रेस एक वैधानिक पार्टी में परिणत की जा रही है। यदि यह रवैया अन्त तक रहा तो निश्चित जानिये कि काग्रेस अपनी उस लड़ाई में कुछ ज्यादा कामयाबी नही हासिल कर सकेगी। वैधानिक या शासन के साधनों को खास मौकों पर काम में लाया जा सकता है, लेकिन जिस परिस्थिति में हम आज हैं उसमें जनता की लड़ाई मुख्यतः व्यवस्थापिका सभा या सरकारी महकमों के दरवाजे के बाहर ही लडनी होगी।

इस लडाई को जारी रखना हमारा—आजादी के सभी सिपाहियो का—काम है।

(२)

किस तरह हम इस लड़ाई को चलायेंगे ? क्या आतकवाद के जरिए ? या छिटफुट हिसा के द्वारा ? आपस को खूनखराबी से ? डकैतियों के जरिए ? हरगिज नही। इस वक्त केवल एक ही तरीके से यह लड़ाई लड़ी जा सकती है, और वह है जनशक्ति का सृजन। जनशक्ति के निर्माण मे पहली बात तो यह है कि जनता में लडाई के लिए मनोवैज्ञानिक तैयारी करना, दूसरी, जनता की सस्थाओ को सगठित करना, जैसे किसान सभा मजदूर सघ, स्वयसेवक दल, विद्यार्थी और युवक सघ, ग्राम पचायत, जुलाहो की कोआपरेटिव (Co-oprative) सस्था और इस तरह की अनेको सस्थाएँ जिनसे जनता की सामूहिक शक्ति बढे और जिनके द्वारा जनता को अपनी शक्ति का परिचय हो। इन सब कामों के अतिरिक्त सबसे बड़ा काम यह है कि कांग्रेस को मजबूत और जानदार सस्था बनाया जाय और जनता को इसके प्रभावशाली सम्पर्क मे लाया जाय और इस सम्पर्क को ज्यादा-से-ज्यादा बढ़ाया जाय। लड़ाई की मौजूदा हालत को ध्यान मे रखते हुए मैंने जनशक्ति के निर्माण का पूर्ण चित्र नीचे हमारे कार्यक्रम (प्रोग्राम) के सिलसिले में दिया है।

राष्ट्रीय एकता के प्रसग मे "जनशक्ति" का क्या अर्थ है उसे मैं आपके सामने रखूँ। राष्ट्रीय एकता ऊपर से जबर्दस्ती लादी नही जा सकती। यह तो बुनियादी एकता—एकता जो नीचे से बनती आई हो—पर निर्भर करती है। इस तरह की एकता तब कायम होगी, या कम-से-कम इस एकता को कायम करने के प्रयत्न मे काफी सफलता तब प्राप्त होगी, जब मुसल्मानो के बीच राजनैतिक काम मिहिनत और सब्र के साथ किया जाय, जब आर्थिक या वर्ग सम्बन्धी-सस्थाओं को, जैसे किसान सभा, मजदूर सघ, जुलाहो का कोअपरेटिव बढाया जाय, जब कि हिन्दुओ मे सामाजिक सुधार सास्कृतिक

और मनोरंजनात्मक कार्रवाइयों द्वारा किया जाय, जब कि समाज की उन शक्तियों को सबल बनाया जाय जो स्वभावतः राष्ट्रीय एकता की सृष्टि करती है, जैसे देश के लिए मजबूत सीमा की आवश्यकता, या समग्र देश की आर्थिक आयोजना की आवश्यकता, या एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता, या और इस तरह की अन्यान्य आवश्यकताएँ। मुझे इसे बताने की जरूरत नहीं कि आजादी के सिपाहियों के लिए सबसे जरूरी यह है कि वे साम्प्रदायिक या जातीय भावनाओं या अहंकार से पूर्ण रूप से मुक्त रहें, और अपने व्यक्तिगत जीवन में मनुष्यमात्र की समानता के सिद्धान्त का अमल करें।

इस समय राष्ट्रीय एकता के लिए जिस जनशक्ति की जरूरत है उसका सर्वथा अभाव है। इस शक्ति का विकास हमारे कार्यक्रम में सबसे महत्व-पूर्ण है।

कहीं गलतफहमी न हो इसलिए मैं यह बता देना चाहता हूँ कि जन-शक्ति के निर्माण-कार्य को भिन्न-भिन्न विभागों मे नहीं बाँटा जा सकता, यानी, एक खास मकसद के लिए जिस जनशक्ति की आवश्यकता पड़ती है उसे दूसरे मकसदों से अलग नहीं किया जा सकता। राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक शक्तियाँ एक-दूसरे के साथ अभिन्न रूप से घुल-मिल गई हैं और उन्होंने एक होकर जनता के विशाल आन्दोलन का रूप धारण किया है।

(३)

हमारा आजका क्या कार्यक्रम है उसे बताने के पूर्व मुझे आजादी के सिपाहियों के संगठन के सम्बन्ध में अपनी और, मुझे यह बताते हुए खुशी है, अपने ज्यादातर साथियों की भी राय आपके सामने रखनी है। अगस्त क्रान्ति के जमाने में हमलोगों ने कांग्रेस के नाम पर काम किया। ऐसा करना ठीक ही था क्योंकि उस समय पूरे कांग्रेस की नीति लड़ने की नीति

थी। जो कांग्रेस-जन उस लडाई में नहीं आए थे जिन्होंने उसकी मुखालिफत की उन्होंने समूचे कांग्रेस का विरोध किया और इसके साथ विश्वास घात किया। आज की अवस्था भिन्न है। कांग्रेस की नीति आज लड़ने की या लड़ाई की तैयारी करने की नहीं है, वरिक वह समझौते और वैधानिकता की नीति है। इसलिए हमलोगों के लिए, जो अब भी लडाई और क्रान्ति की नीति को अपनाए हुए हैं यह सभव नहीं कि काग्रेस के नाम पर काम करें। लेकिन, साथ ही मेरे दिमाग में यह बात भी बिलकुल साफ है कि हमे काग्रेस को छोडकर इसके मुकाबले में दूसरी जन-सस्था नहीं खड़ी करनी है। ऐसा करने से देश की स्वतन्त्रता के हित मे भारी धक्का पहुँचेगा। इसमें सन्देह नही कि धीरे-धीरे हमारे काम करने के तरीको में और वर्तमान काग्रेस के नेतृत्व के तरीकों के बीच अन्तर क्रमशः बढता ही जायगा। लेकिन सस्था और नेतृत्व एक ही चीज नही। मौजूदा काग्रेस को बनाने में हमारे प्रयत्नो का और हमारे बलिदानों का उतना ही हाथ है जितना इसके अन्दर रहनेवाली और किसी दूसरी जमातों का है। हमे इसके नाम पर बोलने का उतना ही अधिकार है जितना किसी और को। काग्रेस देश की सबसे जबरदस्त और सगठित राष्ट्रीय और सामाजिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है, और जन-साधारण के दिमाग पर अभूतपूर्व और अपरिमित प्रभाव डाले हुई है। इस तरह यह जनता की लडाईका एक अनुपम साधन है। जब तक इसकी क्रान्ति के उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किए जाने को सभावना रहती है तब तक इसको छोड देना मूर्खता होगी। मेरा विश्वास है कि इसकी सभावना अभी मौजूद है। इसलिए मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही कि हमें काग्रेस के अन्दर रहकर काम करना है, इसे ज्यादा-से-ज्यादा मजबूत बनाना है, और अपने कार्यों और सेवाओ के जरिए यह कोशिश करनी है कि वह हमारे विचारो को अपना ले। यदि वर्तमान नेतृत्व काग्रेस को केवल

एक वैधानिक दल (Parliamentary) में परिणत करने की कोशिश में लगा रहे, जिसका कोई रचनात्मक कार्यक्रम न हो और जो बिलकुल सरकारी साधनों के जरिए जनता की सेवा या उसके ऊपर हुकूमत करती रहे, जो शनैः-शनैः नौकरशाही में बदलती जाय और जो इनाम और ओहदों के वितरण के जरिए कांग्रेस संस्था पर अपना कब्जा बनाए रखे, तो हमें निसन्देह उसके विरोध में आ जाना पड़ेगा। लेकिन, साथ ही साथ यदि हम अपना काम जनता में जोश और श्रद्धा से करते जांय, तो बेशक कांग्रेस को सर्वसाधारण जनता को हम अपने साथ ले सकेंगे और कांग्रेस को इसके वैधानिक खडहर से उद्धार कर सकेंगे।

हम इस तरह दो अहम नतीजों पर पहुँचते हैं (१) इस वक्त यह सम्भव नहीं कि हम अगस्त आन्दोलन के जमाने में जिस तरह कांग्रेस के नाम कर काम करते थे वैसा अब कर सकें। (२) हमें कांग्रेस के अन्दर रहकर ही काम करते जाना है। सवाल उठता है कि हमें क्या करना है जिससे हम सगठित रूप से काम कर सकें, और आजादी के तमाम सैनिकों को एक राजनैतिक और सैद्धान्तिक केन्द्र उपलब्ध हो। इस सवाल की अहमियत इस बात से और ज्यादा बढ जाती है कि हमारा कार्य केवल इसके अन्दर ही सीमित नही है। हमे मजदूर-सघ, किसान-सभा और इस तरह की अनेको सस्थाओं में, जो कांग्रेस के अन्दर नहीं हैं, काम करना है। यदि हमें केवल कांग्रेस के अन्दर ही काम करना होता तो सम्भव है कि हम एक ढीली-सीली जमात के रूप में रहते, लेकिन यदि हमें अपनी मौजूदा जिम्मेदारी को अच्छी तरह निभाना है तो एक संगठित केन्द्र का, जिसका हवाला मैं ऊपर दे चुका हूँ, हमें निर्माण करना हैं।

मैंने इस प्रश्न पर काफी गौर किया है, और इसके मुतल्लिक अपने

साथियों से सलाह-मशविरा भी किया है, और मैं इस नतीजे पर पहुचा हूँ कि जिस तरह के सगठन की आज हमें जरूरत है उसके लिए कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पहले से ही बनी बनाई एक बुनियाद है। मुझे विश्वास है कि उचित तब्दीलियों तथा पुनर्संगठन के बाद कां० सो० पार्टी हमारे काम लायक एक अच्छी चीज हो जायगी। का० सो० पार्टी के राजनैतिक कृत्यों का एक खासा अच्छा इतिहास है, और विरोधी आलोचक भी यह मानते है कि अगस्त-आन्दोलन मे इस पार्टी ने जो भाग लिया वह प्रशसनीय है। पुरानी पार्टी में कुछ सगठन की कमजोरियाँ जरूर थी, जिनमें कुछ कमजोरियाँ तो समाजवादी और वामपक्षी एकता के निस्बत पार्टी के प्रयोगों का परिणाम थी। इन कमजोरियो को हमे दूर करना है, और वे निश्चय ही दूर की जायेंगी। अगस्त के सिपाहियों से जो मेरा इधर सम्पर्क हुआ है उससे मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि यद्यपि कुछ ऐसे लोग भी उनमें हैं जो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रति अपनी पुरानी विरोध भावना को छोड़ नहीं सके हैं, परन्तु उनमे बहुत अधिक सख्या मे लोग का० सो० पार्टी की तरफ आशा से देखते हैं और उसके प्रति सद्‌भाव रखते हैं। इसलिए, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि कां० सो० पार्टी को आजादी के सभी सिपाहियो को जमात बन जानी चाहिए।

मेरे इस नतीजे पर पहुंचने का एक और भी कारण है जिसका जिक्र मुझे कर देना चाहिए। का० सो० पार्टी का ध्येय राष्ट्रीय आजादी के साथ समाजवाद की स्थपाना करना भी है। मेरा विश्वास है कि आजादी के सिपाहियों मे प्रतिशत पंचानवे सिपाही समाजवाद की तरफ काफी उन्मुख हैं। देश की स्वतत्रता के साथ यदि समाजवाद भी न हो तो उन्हे सन्तोष नहीं मिल सकता। इसलिए का० सो० पार्टी का कायम रहना उनके लिए और भी अभीष्ट है।

वामपक्ष की एकता

संगठन के सवाल के साथ वामपक्ष की एकता का सवाल जुटा हुआ है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में बहुत भ्रम फैला हुआ है। वामपक्षी एकता का सवाल संसार के पेचीदा सवालों मे एक है। मेरा ख्याल है कि जिस रूप में यह सवाल उठाया जाता है, उस रूप में इसका हल हो ही नही सकता। यदि वामपक्ष की एकता का मानी यह है कि तमाम वामपक्षी दलों और गिरोहों में एकता हो जाय तो यह असंभव है। जो लोग ऐसी एकता की बात करते हैं उन्हें पहले यह सवाल अपने से ही पूछ लेना चाहिए कि आखिर वामपक्ष में एकता की कमी आई ही क्यों। दूसरे शब्दो में, यह प्रश्न पूछना चाहिए कि विभिन्न वामपक्षी दल बने ही क्यों? मैं समझता हूँ कि इस बात पर यदि ठीक से गौर किया जाय तो पता चलेगा कि प्रारंभ में जिन कारणों से विभिन्न तथा संकीर्ण विचार उत्पन्न हुए उन्हीं के चलते बाद को एकता स्थापित नही हो पाती।

दुनियाँ के वामपक्षी आन्दोलन के तजुर्बे से यही मालूम पड़ता है कि वामपक्षी दल कुछ खास मौकों और कुछ समय को छोड़कर न तो आपस में एकता कायम कर सके हैं और न साथ काम ही कर सके हैं। इस ऐतिहासिक प्रमाण से हमलोगों को निश्चय ही सबक मिलता है।

अपने देश में भी हमारा अनुभव कुछ भिन्न नहीं हुआ है। दो अवसरों पर हमने वामपक्ष में एकता लाने की सख्त कोशिशें कीं। इन प्रयत्नों से उद्देश्य पूर्ति तो नहीं ही हुई, उल्टे मनोमालिन्य पैदा हुआ जिससे आज भी काम करने में रुकावट पहुँचती है। हमारा पुराना अनुभव बताता है कि हमारी पार्टी ने तो ईमानदारी से अपने दरवाजे को वामपक्षी तथा समाजवादी दलों के लिए खुला रखा और इनकी तरफ मित्रता के हाथ बढ़ाए, लेकिन

इन लोगों ने पार्टी की इस नीति को अपना प्रभाव बढ़ाने, अपने मेम्बर बनाने और सेल (cell) बनाने "भीतर से खोखला करने" तथा और दूसरे ढग की चाल चलने—वे सभी बातें जो ससार भर में वामपक्षी की एकता के नाम में की गई हैं—का एक अवसर इसलिए जहाँ तक मेरा अपना ताल्लुक है मुझे वामपक्षी की तथाकथित एकता में विश्वास नहीं और मैं इस सम्बन्ध में और दूसरा प्रयोग नहीं करना चाहता । मैं समझता हूँ कि कहीं अच्छा तरीका यह होगा कि सभी वामपक्षी लोग अपनी अलग-अलग जमातों के लिए जो उत्साह रखते हैं उसे तथा सिद्धान्तों की कट्टरता को भूल जायँ और मिलकर एक बड़ी प्रशस्त जमात में आयें और वामपक्षी तथा समाजवादी की पार्टी कायम करें । कॉं० सो० पार्टी आज इसी तरह की पार्टी है । इसमें कुछ दोष निकालना सम्भव है लेकिन छिद्रान्वैषण से कहीं अच्छा है आपस में मिलकर काम करना, अपने सैद्धान्तिक कोणों को कम करना और अपने को ऐसे प्रशस्त नक्शे मे ढालना जिसमे सैद्धान्तिक मतभेद एक उद्देश्य एक साधन और एक आदर्श के नक्शे के नीचे दब जायँ । यदि हिन्दुस्तान में वामपक्षी तथा समाजवादी आन्दोलन को आगे बढना है तो यह विभिन्न जमातों के अनिश्चित तथा अस्थिर मेल से नहीं हो सकता । ये जमातें तो मेल हो जाने के बाद भी अपने पृथक अस्तित्व को सही बताना आवश्यक समझती हैं और एक साथ काम करते रहने पर भी नए मेम्बरो की भर्ती तथा एक पक्षीय प्रचार (प्रोपेगैण्डा) द्वारा अपनी अलग जमातों को मजबूत बनाने के लिए कार्यशील रहती हैं। वामपक्षी तथा समाजवादी आन्दोलन की उन्नति एक बड़ी पार्टी को सृष्टि से हो सकती है । कॉं० सो० पार्टी के अलावा मैं ऐसी कोई दूसरी पार्टी नही देखता जो यह काम कर सके। इसलिए मैं सभी सिपाहियो से अपील करता हूँ कि वे कॉं० सो० पार्टी को अपनी पार्टी बना लें। बहुत दूर तक बहुतो ने इसे अपना लिया है। मैं

दूसरो से भी ऐसा ही करने का अनुरोध करता हूँ । स्थानीय दिक्कतें, व्यक्तिगत तथा पुरानी विरोध भावनाएँ कुछ साथियों के सहयोग प्रदान करने में रुकावट डाल सकती हैं, लेकिन हम हर सिपाही को विश्वास दिलाते हैं कि हम यथा शक्ति इन दिक्कतों को दूर करेंगे और यह सम्भव कर सकेंगे कि ये साथी एक मजबूत संस्था बनाने मे सहयोग प्रदान कर सके ।

(४)

हमारा मौजूदा कार्यक्रम:

मैं इस जगह किसी विस्तृत राजनैतिक कार्यक्रम को नहीं रखना चाहता। बाद को, शायद पार्टी की नीति के बयान में, इसको बताने का अवसर होगा । यहाँ केवल मैं उस काम का, जिसे हमें तुरत शुरू कर देना है, खाका देना चाहता हूँ।

यदि भविष्य मे होनेवाली लड़ाई की तस्वीर हमारे सामने होती तो शायद हम अपने मौजूदा कार्यक्रम को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते । मेरे सामने जो तस्वीर है वह तो यह है पहले, साम्राज्यवाद को कुशल तरीकों से बिलकुल उखाड़-पुखाड़ देना; दूसरे इसके साथ साथ शहर और गाँवों मे आजाद सरकार की यूनिटें कायम करना और उनकी रक्षा का प्रबन्ध करना । इन स्थानीय आजाद सरकारों को मिलाकर अन्त में सारे हिन्दुस्तान का स्वतंत्र प्रजातन्त्र कायम होगा । इस नक्शे मे बृटिश सरकार से हर तरह का असहयोग तो निहित ही है । इसमे कांग्रेसी मन्त्रिमंडल को बृटिश सरकार के साथ शासन प्रणाली के भीतर से मोर्चा लेना पड़ेगा । इसके साथ-साथ हिन्दुस्तान भर में आम मजदूर हड़ताल भी करनी पड़ेगी । किसान जमींदारों की जमीन पर अपना हक कायम करेंगे । देशी रियासतों की प्रजा देशी नरेशों के विरुद्ध आन्दोलन शुरू करेगी । यह लड़ाई पहले की सभी

लड़ाइयों से—१९४२ की लड़ाई से भी—भिन्न इस बात में होगी कि इसके दर्म्यान, मेरी समझ मे, स्थानीय सरकारों का प्रादुर्भाव होगा जो बाद की और जिम्मेदारियों को भी निभायँगी। इस तस्वीर को भरा जा सकता है, लेकिन, मेरी समझ मे, उसका खाका ऊपर दिया जा चुका है।

इस तस्वीर को सामने रखकर मैं सक्षेप मे अपने मौजूदा कार्यक्रम का स्वरूप आपके सम्मुख रखता हूँ।

जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, हमारा फौरी मकसद आजादी के जग की तैयारी करना है। इस तैयारी के सिलसिले मे बहुत किस्म के काम करने की जरूरत पड़ेगी। इनमे कुछ ऐसे भी काम हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया नही जा सकता।

कार्यक्रम का उल्लेख करने के पूर्व मैं कार्यकर्त्ताओं के विषय में दो-एक बातें कह लेना चाहता हूँ। यदि मुझसे कोई पूछे कि इस वक्त हमारा सबसे मुख्य काम क्या है, तो मैं कहूँगा—कार्यकर्त्ताओं का चुनाव और उनकी शिक्षा। हमारी लड़ाई का जितना विकास हो चुका है उसमें अब केवल आन्दोलन (agitation) का जमाना खत्म हो गया। अब हम सचमुच क्रान्ति के दर्म्यान है, जिसमे हमारा सबसे मुख्य काम शासन-सत्ता को हस्तगत करना है। आज हमे बिलकुल दूसरे प्रकार के काग्रेसजन, दूसरे प्रकार के पार्टी मेम्बर चाहिए। गत महायुद्ध के पहले के ढग के काग्रेसजन या पार्टी-मेम्बर से अब काम नहीं चलने का। आज के क्रान्तिकारी को केवल वायुमंडल के निर्माण मे नही लगे रहना है, बल्कि उसे संगठन सम्बन्धी कार्य करना है। उसे रचनात्मक तथा और भी दूसरे प्रकार के कामो से परिचित होना है। उसे क्रान्तिकारी सस्था और जनता के बीच सबन्ध स्थापित करने का एक सबल माध्यम बनना होगा। यानी, उसे सिर्फ जनता मे क्रान्ति की भावना को ही नहीं भर देना होगा, बल्कि उन्हे इस बात का भी ज्ञान करा देना होगा कि

क्रान्ति मे उनका क्या स्थान और कर्त्तव्य होगा। उसे ईमानदार, निर्भीक, मिहनती, तथा अनुशासन में चलनेवाला सिपाही बनना होगा। प्रत्येक कार्य-कर्त्ता हर काम को नहीं कर सकता, इसलिए आम तालीम के अलावा, चुने हुए कार्यकर्त्ताओ को उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार खास काम मिलना चाहिए, जैसे मजदूर संघ का काम, गाँव सम्बन्धी काम, प्रेस और प्रकाशन सम्बन्धी काम, सर्वे (Survey) का काम इत्यादि।

हमारा देश बहुत बडा है। इसलिए विशेष अवस्था में यह सम्भव नही हो सकता कि एक केन्द्र से देश के विभिन्न हिस्सों में फैले हुए क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं को आदेश भेजा जा सके। इसलिए यह आवश्यक है कि स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को ऐसी शिक्षा दी जाय कि राष्ट्र की सकटावस्था में वे स्वय अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर सके।

कार्यकर्त्ताओ को कार्यों तथा अध्ययन और बहस मुबाहिसों के जरिए शिक्षा मिलनी चाहिए। शिक्षा के दूसरे भाग, जैसे अध्ययन और बहस-मुबाहिसे के लिए स्थायी या अस्थायी अध्ययन कैम्प और स्कूल खोलने की जरूरत पड़ेगी। इसके लिए शिक्षक और साहित्य दोनो की आवश्यकता होगी।

कार्य-क्रम

अब मैं कार्यक्रम के विपय मे कहूँगा। समझाने के ख्याल से मैं उस कार्यक्रम को, जिसका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है, दो हिस्सो में बाटूँगा। आम कार्यक्रम और विशेष प्रकार का कार्यक्रम। दूसरी कक्षा मे मैं मजदूर सघ, किसान सभा, विद्यार्थियो तथा स्वयंसेवकों का सगठन, उत्पादन का सगठन, जैसे जुलाहों या ईख पैदा करने वालों की कोअपरेटिव (Co-oprative) सस्थायें सामूहिक खेती और इस तरह के और दूसरे कामो को रखूँगा। इस प्रकार के विशेष ढंग के काम से हमारी थोड़ी बहुत जानकारी रही है। लेकिन इन कामों को सिलसिले से करना है; और इन्हे दूसरे नये

क्षेत्रों मे भी करना है। शिक्षा, ज्ञान और अध्ययन की मदद से इन्हे सुचारु रूप से चलाना है। और, इन सबो के ऊपर हमारे जो क्रान्तिकारी मकसद और समाज-दर्शन हैं, उनसे हमारे कार्यक्रम को ओतप्रोत होना है जिससे वह शृंखलाहीन तथा छोटे-मोटे आन्दोलनो में न परिणत हो जाय, जिनका उद्देश्य तत्कालीन आर्थिक उन्नति रहता है, या वह केवल प्रदर्शनात्मक और आन्दोलनात्मक (agitational) ही न रह जाय। कोअपरेटिव या मजदूर-सघ या किसान आन्दोलन के बारे में हमेशा भय रहता है कि कही वह केवल आर्थिकवाद-ही मे न सीमित हो जाय। इसे हमें रोकना है। फिर, आप स्वयसेवक या विद्यार्थी आन्दोलन को लीजिये। यह काफी नहीं होता कि स्वय सेवक दल कवायद और शारीरिक व्यायाम, जन-समूहों का नियत्रण और प्रदर्शन में ही अपने को सीमित रखे। प्रत्येक स्वयंसेवक को कुछ ऐसी चीजे जरूर मालूम होनी चाहिए, चाहे वे कितनी भी साधारण क्यों न हो, जिनके द्वारा वह समाज की सेवा कर सके। स्वयसेवको के अफसरो को कम-से-कम इतना तो अवश्य ही जानना चाहिये कि आने वाली क्रान्ति में उनकी मातहत के स्वयसेवको का स्थान और कर्तव्य क्या होगा? विद्यार्थियों की काग्रेस मुख्यतः केवल आन्दोलनात्मक ही रह गई है। यह काफी नहीं है। विद्यार्थी-काग्रेस को चाहिये कि वह विद्यार्थियों के बीच तथा उस समाज के बीच जिसमे विद्यार्थी रहते है, रचनात्मक कार्य प्रारम्भ करे, उदाहरणार्थ, शिक्षण कार्य (गरीबो के लडको को पढाना, बालिगों मे साक्षरता फैलाना, हिन्दुस्तानी प्रचार, सास्कृतिक कार्य, जैसे वाद-विवाद, नाटक, कलात्मक प्रदर्शन इत्यादि), स्वास्थ्य-सुधार, सर्वे का काम, मजदूर सघ या उस तरह के दूसरे कामो मे सहायता पहुँचाना, भ्रमणार्थ टोलियो मे निकल जाना, छुट्टियो में गावो में जाकर काम करना, विद्यार्थियों के सेवा-कैन्द्र स्थापित करना, इत्यादि।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस राजनैतिक दृष्टि से इस मुल्क में पिछड़ा हुआ प्रतीत हो रहा है। महायुद्ध के जमाने में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की राजनैतिक हालत जितनी पिछडी हुई देखने में आई, उतनी पहले कभी नहीं आई थी। इस जमाने में वह हिन्दुस्तान के मजदूरों का कोई राजनैतिक नेतृत्व नहीं कर सकी। जब देश में क्रान्ति की ज्वाला फैली हुई थी और बहुत सारे मजदूर इस क्रान्तिमे शरीक भी हुए थे, उस समय भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस किंकर्तव्य विमूढ़ रही और यह नहीं तय कर सकी कि इस युद्ध में वह क्रान्ति के पक्ष में या साम्राज्यवादी ताकत के साथ है। मुख्यतः भारतवर्ष की कम्युनिस्ट पार्टी के विश्वासघात का यह परिणाम था। ट्रेड यूनियन कांग्रेस की इस राजनैतिक अकर्मण्यता को दूर करना आवश्यक है और ट्रेड यूनियन आन्दोलन को क्रान्तिकारी जंग के अनुरूप बनाना है जिससे मजदूर इस जंग में अपना उचित हिस्सा ले सकें।

किसान आन्दोलन भी आज छिन्न-भिन्न है, और इसका भी श्रेय ज्यादातर कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति को ही है। किसान आन्दोलन के उन टुकड़ों में, जो राष्ट्रीय लड़ाई के साथ रहे हैं, एकता स्थापित होनी चाहिए और तमाम आन्दोलन को एक नए सिरे से सगठित करना चाहिए।

उत्पादकों की को-अपरेटिव और सामूहिक खेती इन दोनों की तरफ मैं आपका ध्यान आकृष्ट करता हूँ। एकाध जगह इस ढग के काम का प्रारम्भ शायद हुआ हो, लेकिन आम तौर पर यह काम हमारे लिए नया है। जहा कहीं ठीक कार्यकर्त्ता मिल जावें और वस्तुस्थिति भी अनुकूल हो, वहा उस दिशा में काम शुरू हो जाना चाहिए।

मैं पहले कह चुका हूँ कि राष्ट्रीय एकता के लिए जिस जनशक्ति का निर्माण करना है वह हमारे कार्यक्रम में बहुत ऊँचा स्थान रखता है। मैं फिर

उसको दुहराना चाहता हूँ और आपका ध्यान, जो कुछ मैं इसके विषय मे कह चुका हूँ, उसकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ ।

मैंने यहाँ विशेष कार्यों की पूरी सूची नहीं दी है । उपरोक्त सूची तो मिसाल के तौर पर है । इनके अलावा औरतों के बीच काम करना विशेष प्रकार के कार्यों मे से एक है । कोई ऐसा व्यक्ति जो इस ढग के काम की ज्यादा जानकारी रखता हो, आपको इसके विषय में बाद मे बतायेगा । दूसरे उदाहरणो को लीजिए, तो गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के वे मद हैं जिन्हें हम शुरू कर सकते हैं, जैसे अस्पृश्यता निवारण, मद्य निषेध, गाँवो की सफाई, बुनियादी तालीम (Basic Education) इत्यादि । सक्षेप मे, न तो काम की कमी है, और न कमी है जनता की सेवा करने, उन्हे सगठित एव शिक्षित करने के साधनो की । यदि कमी है तो ऐसे कार्यकर्त्ताओं की जो इस काम को अच्छी तरह कर सकें ।

अब मैं आम ढग के कामों के बारे मे कुछ कहूँगा । इस तरह के काम मे मैं सब से ऊचा स्थान काग्रेस के काम को देता हूँ, यानी, काग्रेस को सुदृढ़ और लोकप्रिय बनाना । आज जो काँग्रेस का प्रभाव लोगों पर है, वैसा पहले कभी भी नहीं था । लेकिन आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि काग्रेस की सस्था मृतप्राय हो गई है, और वैधानिक कार्यक्रम के चलते इसके अन्दर बहुत सी बुराइयाँ आ गई हैं । हमारा पहला काम यह होना चाहिए कि काग्रेस कमीटियों को सजीव बनावें और उनके और जनता के बीच के सम्बन्ध को फिर से कायम करें । इसके अलावा हमे सदैव सतर्क रहना चाहिए, और काग्रेस के भीतर की सब प्रकार की बुराइयो को दूर करने के लिए कटिबद्ध रहना चाहिए ।

काग्रेस कमीटियो को सजीव बनाओ—यह वाक्य दुहराते दुहराते पुराना पड़ गया है । इसलिए मुझे शायद इसके अर्थ का खुलासा कर देना चाहिए ।

यह तो स्पष्ट ही है कि काग्रेस कमीटियो मे तभी जीवन का सचार हो सकता है जब अखिल भारतीय काग्रेस कमीटी तथा प्रान्तीय काग्रेस कमिटियां रास्ता दिखायें। इन कमीटियों का यह काम होना चाहिए कि वे समय समय पर आदेश भेजें कि फला काम निश्चित समय के भीतर होना चाहिए जसे किसी सर्वे (Survey) का काम, अस्पृश्यता निवारण या साम्प्रदायिक मेल, बालिग साक्षरता, गल्ले का बंक, गाँवों में स्वयंसेवकों की भर्ती इत्यादि। इन ऊपर की कमीटियों को चाहिए कि कार्यकर्त्ताओं के लिए समय समय पर इस तरह का साहित्य तैयार करें जिससे उनको अपने रोजमर्रे के काम में और अपनी समस्याओं को समझने में मदद मिले। इन कमीटियों को अनुसधान (Research) करना चाहिए और राजनैतिक योजना तैयार करनी चाहिए। मैं नहीं समझता कि काग्रेस को मेरे उपरोक्त कार्य क्रम को तथा उन कामो को, जिनका उल्लेख मैं नीचे कर रहा हूँ, पूर्ण रूप से अपनाने में कोई दिक्कत होगी। लेकिन, मैं नहीं कह सकता कि कब तक ये कमीटियां इस कार्यक्रम को अपनायेंगी, या कभी इसे अपनायेगी भी या नहीं। इसलिए जहा कहीं भी काग्रेस कमीटियों के जरिए हम काम कर सकते हैं वहा हमको चाहिए कि इस समूचे प्रोग्राम को उनके द्वारा कार्यान्वित करावें। लेकिन जहा यह सम्भव नहीं हो, वहा हमें अपनी पार्टी की शाखाओं की मदद से इस कार्य क्रम को अमल में लाना पड़ेगा। पार्टी की इन शाखाओं का यह भी कर्त्तव्य होना चाहिए कि उनके इस कार्यक्रम मे और दूसरे नये आजादी के सिपाहियों को शरीक करें।

आमतौर के कार्यक्रम के विषय में और ज्यादा कहने के पहले मैं चाहता हूँ कि इसका अर्थ समझा दू। हमारे विशेष प्रकार के कार्य का सम्बन्ध जनता की विभिन्न जमातों तथा वर्गों के साथ है। लेकिन जब हम समूचे समाज को लेते हैं, जैसे एक गाँव या शहर, शहर का एक महल्ला और उसमें रहने

वाली तमाम जनता के बीच जो हमें काम करना है उसके बारे में सोचते हैं, तब हम आम कार्यक्रम के बारे में सोचते हैं। किसी गांव में, उदाहरणार्थ, यदि हम किसान सभा कायम करें या किसी शहर मे मजदूर संघ, तो यह विशेष प्रकार का कार्य होगा। लेकिन, यदि हम समूचे गांव या शहर को एक मानकर उसके मुतल्लिक अपना कार्यक्रम बनाएँ, तो वह कार्यक्रम आम कार्यक्रम होगा।

पहले हम गांव के काम को लें। हमारा अन्तिम ध्येय, मान लीजिए छः महीने काम करने के बाद, ग्राम-राज्य कायम करना है। ग्राम-राज्य एक खुदमुखतार गांव है, वह एक प्रजातंत्र है, न कि सिर्फ एक पंचायत। इस प्रकार के ग्राम-राज्य की रचना ग्राम वासियों को ही खुद अपनी शक्ति से, न कि सरकारी एजेन्सियों द्वारा करना है। जिस तरहके ग्राम-राज्य की मैं कल्पना करता हूँ उसमें विदेशी राज्य अनावश्यक हो जायगा, और क्रान्ति के समय में ग्राम राज्य मुकाबिले और लड़ाई के केन्द्र हो जाएंगे, और भारतीय प्रजातन्त्र के निर्माण में ईंट का काम करेंगे।

ग्राम-राज्य कायम होने के पहले रचनात्मक कार्य की बहुत जरूरत होगी। मैं इसके लिए निम्नलिखित कार्यक्रम आपके सामने रखता हूँ।

(१) कांग्रेस सदस्यों की भर्ती करना। प्रत्येक बालिग ग्रामवासी को मेम्बर बनाने की कोशिश होनी चाहिए।

(२) सांस्कृतिक केन्द्र खोलना चाहिए, जहां अखबार पढ़े जाय और दूसरे इस तरह के काम हों जैसे, बालिग साक्षरता, नाटक, ग्रामगीत, अध्ययन के पुस्तकालय, पोस्टर, खेती सम्बन्धी सलाह इत्यादि।

(३) सेवादल तथा अखाड़ा खोलना चाहिये।

(४) व्यावहारिक ढंगों से कुआं, तालाब, नहर बांध इत्यादिके सवालों को हल करना।

(५) स्वावलम्बन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना।

(६) अस्पृश्यता निवारण।

(७) साम्प्रदायिक मेल।

(८) मद्यनिषेध।

(९) गाँवों की अवस्थाओं का अध्ययन और सर्वे (Survey)।

(१०) गल्ले के बंकों को खोलना।

(११) समीपवर्ती गाँवों में प्रचार कार्य के द्वारा जन जागरण पैदा करना।

(१२) को-अपरेटिभ (सहयोग पद्धति) से खरीद विक्री का प्रवन्ध करना।

(१३) स्त्रियों और बच्चों के बीच काम करना।

उस गाव में जहाँ ईमानदार और एकनिष्ट कार्यकर्त्ता इस तरह के काम करके उस गाव के निवासियों का सहयोग प्राप्त करने मे सफल हुए हैं, वहाँ छः महीने के अन्दर ही ग्राम राज्य का कायम होना सम्भव है। इस तरह गावों में सामूहिक खेती और सहयोगमूलक (Cooperative) उद्योग-धंधों का कायम होना सम्भव है।

इस तरह के काम के लिए अच्छे से अच्छे कार्यकर्त्ता की आवश्यकता है, और यथेष्ट सख्या मे। यह काम हिन्दुस्तान के आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन की जड़ों से सम्बन्द्ध है और इसमें रचनात्मक तथा क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ निहित हैं।

शहर के बीच काम करने के लिए भी हमारे सामने इस तरह की तस्वीर है। शहरों में मुहल्ले मुहल्ले को लेकर हमें काम करना है। मुहल्लों मे एक या अधिक केन्द्रों के जरिए हमको उसी प्रकार के रचनात्मक कार्य करना है, जैसा कि गावों में। शहर मे वहाँ की आवश्यकता के अनुकूल ऊपर गावों के

लिए वताए गए कार्यक्रम में तब्दीलियाँ करनी पड़ेंगी। इस कार्य में हमारा ध्यान इस बात में होना चाहिए कि हमारा काम वहाँ के गरीव तवकों से ज्यादा सम्बन्ध रखे। विद्यार्थी काग्रेस के कार्यशील मेम्वरों को इस काम में शरीक करना चाहिए।

इस कार्यक्रम को विस्तार पूर्वक वताया जा सकता है, लेकिन उदाहरण के तौरपर ऊपर वताए गए कार्यक्रम काफी है। स्थानीय जिम्मेदारी और वहाँ के अनुभवों के बलपर इस कार्यक्रम में छाट-काट किया जा सकता है। मैं अव इसे आपके सामने रखता हूँ और उम्मीद करता हूँ कि यह कार्यक्रम उपयोगी साबित होगा।

समाप्त करने के पहले मैं फिर एक बार आपका ध्यान हमारे केन्द्रीय क्रांतिकारी मकसद की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूँ। याद रहे, एक ही काम अलग-अलग ढग पर और अलग-अलग नीयतों से किया जा सकता है। हमारे काम के पीछे हमारा जो मुख्य ध्येय है वह हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए और उसे क्रान्ति के साधन में परिणत करना चाहिए।

आपका साथी

जयप्रकाश नरायण

अमेरिका के अफसरों और सिपाहियों के नाम—

[जिस समय जयप्रकाश हजारीबाग सेन्ट्रल जेल से भागकर बाहर आये और क्रान्ति का सचालन-सूत्र अपने हाथों में लिया, उस समय अमेरिका के फौजी दस्ते, हिन्दोस्तान को जापान से बचाने के लिए, देश के कोने-कोने में तानात कर दिये गये थे। कई जगहो पर अगरेजी साम्राज्यवाद ने उनसे अगस्त-क्रान्ति को कुचलने का काम भी लिया। अगरेजो के इस कुचक्र से अमेरिकन फौज को बचाने के लिए जयप्रकाश ने यह पत्र गुप्तरूप से प्रकाशित कराया और उनमे बँटवाया।]

दोस्तो,

मैं यह पत्र आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि मैं अपने देश के बाद सबसे अधिक प्रेम अमेरिका से ही रखता हूँ। मैंने आपके महान देश में अपनी जवानी का सबसे सुनहला समय और जिन्दगी के सबसे सुखमय सात साल बिताये। आपके देश मे मैं विद्यार्थी की हैसियत से गया था और वहाँ आपके विश्वविद्यालयो से ही नहीं, खेतों और कारखानों से भी बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त की जहाँ मैं अपनी पढाई के खर्चे का जुगाड़ करने के लिए मजदूरे की तरह काम किया करता था। कालिफोर्निया, इओवा और विस्कॉंसिन के विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करता हुआ, अन्ततः मैंने ओहियो मे उपाधि प्राप्त की। आपलोगो में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिन्होंने इन विश्व विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की है। ऐसे लोगो के प्रति मैं भाईचारे का अभिवादन भेज रहा हूँ।

आपकी सेवा मे यह पत्र इसलिए भी भेज रहा हूँ कि मैं भी आपलोगों की तरह उनलोगो मे से हूँ जो स्वाधीनता को प्यार करते हैं और उसके

लिए अपनी जान उत्सर्ग करने को उद्यत रहते हैं। एक समाजवादी की हैसियत से भी आपकी सेवा में यह पत्र प्रेषित कर रहा हूँ क्योंकि हमारा विश्वास है कि समाजवाद में ही लड़ाई का मूलोच्छेद हो सकता है और स्वाधीनता की सुरक्षा भी उसीके अन्दर सम्भव है।

एक और हैसियत से आपकी सेवा मे यह पत्र भेजना आवश्यक जँचा। आप जानते ही हैं, मैं अँगरेजी साम्राज्यवाद द्वारा हजारीबाग जेल मे कैद कर लिया गया था। किन्तु हर युद्धबन्दी को यह अधिकार है कि वह दुश्मन के शिकंजे से मौका पाते ही भाग निकले और मैं अभी-अभी उस अधिकार का उपयोग कर बाहर आया हूँ जिससे स्वाधीनता की लड़ाई मे सक्रिय भाग ले सकूँ। हमारे देश के दुश्मन ने—मेरा मतलब अगरेजी साम्राज्यवाद से है—यह घोषित किया है कि जो कोई मुझे पकड़ेगा या पकड़वा देगा उसे भारी इनाम दिया जायगा—मानों मैं कोई घोर अपराधी हूँ और मैंने न्याय को चरका दिया है। यदि किसी कुयोग से आपमे से कोई कभी दुश्मनों द्वारा युद्धबन्दी बना लिया जाय और मौका मिलते ही वह बाहर निकल आवे, तो निस्सन्देह ही आप उसे हीरो मानेंगे और उसकी अर्चना और अभ्यर्थना करेंगे। मैं अपने को हीरो कहलाने की धृष्टता नहीं कर सकता किन्तु मैं अपराधी भी नहीं हूँ। अपने देश की जनता की स्वाधीनता के लिए उद्योग करनेवाला एक तुच्छ सेवक ही अपने को मैं हमेशा मानता रहा हूँ।

आज ससार मे बहुत से लोग स्वाधीनता के लिए लड़ और मर रहे हैं। किन्तु मेरे विचार से स्वाधीनता का शब्द बहुत कुछ धुँधला, अर्थहीन और भ्रामक हो गया है। मेरे लिए यह शब्द कोई हवाई आदर्श नहीं है जिसपर सिर्फ रेडियो पर व्याख्यान दिये जायँ, बल्कि मेरे निकट वह एक ठोस पदार्थ के रूप मे उपस्थित है। स्वाधीनता का सबसे पहला और प्रमुख अर्थ मेरे सामने

यह है कि मेरा यह देश स्वाधीन हो जाय—मेरे देश के करोड़ों लोगों के हाथ अँगरेजों द्वारा डाली गई जंजीरों से मुक्त हो जायँ।

आपलोग स्वाधीनता के सैनिक हैं और संयोगवश हमारे देश के इतने निकट सम्पर्क मे आये हैं, इसलिए मेरी समझ में आपके लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि आप हमारी इस स्वाधीनता की लड़ाई का महत्व समझें और हमारे उद्योगों की सराहना करें।

नात्सियों के झूठे प्रचार से आपलोग अच्छी तरह अवगत हैं। डा० गोयबेल्स अपनी झुठाइयों के चलते असत्य का अवतार ही सिद्ध हो चुका है। किन्तु आपलोग एक झुठाई से अभी तक परिचित नहीं हो सके हैं जिसे साम्राज्यवादी झुठाई कहते हैं और जिसके आचार्य चर्चिल, हेलिफैक्स, एमरी और उनके अनेक अँगरेज साथी और शागिर्द हैं। यदि हिन्दोस्तान के बारे में जरा भी चिन्ता आपके मन में उदित हुई होगी, तो दो बड़ी झुठाइयाँ आपके सामने पेश की गई होंगी। उनमें पहली झुठाई यह है कि अँगरेज तो हिन्दोस्तान में हिन्दोस्तानियों को स्वराज्य की शिक्षा देने के लिए टिके हुए हैं और ज्योंही हम योग्य हुए कि वे यहां से बिना टिकट के ही रवाना हो जायँगे। दूसरी झुठाई यह है कि अँगरेज हिन्दोस्तान को आज ही आज़ाद कर देने को तैयार हैं बशर्ते कि हिन्दोस्तान के सभी लोगों में एका हो जाय।

इनसे बड़ी झुठाइयाँ इतिहास में कभी नहीं कही गई थीं। किन्तु इन झुठाइयों का प्रचारित करनेवाला न तो गोयबेल्स है और न गुस्ताख नात्सी शासक। इसलिए इन झुठाइयों से आपके कान भन्ना नहीं उठते। इन पर युग और परम्परा की मर्यादा मँढो हुई है और अँगरेजी संस्कृति की क़लई इनपर चढी हुई है। बड़े-बडे लाटों के मुँह से हम इन्हें सुनते हैं, बड़े-बडे अभिजात्यों की जिह्वायें इन्हें बकती हैं। कविता और साहित्य, ज्ञान और

विज्ञान ने इन झुठाइयों पर पवित्रता की मुहर लगा रखी है इस तरह कि हम उदार से उदार अँगरेजों के मस्तिष्क को भी इनसे मुक्त नहीं पाते हैं।

सिवा कुछ बददिमागों के, यह कहना भी मस्तिष्क का अपमान करना है कि साम्राज्यवाद की स्थापना पिछडे हुए लोगों को स्वराज्य की शिक्षा देने के लिए की गई है। आप भी इसे अच्छी तरह जानते हैं कि साम्राज्यों को स्थापना लूटने और चूसने के लिए की जाती है। और अगरेजों ने हमारे देश को जिस तरह लूटा और चूसा है, उसका ज्ञान आपको हो जाय, तो आप भी आश्चर्यचकित हो जायगे गर्चे आपके देश में आयव्यय का लेखाजोखा अरबों खरबों तक किया जाना साधारण-सी बात है।

अँगरेजों द्वारा गुलाम बनाये जाने के पहले हिन्दोस्तान एक आजाद देश था। स्वराज्य की शिक्षा उसे किसी देश से ग्रहण करने की जरूरत नहीं थी। इसमें शक नहीं कि हमारे देश में आपसी लड़ाइयाँ थीं किन्तु यदि इसीसे स्वराज्य की अयोग्यता सिद्ध की जाय, तो सारे यूरोप और उसके आस-पास के द्वीपों को स्वराज्य की शिक्षा पाने की सबसे अधिक जरूरत है जो कि हमेशा ही खूनी जग किया करते हैं—अच्छा हो कि उन्हे यह शिक्षा अमेरिका ही दे! पहले तो किसी की आजादी छीन लेना और फिर यह कहना कि हम तुम्हें आजादी की शिक्षा दे रहे हैं—इतनी बड़ी झुठाई है कि कोई साम्राज्यवादी देश ही ऐसा दुस्साहस कर सकता है।

और, अँगरेज हमे स्वराज्य की शिक्षा किस तरह दे रहे हैं। वे यहाँ पर १५० वर्षों से हैं। इससे कम ही समय में आपका देश ऐसी ही शिक्षा से अपने को मुक्त करके छोटे-मोटे असगठित उपनिवेशों के झुड से ससार का सबसे बड़ा और मजबूत राष्ट्र बन चुका है। आज तो आप हिन्दोस्तान मे हैं, इसलिये आप खुद ही देख सकते हैं कि हमारे अँगरेज शिक्षकों ने हमारे लिए क्या किया है? हमारे देश मे पढ़े-लिखों की सख्या सैकड़े दस से ज्यादा

नहीं हैं और देश के साधनों के विकास का अनुपात भी यही है। इस महायुद्ध के तीन सालों में हमारा देश युद्ध-सामग्रियों के उत्पादन में कितना आगे बढ़ सका है, यह भी आप देख ही रहे हैं। यह बात ऐसी शर्मनाक है कि अमेरिकन टेकनिकल मिशन ने, श्री ग्रैडी के नेतृत्व में, जो खोजढूँढ की है, उसकी रिपोर्ट तक हमारी सरकार प्रकाशित करने की हिम्मत नहीं कर पाती है। हमारी उन्नति और विकास के लिए हमारे अँगरेज प्रभुओं को इतनी चिन्ता है कि हमारे देश में राजनीतिक, आर्थिक या शिक्षा-सम्बन्धी मामलों में जो भी तरक्की हुई है, वह उनके विरोध के बावजूद और कड़वे आन्दोलन एवं संघर्ष के बाद ही। उनमें से सबसे कड़वा और आखिरी संघर्ष इस समय जारी है और हम अँगरेजी गुलामी की फँसरी को अपने गले से हटा कर ही दम लेनेवाले।

क्रिप्स की यात्रा और उसके उपहार की बातें बहुत की जाती हैं। किन्तु क्रिप्स जो उपहार हमें देने आया था, वह क्या था? लड़ाई के बाद नाम को स्वाधीनता और उसके दरम्यान कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं। हिन्दोस्तान को अँगरेजों के वादों से कोई दिलचस्पी नहीं रह गई है। हमें आजादी चाहिए और तुरत। इसका जवाब साम्राज्यवादी प्रचारक देते हैं—"ले लो आजादी, लेकिन उसके पहले एक तो हो जाओ।"

सबसे पहली बात तो यह है कि किसी देश में फूट हो, तो क्या दूसरे देश को हक हो जाता है कि उसे गुलाम बनाये रखे? यदि दो भाई लड़ते हों, तो क्या लुटेरों को यह हक हासिल हो जाता है कि उसके घर में घुस जायँ और लूट ले। अँगरेजों की स्थिति हिन्दोस्तान में लुटेरों की है। मान लीजिये कि हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ रहे थे, तो क्या यह उचित था कि अँगरेज हमारे देश पर चढ़ दौड़े और उसपर कब्जा कर लें। यह दलील है एक लुटेरा नहीं आता, तो दूसरा तो आता ही, क्योंकि घर में फूट थी,

ऐसी दलील लुटेरों के दिमाग मे ही पैदा हो सकती है। कोई भी भलामानस किसी अरक्षित घर में घुस कर चोरी नही करेगा और न यह दलील देगा कि मैं क्या करूँ, मैं चोरी नहीं करूँ तो दूसरा आदमी चोरी करेगा ही।

लेकिन इस दलील में भी कोई सच्चाई नहीं है। चाहे एका हो या फूट रहे—अँगरेज हमारे हाथो में यथार्थ शक्ति समर्पित करने को तैयार नहीं हैं। क्रिप्स-वार्ता के समय ही यह प्रगट हो चुका था कि यदि भारत में पूर्ण एका हो, तो भी वायसराय और उनकी कौंसिल का ही शासन रहेगा, भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी मत्रिमडल का सगठन नहीं हो सकता। सर स्टाफर्ड क्रिप्स ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वायसराय से मतभेद होने पर उनकी कौंसिल के सदस्यों को हट जाना पड़ेगा। दूसरे शब्दो में इसका मानी यह हुआ कि हमे जो आजादी क्रिप्स-मिशन दे रही थी वह आजादी थी उस दशा में इस्तीफा दे देने की आजादी जव कि मत्रियों की सलाह में, जो भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करते, और वाइसराय की राय मे, जो साम्राज्यवाद का प्रतिनिधित्व करता, कोई मतभेद उठ खड़ा होता। आप ही कहिये, कितनी अच्छी और वड़ी आजादी हमें मिल रही थी!

भारतीय आजादी और हमारी एकता मे कोई भी सम्पर्क नहीं है। यह नारा तो आँखो मे धूल झोंकने के लिए अँगरेजो ने उठाया है। सही सवाल तो यह है कि अँगरेज अपने साम्राज्य को खत्म करने के लिए तैयार हैं या नही? क्रिप्स मिशन ने इसका सीधा जवाब दे दिया—नहीं, नहीं! इसी जवाब को चर्चिल ने हाल ही मे दुहराया है जब कि उसने निर्लज्जता पूर्वक घोषित किया है कि मैं प्रधान मत्री इसलिए नहीं बना कि बादशाह के साम्राज्य को ही खत्म कर दूँ।

हिन्दुस्तान को आजाद करने की अँगरेजी इच्छा को जाच इस वात से होनी चाहिये कि वह अभी तुरत क्या करने को तैयार है। उसके उदार वादो से

हमें कुछ लेनादेना नहीं है। वादा करना आसान काम है और लड़ाई के जमाने में शासकों की ओर से वादों की बाढ आ जाती है। पिछली लड़ाई में जो वादे किये गये, उनका क्या हश्र हुआ, आप सभी जानते हैं। यदि लड़ाई के बाद एक अच्छी दुनिया बन सकी, तो शासकों के वादो के कारण नहीं होगी, बल्कि हमारे और आपके—ससार के साधारण आदमियो के—प्रयत्न से ही ऐसी दुनिया कायम हो पायगी।

अँगरेजी झुठाइयों के दो नमूने मैं आपके सामने और भी पेश करना चाहता हूँ। इसके लिए भारतीय सरकार की तरफ से आँख हटा कर हमें प्रान्तीय सरकारों की ओर आना पड़ेगा। अगरेजों ने हल्ला मचा रखा है कि आज भी कितने प्रान्तों पर भारतीयों द्वारा ही शासन किया जा रहा है। किन्तु इन स्व शासनों का क्या मूल्य है, आप जानते हैं? अभी अभी सिंध के प्रधान मंत्री श्री अल्लाबख्श को गवर्नर ने डिसमिस कर दिया है। उनका क्या कसूर था? उन्होंने 'खानबहादुर' की उपाधि अगरेजों को वापस कर दी और हिन्दोस्तान में आजकल जो नीति बरती जा रही है, उससे अपनी असहमति प्रगट की। सिर्फ इसी अपराध पर एक गवर्नर की इतनी जुर्रत होती है कि जनता और असेम्बली का पूरा विश्वास जिसने प्राप्त कर रखा है, उसे प्रधान मन्त्री को डिसमिस कर देता है। इसके अतिरिक्त बंगाल के बड़े सूबे मे उसके एक मंत्री, डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी, को इसीलिए इस्तीफा देना पडा कि वहाँ का गवर्नर दिन-ब दिन के काम मे हस्तक्षेप किया करता है। अपने एक बयान में उन्होंने बताया है कि किस तरह यह प्रान्तीय स्वतन्त्रता बिल्कुल ढोंग और तमाशा है।

अँगरेजों का कहना है कि ज्यों ही एकता हुई कि हम हिन्दोस्तान को आजादी दे देंगे। बगाल और सिंध मे तो यह एकता थी—क्योंकि वहाँ के मन्त्रिमंडल में सभी समूह के लोग शामिल थे और जो विरोधी पार्टी थी,

उसका रहना तो प्रजातंत्र के सफल सचालन के लिए आवश्यक है ही। फिर इन प्रान्तों में ही स्व शासन का उपभोग क्यों नहीं करने दिया गया? मुझे उमीद है कि अब अधिक उदाहरणों की जरूरत नहीं होगी इसे सिद्ध करने के लिए कि अँगरेज अपनी इच्छा से हिन्दोस्तान छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

ऐसी हालत में हम क्या करें? समूचा हिन्दोस्तान नात्सियों और फासिस्टों के खिलाफ है। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने और हमारी सोशलिस्ट पार्टी ने बार-बार यह घोषणा की है कि हम इस पाशविक और अनैतिक पद्धति के सर्वथा विरोधी हैं। इस महायुद्ध के शुरू होने के बहुत पहले से ही, जब तक कि बहुत से प्रजातन्त्र अपने लिए पथ चुन नहीं सके थे, राष्ट्रीय और समाजवादी भारत ने प्रजातन्त्री स्पेन और च्यांग काईशेक के प्रजातन्त्री चीन के पक्ष में अपने को घोषित किया था और जर्मनी, इटली एव जापान के खिलाफ जेहाद बोल दिया था। यदि हिन्दोस्तान आज़ाद होता तो इस अन्तर्राष्ट्रीय सकट में उसका शानदार हिस्सा हुआ होता और उसके हस्तक्षेप से यदि यह महायुद्ध टल नहीं गया होता, तो एशिया में फैल तो नहीं ही पाता। स्वतन्त्र भारत और चीन किसी भी आक्रमणकारी देश के लिए बहुत बड़ी डरावनी शक्ति बन सकते हैं और यदि इन दोनों देशो को मिलकर काम करने का मौका मिला होता तो आधुनिक काल का इतिहास कुछ दूसरे ही ढग से लिखा जाता।

किन्तु जिस तरह हम फासिज्म और नात्सिज्म के घोर विरोधी हैं, उसी तरह साम्राज्यवाद के भी हम कट्टर दुश्मन हैं। हम इसके अन्दर रह नहीं सकते, हम इसे जड़मूल से उखाड़ फेंकने का निश्चय कर लिया है और उसमे डट गये हैं। जब ससार में जनता की स्वाधीनता के नाम पर एक महायुद्ध लड़ा जा रहा है, तब हम अपनी स्वाधीनता के लिए लड़े बिना रह नहीं सकते।

हम इसके लिए किसीसे कैफियत देने या क्षमा माँगने को तैयार नहीं हैं कि हम क्यों आजादी चाह रहे हैं और क्यों उसके लिए लड़ रहे हैं।

आपको इस बात की चिन्ता हो सकती है कि अंगरेजों से हम जो लड़ाई छेड़े हुए हैं उसके कारण संयुक्त राष्ट्रों को धुरी राष्ट्रों से लड़ने में बाधा पहुँच सकती है। यदि ऐसी बात हो, तो इस प्रश्न पर विचार करने की जिम्मेवारी सिर्फ हमारी ही नहीं है। संयुक्त राष्ट्रों को भी इसपर क्रियात्मक विचार करना चाहिये। हम किसी भी तरह संयुक्त राष्ट्रों को उलझन में रखना या उनके कामों में बाधा पहुँचाना नहीं चाहते। किन्तु हमारी आजादी की लड़ाई से ऐसा होता हो, तो इसमें हमारा चारा क्या है? यदि संयुक्त राष्ट्र उन्हीं आदर्शों के लिए लड़ रहे हैं, जिनकी उन्होंने घोषणा कर रखी है, तो हमारी आज़ादी की लड़ाई उन्हें मदद ही पहुँचायगी। यदि इससे उन्हें बाधा पहुँचती है, तो यह साबित होता है कि उनके युद्ध का आधार गलत है, उनके शब्दों और कामों में अन्तर है, उनके आदर्शों और व्यवहारों में भेद है। हमारी आजादी की लड़ाई ऐसी हालत में भी संयुक्त राष्ट्रों को मदद ही पहुँचायगी; क्योंकि वह उन्हें शब्दों और कार्यों में सामंजस्य लाने को बाध्य करेगी और यों एक न्यायपूर्ण शान्ति की ओर उन्हें ले जायगी।

इसलिए मैं आपसे, जो आज़ादी के ही सैनिक हैं, अपील करता हूँ कि आप हमारी आज़ादी की लड़ाई में मदद दें। यह मदद आप तीन तरह से दे सकते हैं। पहली बात—अँगरेजों ने हमारे खिलाफ जो फासिस्ट लड़ाई छेड़ रखी है, आप उसके काले धब्बे से अपने दामन को बचाये रखें। सुना है कि आपकी सरकार ने भी आपको ऐसी सूचना दी है कि आप दमन के काम में अँगरेजों की मदद नहीं करें। आप दूसरी मदद हमारी यह कर सकते हैं कि आप अपने देशवासियों, अपने नेताओं और अपनी सरकार को हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में सच्ची खबर और राय दीजिये। आप हमारे बीच हैं, इसलिए

आप हमारे सम्बन्ध में सच्ची खबरें साधिकार दे सकते हैं। अपने देश की सहानुभूति और सहयोग हमें प्राप्त कराकर आप उस आदर्श को सहायता पहुँचायेंगे, जिसके लिए आप जान तक क़ुर्बान करने को तैयार हैं। हमारी तीसरी मदद आपसे यह होगी कि आप अँगरेज सिपाहियों और अफसरों को भी हिन्दोस्तान की यथार्थ स्थिति के बारे में ज्ञान दें। अँगरेज सैनिक बड़े बहादुर होते हैं और यदि सत्य बातें उनके सामने रखी जायं, तो वे हमारे उद्देश्य की न्यायपरता समझने में चूक नहीं करेंगे। आज तो उनके दिमाग और दिल में ग़लत धारणा, जातिगत घृणा और हिन्दोस्तान के प्रति घोर अज्ञान भरा पड़ा है। इसलिए वे हमारी हानि पहुँचा कर अपनी और अपने आदर्श की ही हानि कर रहे हैं। ज्यादातर अँगरेज सैनिक श्रमजीवी वर्ग से आते हैं और वे स्वयँ भी साम्राज्यवादी शोषकों के शिकार हैं। उनके लिए यह आवश्यक है कि वे समझ जायँ कि हमारा उद्देश्य और उनका उद्देश्य भिन्न नहीं है, क्योंकि जब तक साम्राज्य टूटता और नाश नहीं होता तब तक अँगरेज़ जनता भी शोषण और गरीबी से मुक्त नहीं हो सकती। इँगलैंड में इसकी बड़ी चर्चा है कि महायुद्ध के बाद एक नया सामाजिक ढाँचा खड़ा करना चाहिये। अँगरेज सैनिकों का उस भविष्य पर अगाध विश्वास है, किन्तु सोचना यह है कि साम्राज्यवाद की पुरानी नींव पर नये समाज की भव्य इमारत क्या खड़ी की जा सकती है?

इसलिए आप अँगरेजों से कहिये कि यदि वे एक नया और अच्छा संसार बनाने के लिए लड़ रहे हैं, जहाँ धन और अवसर, शक्ति और मर्यादा, शिक्षा और संस्कृति एवं ज़िन्दगी के उत्तमोत्तम साधन सबके बीच में न्यायपूर्वक बँट सकें, तो वे सबसे बड़ा ग़लत काम यह कर रहे हैं कि वे एशिया महादेश को सबसे अधिक वेग से झकझोरने वाली आजादी की इस अनुपम लड़ाई को फासिस्ट ढंग से कुचल डालने के लिए निरीह बच्चों और

अबला नारियों पर गोलियाँ बरसाते और देशभक्तों के घरों को लूटते और उनमें आग लगाते फिरते हैं। आप उनसे कहिये कि हमारी लड़ाई उनसे नहीं है, हम उनकी कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहते, न हम अँगरेज जनता की ही कोई बुराई सोचते हैं। हमारी लड़ाई सिर्फ अँगरेजी साम्राज्य से है और हम उसे ही नष्ट करने में लगे हुए हैं; क्योंकि यह हमारी आज़ादी, खुशी और तरक्की का दुश्मन है। आप उनसे यह भी कहिये कि जब हम आज़ाद हो जायेंगे, तो उनके कंधे से कंधा भिड़ा कर संसार से सभी तरह के शोषणों और पाशविकताओं को हटाने के लिए लड़ेंगे—चाहे उसका नाम नात्सिज्म हो, साम्राज्यवाद हो या पूँजीवाद हो। तभी हम सब मिल कर एक नये संसार का एक नया ढाँचा बना सकेंगे। उनसे यह भी कहिये कि वे अपने दिमाग को खोलकर रखें और खुद सोचें। यदि वे अपने शासकों द्वारा प्रचारित प्रोपेगंडा के यों ही शिकार होते रहेंगे, तो उनकी लड़ाई और शहादत व्यर्थ जायगी; क्योंकि उनकी संतानों को यही विषैली, दुनिया मिलेगी, जहाँ अत्याचार है, वैषम्य है, निर्धनता है, कष्ट है, युद्ध है और शस्त्रीकरण करी दानवी प्रतिस्पर्द्धा है।

दोस्तो, संक्षेप में यही मेरी अपील आपसे है। मुझे पूरी उमीद है, यह आपके दिल में जगह पायगी।

आजादी की जय!

भारतीय इन्कलाब की जय!

हिन्दुस्तान के कोने से

जयप्रकाश नारायण

अपने विद्यार्थियों से

प्यारे दोस्तो,

मैं बयान नहीं कर सकता कि आजादी की इस आखिरी लड़ाई में फिर से आपकी बगल में आ खड़े होने में मैं कितनी खुशी महसूस कर रहा हूँ।

सबसे पहले मैं अपनी श्रद्धांजलि उन नौजवान देशभक्तों की स्मृति में पेश करना चाहता हूँ, जिनकी असीम वीरता और अनुपम शहादत ने हमारी राष्ट्रीय क्रान्ति के जीवत इतिहास में सुनहले पृष्ठ जोड़े हैं। उनका उदाहरण हमारे लिए एक अमर प्रेरणा बना रहेगा और उनके लिए एक फिटकार, जो विचलित हो रहे या पीछे हट रहे हैं।

उसके बाद आपने महान स्वाधीनता युद्ध में जो शानदार हिस्सा लिया है, उसके लिए मैं अपना हार्दिक अभिनन्दन आपके प्रति प्रेषित कर रहा हूँ। मैं शर्म से यह स्वीकार करता हूँ कि मैंने यह कल्पना नहीं की थी कि देश का विद्यार्थी-समूह इतना कर गुजरेगा। १९२१ में जो परम्परा विद्यार्थियों ने बनाई, वह ऊसर हो चुकी है, यह कल्पना भी अविश्वसनीय जँचती थी; किन्तु मेरा कुछ ऐसा ही विश्वास हो चला था। इसलिए जब आप बहादुराना

कार्रवाइयों से इतिहास की रचना कर रहे थे, मैं जेल की ठंडी दीवारों के अन्दर बड़े हर्ष और गर्व से दिन-ब-दिन की घटनाओं का अनुगमन कर रहा था। आपने इस खुली बगावत में जैसा हिस्सा लिया और जैसी कुर्बानियाँ कीं, उनके सामने १९२१ की घटनायें फीकी-फीकी जँचती हैं।

किन्तु, दोस्तो, यह समय, अपनी पतवार सम्हाल कर विश्राम करने या अपने कारनामों पर गौर करने का नहीं है। आज की समस्या यह नहीं है कि हमने कितना कर लिया; बल्कि देखना यह है कि हम अभी क्या कर रहे हैं और आगे क्या करने जा रहे हैं। इन्हीं प्रश्नों पर आपके सामने मुझे कुछ निवेदन करना है।

कुछ हफ्ते हुए, कालेज खुल गये हैं और आप अब अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए दिखाई पड़ते हैं। यदि मैं कहूँ कि यह समय पढ़ने या परीक्षा देने का नहीं, तो आप समझेंगे कि मैं चर्वित चर्वण कर रहा हूँ। किन्तु क्या रूस या चीन, ऑक्सफोर्ड या हार्वार्ड विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी ऐसी सलाहों पर इसी तरह सोचेंगे? आपके अभिभावकों या आपके विश्वविद्यालयों के कुलपतियों एवं दीक्षांत-भाषणकर्त्ताओं के लिए यह कहना साधारण बात है कि विद्यार्थियों का प्रमुख कार्य अध्ययन करना और उपाधि लेना है और उसके बाद ही उन्हें अधिक योग्य होकर राजनीति में प्रवेश करना है, जिसमें वे देश की अच्छी तरह सेवा कर सकें।

लेकिन, मैं कहता हूँ, इस तरह का सोचना या सलाह देना मढ़े दिमाग की निशानी है। साधारण समयों में विद्यार्थियों के लिए एक ही धर्म है कि वे पढ़ें और अपने व्यक्तित्व का विकास करें, जिससे वे योग्य नागरिक बन सकें और अपनी सर्वोत्तम योग्यता से देश की सेवा कर सकें। किन्तु राष्ट्रों की जिन्दगी में ऐसे समय भी आते हैं, जब व्यक्ति के विकास को इसलिए रोक देना पड़ता है कि सारा राष्ट्र जीवित रह सके और विकसित हो सके—जब

समाज की उन्नति की वेदी पर व्यक्ति का निर्भय और निष्ठुर बलिदान कर देना होता है। सोचिये तो कि रूस और चीन के विद्यार्थी इस समय अपने विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने में लगे हुए हैं या अपने देश के अस्तित्व और कीर्त्ति की रक्षा के लिए अपनी जान की कुर्बानी हँसते-हँसते चढा रहे हैं। सोचिये तो कि उन देशों मे क्या शिक्षकों और अभिभावकों को इस तरह की बातें कहने की हिम्मत भी हो सकती है और क्या उनकी ऐसी बातें बर्दाश्त भी की जा सकती हैं? क्या कैम्ब्रिज या कोलम्बिया के विद्यार्थियों को युद्धक्षेत्र में जाने से इसलिए रोका जा सकता है कि उन्हे पहले उपाधि प्राप्त कर लेनी चाहिए?

नहीं दोस्तो, नहीं। ऐसे वक्त आते हैं, जब व्यक्ति को जान देकर अपने देश को जीवित रखना और अपनी सभ्यता को विकसित करना पड़ता है। आज का वक्त ऐसा ही है। हमें भी आज अपनी जान देकर, तकलीफे सहकर, अपने को मिटाकर अपने देश को आजाद करना है, अपनी सभ्यता को फूलने-फलने का मौका देना है। इसलिए आप देशद्रोहियों और कायरों की बातों में न आये।

तब आप करें क्या?

अपने क्रान्तिकारी करतबों से आपने स्कूलों और कालेजों को बद होने को लाचार कर दिया। वे खुल रहे हैं यही आपकी हार है, हमारी हार है, हम सबकी हार है। आप क्यों लौट रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। आपने आजादी की वर्त्तमान लड़ाई का स्वरूप समझने में गलती की, ऐसा मैं किस तरह कहूँ? हमारी यह आखिरी लड़ाई सिर्फ प्रदर्शन या क्षणिक जोश की चीज नहीं। यह काफी गम्भीर और भयावनी चीज ठहरी और विजय छोड कर दूसरा इसका अन्त नहीं। इस बारे मे आप भ्रम में नहीं रहें।

कह नहीं सकता, आपका दिमाग किस तरह काम करता है; किन्तु यदि मैं आपकी जगह पर होता, तो अगस्त की घटनाओं के बाद स्कूल या कालेज में जाने का सपना भी नहीं देख सकता था। मैं अपने अनुभव से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि एक या दो साल कालेज से बाहर रहा जाय, तो उससे शिक्षा में कोई त्रुटि नहीं होती। १९२१ के असहयोग-आन्दोलन में एक साल मैं बाहर-बाहर रहा; किन्तु अमेरिका में पढ़ते समय भी कभी कभी महीनों, तो कभी साल-साल भर तक मैं कालेज से बाहर रहकर अपनी पढाई का खर्च जुगाता रहा। और, मैं आपसे यह कहते हुए आनन्द अनुभव कर रहा हूँ कि विश्वविद्यालयों में जितना मैंने सीखा, बाहर उससे कम नहीं सीखा। फिर हमारे देश की शिक्षा पद्धति इतनी अस्वाभाविक, इतनी भूलभुलैया भरी और जीवन की यथार्थता से इतनी दूर है कि यदि आप एक-दो साल के लिए उसे सलाम कर लीजिये और राष्ट्रीय जीवन के तूफान में अपने को डाल दीजिये, तो आपको लाभ ही लाभ हो।

मालूम होता है, कालेजों से निकलने के बाद सूनापन अनुभव कर रहे थे, कोई काम हाथ में नहीं होने से आपका मन ऊब रहा था। किन्तु, मैं तो देखता हूँ कि आज काम ही काम है—इतने काम कि हर आदमी के लिए ढेर का ढेर अनुभव हो। मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि यदि आप घर पर रहकर खेतीबारी में मन लगाये होते या कुछ बच्चों को पढाये होते या गाँव की सफाई में लग कर लोगोंको स्वस्थ और सुन्दर जीवन की ओर प्रेरित किये होते, तो देश की बड़ी सेवा आपसे हो गई होती। ऐसा करके आप स्कूलों और कालेजों को खुलने से रोक सके होते और यों आप दुश्मन की मदद करने से बच गये होते—क्योंकि इनका खुलना तो दुश्मन की विजय की सूचना है।

किन्तु आज का तथ्य यह है कि स्कूल और कालेज खुल गये हैं। मैं

अपने में वह विश्वास नहीं अनुभव करता कि आपसे कहूँ कि अब भी आप उन्हें खाली कर दीजिये, यदि उन्हे बद करा दीजिये। मेरे शब्दों का आपके लिए क्या वजन होगा, मैं नहीं जानता। लेकिन आपने जो किया है, उसके बारे में मैं आपको भ्रम में नहीं रखना चाहता। शिक्षणालयों में लौट कर आपने अपने को अपने प्रति और अपने नेताओं के प्रति बहुत छोटा और, मैं कहूँ, झूठा साबित किया है, तो आप बुरा न मानें। प्रारम्भ में आपके जिस लक्ष्य की इतनी सेवा की, इतना लाभ पहुँचाया, उसे ही आपने इस कार्रवाई द्वारा घायल कर दिया, नुकसान पहुँचाया। आपका रास्ता साफ है और खुला है—उसपर आप चलें या नहीं, आपकी मर्जी।

लेकिन जो लोग स्कूलों और कालेजों में रहना चाहते हैं, उनके लिए भी बहुत-से काम हैं। अपनी कमजोरियो के क्षणों में या बगावत कुचल दी गई, यह मानकर, आप इन शिक्षालयों मे लौटे हैं। किन्तु अब भी समय है कि आप सोच विचार करें। सबसे बडी भूल होगी ऐसा सोचना कि क्रान्ति दबा दी गई या उसकी धारा में पानी न रहा। "आजादी के सैनिकों के नाम"—अपने पत्र में मैंने अगस्त क्रान्ति के भूत, वर्त्तमान और भविष्य के बारे मे विश्लेषण किया है। उन बातों को दुहराना यहाँ फिजूल है, लेकिन दो बातों की ओर इशारा करना जरूरी है। क्रान्ति का पहला दौर सफल रहा; क्योंकि हिन्दोस्तान के बहुत-से हिस्सो से इसने अंगरेजी राज्य को उखाड़ फेंका। इसका विकास इसलिए नहीं रुका कि दुश्मन की बढ़ी ताकत उसका रास्ता रोक सकी। बल्कि इसलिए कि उसके पीछे जबर्दस्त सगठन नहीं था और न उसके सामने आगे का कोई चेतनापूर्ण कार्यक्रम ही था। इससे यही नतीजा निकलता है कि हमारा तुरत का काम यह होना चाहिये कि चढ़ाई के लिए हम अभी से सगठन, अनुशासन और कार्यक्रम पर ध्यान दें। हमारे पास खोने के लिए एक क्षण भी नहीं है—इसलिए इसमें जल्दी करना चाहिये।

तैयारी के हर क्षेत्र में आपकी सहायता की हमें आवश्यकता है। हमें गाँवों में और औद्योगिक केन्द्रों में, रेलवे में और खानों में, सेना में और सरकारी मुलाजिमों में काम करना है। हमे साहित्य का प्रकाशन एव प्रचार करना है, सम्पर्क और यातायात का प्रवध करना है, सैनिक दस्तों की शिक्षा दीक्षा के बारे में सतक रहना है, कारीगरों को विध्वस के कार्यों के लिए एकत्र करना है, और इन कामों के साथ शत्रु से कदम-कदम पर मुठभेड़ और छेड़खानी करते जाना है। केन्द्रीय कमाड के अधीन सगठन का एक जाल बनाने की कोशिश हो रही है। वर्तमान सम्पर्कों के आधार पर हम आपसे मिलेंगे और आपको योग्य कार्यों में लगावेंगे।

इन कामों में बहुत-से काम हैं, जिन्हे आप पढते हुए भी कर सकते हैं, जैसाकि कुछ लोग कर रहे हैं। मुझे आशा है कि दूसरी चढाई के वक्त भी आप अगस्त की ही तरह क्रान्तिकारी सेना की अगली पाँत में रहेगे। किन्तु इस चढ़ाई में दुश्मन के पैर तुरत और सदा के लिए उखड़ जायँ, इसके लिए जरूरी है कि आप गम्भीरतापूर्वक इन कामों में लग जायँ और संगठन को तुरत ही पुख्ता बना लें।

आपको बहुत काम करने हैं। इसलिए मैं आपका ज्यादा समय लेना नहीं चाहता। आपने हमें बड़ी बड़ी आशायें दिलाई हैं। इन आशाओं को पूरा करना आप ही का काम है। याद रखिये, संसार भर में आज नौजवान अपना हृदयरक्त अच्छे या बुरे उद्देश्यों के लिए प्रचुरता से उड़ेल रहे हैं। चालीस करोड़ मनुष्यों की आजादी से बढकर राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय, नैतिक या भौतिक दृष्टि से कोई दूसरा महान और पवित्र उद्देश्य नहीं हो सकता। मानवता के पचमाश की स्वाधीनता का योद्धा बनकर आप आजादी, शान्ति और उन्नति की अन्तर्राष्ट्रीय सेना के अग्रसेनानी सिद्ध करेंगे। ससार के कल्याण की कुजी एशिया है और एशिया की कुंजी हिन्दोस्तान!

इसलिए, साथियो, बढते चलो। खून, आसू और मेहनत—हमारी तकदीर में यही लिखे हैं, किन्तु इन्हींसे हमारी मातृभूमि और हमारी जनता की आजादी प्रस्फुटित होगी। हम स्वतन्त्र हिन्दोस्तान की सृष्टि करेंगे, और एक नये ससार की।

इन्कलाब जिन्दाबाद

हिन्दुस्तान के कोने से *जयप्रकाश नारायण*

जयप्रकाश की विचारधारा

तीसरा खंड

सींखचों के अन्दर से

देवली के वे मशहूर खत

[जयप्रकाश जब देवली कैम्प जेल मे थे, अपनी धर्म-पत्नी श्रीमती प्रभावती से मुलाकात करते समय कुछ खत बाहर भेजना चाहा था। खत पकड़ लिए गये थे और उन्हे भारत-सरकार ने बडे धूम-धाम से प्रकाशित कराकर जयप्रकाश को हिन्दोस्तान का षड्यन्त्रकारी नंबर १ करार देने की कोशिश की थी। इन पत्रों को सरकार ने हिन्दोस्तान के प्राय. सभी पत्रों में छपवाया था और रेडियो द्वारा हिन्दोस्तान और ससार को विभिन्न भाषाओ मे ब्रॉडकास्ट भी कराया था।]

मैंने तुम्हारे पास कल रात में दो खत भेजे थे और उसमें बताया था कि यदि तुम्हे ये दोनों खत मिल जायॅ, तो तुम मुझे यह लिखना, बबुनी के घर में सब लोग आनद से हैं, मुरार में भी और डाल्टेनगज मे भी। किन्तु जब खडवा से तुम्हारा खत पहुँचा और यह इशारा नहीं था तो मुझे कुछ चिन्ता हुई। पता लगाने से मालूम हुआ कि जो आदमी तुम्हे खत देनेवाला था, वह डर गया और उसे तुम्हें न देकर अपने पास ही रख लिया। जब मैंने उसे धमकाया, तो उसने वह खत मुझे वापस कर दिया है, और इसीलिए तुम्हे मैंने फिर बुल-

चाया है। तुम्हें इस खत को लेकर बंबई जाना है। तुम पुरुषोत्तम से कहना कि वह मुझे उन हिदायतों के मुताबिक खत लिखा करें, जिनका निर्देश मैंने अपने खतों में किया है। तुम भी इस तरीके को समझ लो। कोई पुरानी मोटी किताब ले लो, जिसकी जिल्द मोटी हो। जिल्द को उखाड़ डालो, उसके भीतर खत को रख दो, फिर किताब पर वह जिल्द चढ़ा दो और भेज दो।

बसावनजी और दूसरे साथियों को भी ऐसा ही करना चाहिए, यदि वे मेरे पास कोई खास खबर भेजना चाहते हों।

दो या तीन दूसरे किताबों में प्रेमचदजी का एक उपन्यास भेजना चाहिए। इसी किताब में खत भेजना चाहिए। यदि दूसरी किताबों में चिट्ठी भेजी जाय तो उसके १०० वें पृष्ठ पर पेन्सिल से × का निशान बना देना चाहिए। मैं उस किताब की जिल्द फाड़कर चिट्ठी ले लूँगा, जिसपर वह निशान होगा।

बसावन को खबर करो; अब वो रूपोश हो जायँ। रूपोश होकर वह गुप्त पार्टी के लिए नौजवानों को भर्ती करें। इसके लिए पुराने तरीके से अर्थ सग्रह करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं है। शुक्लजी भी इस राय को पसद करते हैं।

गुप्त पार्टी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से अलग नहीं होगी; किन्तु उसका नाम अलग रखा जा सकता है।

गगा बाबू से कहना कि यदि देश से बाहर जाने का प्रोग्राम सम्भव न हो सके, तो अखिल भारतीय पार्टी के सयुक्त मत्री की हैसियत से काम करें। उन्हें प्रान्तों में दौरा करना चाहिए और ऑफिस को अच्छी तरह चलाना चाहिए।

हमलोगों ने इधर चार दिनो की भूख-हड़ताल की थी, जिसकी चर्चा मैंने अपने खत में की है। बबई मे इसकी कॉपी कर लेना और अपने साथ

बापूजी के पास ले जाना। इस सम्बन्ध में इस खत में तीन कागजात हैं। इन तीनों की नकल तुम अपने साथ ले जाना।

एन० एम० जोशी, एम० एल० ए० (केन्द्रीय) यहाँ आये थे। हमने उन्हें सब कुछ लिखकर दे दिया है। पुरुषोत्तम से कहना कि वह उनसे मिले और उसकी नकल भी बापूजी के पास ले आना। यदि वह पुरुषोत्तम को उसकी नकल न देना चाहें, तो बापूजी उन्हें इसके लिए लिख सकते हैं।

मैं यह खत लेकर आया था कि तुमको दे दूँ; लेकिन ऐसा नहीं कर सका। इसीलिए मैं इसे उसी आदमी के मार्फत भेज रहा हूँ। यदि यह खत तुम्हें मिल जाय, तो कल जब तुम मुलाकात करने के लिए आओ तो कहना कि रात मेरे सिर में दर्द रहा। इससे मैं समझ जाऊँगा कि तुम्हें मेरी चिट्ठी मिल गई।

अगर तुम गफ्फार खाँ साहब से वर्धा में मिल सको, तो उनसे कह देना, हकीम अब्दुस्सलम साहब, जो हजारा डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमीटी के सभापति हैं, यहीं पर दूसरे कैम्प में रखे गये हैं। उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी है, किन्तु उनके हाथ में दर्द होता है, जिससे गठिये का सन्देह हो रहा है। खान साहब कृपा कर सलम साहब के घर पर खबर कर दें कि वह यहाँ अच्छी तरह से हैं। सलम साहब की एक शिकायत यह है कि उनकी चिट्ठियाँ उनके घर पर दो-तीन हफ्ते के बाद मिला करती हैं। उन चिट्ठियों का सेन्सर यहाँ तो होता ही है, सरहद की सी० आई० डी० भी सेन्सर करती और काफी वक्त लगा देती है। इसके खिलाफ सरहद के पत्रों में समाचार और टिप्पणी निकलनी चाहिए। उनकी एक दूसरी शिकायत भी है, उन्हें सरहद का कोई भी अखबार पढ़ने को नहीं मिलता। अगर खान साहब से तुम्हारी मुलाकात न हो, तो बापूजी से एक पुर्जा उनके पास भेजवा देना।

पुरुषोत्तम के लिए

(क) *यहाँ की स्थिति*

यह डिटेन्शन कैम्प मुख्यतः कम्यूनिस्टों के लिए सुरक्षित है। इसलिए यहाँ पर ज्यादातर कम्यूनिस्ट ही हैं।

यहाँ दो कैम्प हैं—कैम्प न० १ और कैम्प नं० २ हैं; कैम्प नं० १ में पहले दर्जे के नजरबंद हैं और कैम्प न० २ में दूसरे दर्जे के।

कैम्प न० १ में १०४ राजबदी हैं, जो ज्यादातर यू० पी० से आये हैं। उनमे ६६ कम्यूनिस्टो के गिरोह में हैं और बकिये ३८ में ८ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के, ११ आर० एस० पी० के, ५ एच० एस० आर० ए० और १४ फुटकर लोग हैं, जो रायवादी, टैगोराइट, लेबर पार्टी, फारवर्ड ब्लौक आदि के हैं।

कम्यूनिस्ट गिरोह के ६६ नजरबंदों में ३५ जेल के बाहर से ही कम्यूनिस्ट पार्टी के मेम्बर हैं, बाकी लोग मेरे आने के पहले ही उनमें शामिल हो गये हैं। ऐसे लोगोमें प्रमुख हैं बी० पी० एल० वेदी, तिलकराज चड्ढा, कुलवीर सिंह और कुलतार सिह। पिछले दो नौजवान भगत सिह के भाई हैं, और ये सब पहले काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य थे।

कम्यूनिस्ट पार्टी के लीडरो में यहाँ भारद्वाज, अजय, मीरजकर, अहमद और डांगे कैम्प न० १ मे हैं।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं मे यहाँ गौतम हैं, जेतली हैं और मैं हूँ। बिहार के सभी साथी मेरे अतिरिक्त कैम्प न० २ में हैं।

आर० एस० पी० के नेताओं में योगेश बाबू और केशव शर्मा हैं।

एच० एस० आर० ए० एक छोटा-सा गिरोह है। उसमें अच्छे आदमी नही हैं और उनके बारे में कुछ विशेष कहना नहीं है।

कैम्प न० २ में ९० नजरबंद हैं, जिनमें ७२ कम्यूनिस्टों के गिरोह मे हैं। ६ या ७ राजनीति से कोई सरोकार नहीं रखते। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख लोगोंमे वहाँ योगेन्द्र शुक्ल, सूर्यनारायण, श्यामाचरण भर्तुआर आदि हैं। कुछ लोग स्वतन्त्र विचार के हैं और कुछ लोग फारवर्ड ब्लौक, अकाली, बब्बर अकाली और कांग्रेस आदि से सरोकार रखते हैं। जिस तरह कैम्प न० १ में ज्यादातर यू० पी० के लोग हैं, उसी तरह कैम्प न० २ मे ज्यादातर पंजाबी लोग हैं।

अब हम कम्यूनिस्ट पार्टी के गिरोह को देखे। इस सम्बन्ध मे दो प्रमुख बाते हैं। पहली बात तो यह है कि कीर्त्ति किसान पार्टी ने अपने को कम्यूनिस्टो मे विलीन कर दिया है। इसके पहले भी कई बार ऐसा हो चुका है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कैम्प से निकलने पर भी यह एकता कायम रहेगी। किन्तु आज तो वे घुले-मिले दीखते ही हैं। उनकी सख्या १२ है।

दूसरी बात यह है कि पंजाब के साथी कम्यूनिस्टों से जा मिले हैं। सागर, मगेराम वत्स, रिछपाल सिंह, ठाकुर गोविन्द सिंह और तीन दूसरे, जिन्हे आप जानते हैं, कैम्प न० २ मे हैं। इसमें सागर का बहुत जबरदस्त हाथ रहा है और हमारे दोस्त किशोरी ने भी उनका हाथ बँटाया है। क्योंकि यहाँ आकर उन्होंने लोगोंसे कहा कि हजारीबाग में मेरी भी कुछ ऐसी ही राय थी। पीछे चलकर किशोरी भी उनके गिरोह में चले गये। उनके बारे मे विशेष पीछे।

यह अफसोस की बात है कि मैं देवली में दो महीने पहले नहीं आ सका। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है कि घबराया जाय या उदास हुआ जाय। जबसे मैं यहाँ आया हूँ पंजाब के साथियों से मेरी बात चल रही है। उनमें सिर्फ ठाकुर गोविन्द सिंह को हमने सदा के लिए खो दिया है। बाकी

सब लोगोंने बताया है कि उनका यह निर्णय अंतिम नहीं है और जेल से छूटने के बाद हिन्दोस्तान और पंजाब के दोस्तों से मिलकर अतिम निर्णय करेंगे। तिलकराज, रिछपाल, वत्स, ये बड़े प्रमुख सदस्य हैं और ये सब कम्यूनिस्ट पार्टी से ऊब उठे हैं और उनलोगों ने तो तय कर रखा है कि जेल से बाहर जाते ही कम्यूनिस्ट पार्टी से अलग हो जाने की बात वे जोरों से उठायेंगे और उन सभी साथियों का विरोध करेंगे, जो कम्यूनिस्टो के साथ रहना चाहते हैं। कुलदीप, कुलतार और कैम्प नं० २ के और साथी भी इसी विचार के हैं। वेदी की स्थिति क्या है, मैं लिखना भूल गया। वह डांगे और रणदिवे से बहुत प्रभावित हुए हैं। कम्यूनिस्टों के साथ गहरी दोस्ती कर ली है। राजनीतिक दृष्टि से उनकी स्थिति सागर ऐसी है। किन्तु जहाँ सागर गहरा है, वहाँ वेदी छिछले हैं और उनमें विचारो की स्थिरता भी नहीं है। सागर कोई नया रुख लेने को तैयार नहीं तो जो कुछ उसने किया है उसका ज्यादा महत्व भी नहीं देते। इसमें सदेह नहीं कि पंजाब के साथियों का बहुमत जेल से अलग होने पर कम्यूनिस्टों का साथ छोड़ देने के पक्ष में है। मैंने सलाह दी है कि यहाँ उन्हें छोड़ दो। किन्तु जब तक मुंशीजी नहीं आते, तब तक कोई निर्णय नहीं हो सकता। हम मुशीजी के इन्तजार में हैं। मेरे साथ पंजाब के जो साथी हैं वे नहीं चाहते कि यहाँ उनके गिरोह मे फूट पड़े। ऐसा होने से बाहर जाने पर काम में कठिनाई होगी, ऐसी उनकी धारणा है। अब जो कुछ होना है, मुशीजी के आने पर ही।

मैं नहीं चाहता कि ये खबरें पंजाब या दूसरी जगहो के पार्टी मेम्बरों में फैलें। मैंने ये खबरें इसलिए दे दी हैं कि तुम होशियारी से जरूरत होने पर इस्तेमाल कर सको। तुम किस तरह करोगे, मैं नहीं जानता; किन्तु इसमें पूरी सावधानी रखनी चाहिए, इसकी ताकीद कर देता हूँ।

अब कुछ शब्द किशोरी के बारे में। उन्होंने यह अच्छी तरह साबित

कर दिया है कि उनमें आत्मविश्वास की पूरी कमी है। पंजाब के साथियों से पहले ही वह कम्यूनिस्टों के साथ हो गये। मुझे उन्होंने एक ही कैफियत दी कि वे अपने को अलग अलग रखना पसद नहीं करते थे। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया है कि उनका निर्णय अतिम नहीं है। किन्तु, मैं उनपर विश्वास नहीं करता। वह मुझसे एक बात कहते हैं और दूसरों से दूसरी। वह लोगोंमें यह भी प्रचार करते फिरते हैं कि जयप्रकाश कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को इसलिए पकड़े हुए हैं कि उनकी नेतागिरी बनी रहे। उन्होंने शुक्लजी पर भी बहुत दबाव डाला कि वे कम्यूनिस्टों से आ मिले। किन्तु शुक्लजी चट्टान की तरह अटल रहे। शुक्लजी की राजनीतिक सूझ और दृढता देखकर मेरी तो उनपर अन्यतम श्रद्धा हो चली है। किशोरी ने जो धोखा दिया है, उसकी खबर बिहार के साथियों को हो जानी चाहिए; किन्तु ऐसा न हो कि लाभ के बदले हानि ही पहुँचे।

कम्यूनिस्टों की चर्चा खतम करने के पहले यह कह देना जरूरी है कि उनका व्यवहार बिल्कुल शत्रुओं के ऐसा और बचपना लिये होता है। जब मैं यहां आया, तो उन्होंने मेरा स्वागत दिल खोलकर किया और अजयघोष आकर मुझे कम्यूनिस्ट पार्टी में शामिल होने के लिए दावत भी दे गये। तुम कल्पना कर सकते हो कि उनमें और मुझमे क्या बातें हुई। सबसे मजेदार बात तो यह रही कि अजय ने कहा कि लड़ाई शुरू होने के बाद हमने यह निर्णय किया है कि इस देश मे कम्यूनिस्टो को छोड़कर कोई भी वामपक्षी या समाजवादी नहीं है। इसलिए समाजवादी एकता या वामपक्षियों की एकता का कोई मानी ही नहीं रह गया। उन्होंने बताया कि अब हमारा नारा है— जनता की कम्यूनिस्ट पार्टी। एक चीज मैं भूल रहा था। कम्यूनिस्ट पार्टी के जो लोग मेरे कैम्प में हैं, सबके सब बच्चे हैं और बाहर उनका कोई महत्त्व नहीं है। कैम्प नं० २ में कीर्त्ति के पुराने सिक्ख लोग हैं।

अब हम आर० एस० पी० पर आवें। मेरे यहाँ आने के पहले उनका रुख संतोषजनक नहीं था। वे लोग अपनी पार्टी में लोगोंको भर्ती करना चाहते थे, इसलिए वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की निन्दा किया करते थे। सिर्फ डाक्टर जेतली अपनी जगह पर मजबूती से खड़े रहे। किन्तु, जब से मैं आया हूँ, उनका रुख बदल गया है। मैंने उनसे कहा कि हमलोगो में एकता होनी चाहिये; यहाँ और बाहर भी। तुम्हें याद होगा कि जब मैं बाहर था, प्रतुल बाबू से भी मैंने ऐसा ही कहा था। इस सम्बन्ध में मैं तुमपर यह स्पष्ट प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मेरे विचार से आर० एस० पी० को हमें अपने में मिला लेना ही है और इसकी पूरी संभावना है। बगाल मे उनके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। यह बात मैं बगाल के साथियों के बावजूद कह रहा हूँ। आर० एस० पी० के मिलने का मेरा मतलब यह है कि ये लोग कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो जायँ। पार्टी का कानूनी नाम सी० एस० पी० ही रहे। किन्तु उसकी एक गैरकानूनी शाखा भी हो, जो दूसरे नाम से काम करे। अब यह मेरा विश्वास हो चला है कि कम्यूनिस्टों के खिलाफ सफलता-पूर्वक खडे होने के लिए हमें एक गैरकानूनी सगठन करने और कुछ गैर-कानूनी कार्रवाईयाँ करते रहने की बडी जरूरत है। मैं चाहता हूँ कि बंगाल की आर० एस० पी० से सम्पर्क बढाया जाय और उनसे हार्दिक मित्रता का भाव रखा जाय।

एच० एस० आर० ए० के जो अच्छे लोग हैं, उनसे मैं सम्पर्क बढ़ा रहा हूँ और उनमें से दो तो हमारे साथ हो गये हैं।

जहाँ तक कैम्प की जिन्दगी और वर्गीकरण का सवाल है, कैम्प के सभी लोग, सिवा कम्यूनिस्टों के, हमारे साथ हैं।

कैम्प न० २ में कुछ स्वतन्त्र विचारवाले लोग हममे शामिल हो गये हैं। मैं खेल के मैदान में उनके लिए और अपने साथियों के लिए प्रातःकाल एक

क्लास किया करता हूँ। यहाँ आपको यह बताना जरूरी है कि दोनों कैम्पों के लोगोंको पहले मिलने का हुक्म नहीं था। किन्तु, एक महीने से यह को आज्ञा मिली है कि हम खेल के मैदान में भोर को ७ से ८ तक और शाम ६ से ९॥ तक मिल सकते हैं।

पडित धनराज शर्मा कम्यूनिस्टों से बहुत बिगड़े रहते हैं और मेरे क्लास में आते हैं। वह हम लोगोंके साथ मित्रता का व्यवहार रखते हैं, किन्तु अवधेश्वर आदि कुछ लोगोंके प्रति उनकी शिकायतें भी हैं। बिहार किसान सभा मे जो कुछ हो रहा है, उससे वे दुःखित हैं और इस बात पर हमसे सहमत हैं कि बाहर जाकर हमे एकता कायम करनी चाहिए।

(ख) कैम्प का जीवन

साधारणत यहाँ के सम्बन्ध में शिकायत की कोई बात नहीं है। हमलोग बैरिकों मे रहते हैं, जिनमे ४ या ५ बडे-बड़े कमरे हैं। हर कमरे में आठ-दस आदमियों के लिए जगह है। कुछ छोटे-छोटे कमरे भी हैं, जिनमें दो या चार आदमी रहते हैं। मैं जिस कमरे मे हूँ, उसमें १० आदमी रहते हैं।

जब मैं यहाँ आया, यहाँ की स्थिति गभीर हो रही थी। भूख-हड़ताल करने की तैयारियाँ जारी थीं। हमारे लोग और आर० एस० पी० वालों की भी यह राय थी कि कम्यूनिस्ट पार्टी वाले इस भूख-हडताल का इस्तेमाल प्रचार के लिए करना चाहते हैं। उनका कहना था कि वे इस भूख-हड़ताल मे तभी शामिल हो सकते हैं, जब कम्यूनिस्ट लोग यह विश्वास दिलावें कि यह भूख-हडताल तब तक नहीं तोडी जायगी, जब तक हमारी कम से कम मांगें पूरी नहीं की जातीं। किन्तु कम्यूनिस्ट माँगों के बारे मे गभीर नहीं थे, वे तो सिर्फ प्रदर्शन करना चाहते थे। इसलिए वे लोग अपनेको किसी माँग से

बांधना नहीं चाहते थे और न लड़ाई के बारे में वे गभीर थे। जब मैं आया, तो मैंने सलाह दी कि भूख हड़ताल का अल्टीमेटम देने के पहले कैम्प के अधिकारियों से समझौता शुरू करना चाहिए। समझौते के लिए कैम्प नं० २ के रोजाना ।=) भत्ते को बढ़ाकर ।।-) कर दिया गया, दोनों कैम्पों से मिलने की सहूलियत दी गईं, गर्मी के लिए खास कपड़े, पखे आदि के प्रबंध का वचन मिला। इन मांगों की स्वीकृति से तैयारी में कमजोरी आ गई; उधर बाहर से कम्यूनिस्टों को खबर आई कि तब तक भूख हड़ताल मत करो, जब तक स्कूल-कॉलेज खुल नहीं जाते और केन्द्रीय असेम्बली की बैठक नहीं शुरू हो जाती। इसका मतलब यह था कि वे तब तक रुके रहे, जब तक स्टुडेण्ट फेडरेशन और श्री एन० एम० जोशी उनके इस 'महान संघर्ष' के लिए प्रचार करने को तैयार न हो जायँ। शीघ्र ही भूख-हड़ताल का जोश-खरोश खतम हो गया।

किन्तु कुछ घटनाओं ने हमें भूख हड़ताल करने को बाध्य ही कर दिया, जिसमें कम्यूनिस्टों ने हमारा साथ नहीं दिया। हां, जब एक दिन तक हमारी भूख हड़ताल चल चुकी थी, तब उन्होंने अधिकारियों को सूचित कर दिया कि अब वे भी भूख हड़ताल शुरू कर देंगे। उनकी मांगें भी मामूली थीं और हमारी भूख-हड़ताल चल ही रही थी कि उन्होंने अपना अल्टीमेटम वापस कर लिया। इस तरह उन्होंने हमारे साथ विश्वासघात किया और जान-बूझकर हमें कमजोर करने की कोशिश की। किन्तु, अधिकारियों को हमारे सामने झुकना पड़ा, हमारी मांगें मजूर की गईं और पांचवें दिन हमने भूख-हड़ताल तोड़ी।

(ग) पार्टी का केन्द्रीय संगठन

ऐसा मालूम होता है, जबसे तुम पटना से लौटे, फिर न वहां गये और न रुपये ही भेजे। जब बिहार के साथ यह हालत है, जहां कि सबसे ज्यादा

काम होता है, तो दूसरे प्रान्त की और भी बुरी गत होगी। यह बहुत बुरी बात है। केन्द्र को चाहिए कि वह खुद अच्छी तरह काम करे और दूसरो से करावे। मेरी राय है कि गगा वावू को सयुक्त मन्त्री बना दो और उन्हें ववई मे ला रखो। मेरा ख्याल है, बदली हुई हालत मे उनके सम्बन्ध को दूसरी योजनायें त्याग दी गई होंगी।

प्रान्तीय शाखाओं को नियमित आर्थिक सहायता देना सबसे ज़रूरी है। तुम्हें यह इन्तजाम करना ही है।

(घ) पार्टी का प्रचार

अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति और कम्यूनिस्टों की स्थिति से फायदा उठाना चाहिए और अपने प्रचार-कार्य को जोरो से बढ़ाना चाहिये। यह सुनहला मौका है, इसे खोना नहीं चाहिये। बाहर के सभी साथियों को ज्यादा से ज्यादा इस ओर ध्यान देना चाहिये।

(ङ) हमारी राजनीतिक नीति

मैंने अखबारों में पढा है कि तुमने सत्याग्रहियों की सूची से नाम कटा लिया है। मैंने इसे पसद किया है। लेकिन तुम्हें कुछ ऐसा करना चाहिये कि पार्टी के राजनीतिक पथ को लोग समझे और चले और यह अनुभव करे कि सत्याग्रह के खेलवाड़ से मेरा यह पथ अधिक प्रशस्त है। मैं जोरदार ढग से यह सोचने लगा हूँ कि इस मौके पर हमे कुछ ऐसा काम करना चाहिये कि लोगोका ध्यान हमारी ओर आकृष्ट हो। हम कोई काम ऐसा न कर सकें सही, लेकिन हमें कुछ राजनीतिक महाजनी तो करनी ही चाहिये। यदि ऐसा करते हुये तुम में से ज्यादा लोग जेलो में चले जायँ, तो भी कोई परवाह की बात न होगी। इस सम्बन्ध में मुझे विहार की याद बार बार आती है।

किसान-सम्मेलन करने के बजाय कुछ चुने हुये क्षेत्रों में किसान-संघर्ष शुरू करना चाहिये या कुछ ऐसे काम, जो सिर्फ आन्दोलन न हो।

बिहार के अतिरिक्त अखिल भारतीय आधार पर कुछ काम होने चाहिये, जिनपर देश का ध्यान आकृष्ट हो और जिनसे नौजवानों मे जोश आये। कुछ ऐसी चीज सोचो।

पार्टी की एक गुप्त शाखा जरूर संगठित की जाय और दूसरा नाम रखा जाय। क्रान्तिकारी श्रमजीवी पार्टी या इसी तरह का कोई नाम चुना जाय। पंजाब की पार्टी कम्यूनिस्ट लीग के नाम से गैरकानूनी काम कर रही है और बोल्शेविक नाम से एक गुप्त अखबार भी निकाल रही है। एक अखिल भारतीय गुप्त अखबार का निकालना, कुछ नहीं तो युवकों को आकृष्ट करने के लिए जरूरी ही है।

(च) टेक्नीकल बातें

यह दुःख की बात है कि तुमलोगों ने हमसे सम्पर्क कायम करने की कोई कोशिश नहीं की है। यह कोई मुश्किल बात नहीं है। गंगा बाबू यहाँ कुछ दिन रह चुके हैं, उनको फिर यहाँ भेजो कि इसके लिए इन्तजाम करें। वह अजमेर जा सकते हैं और वहाँ के दोस्तो से मिलकर देवली के लोगोंसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। कुछ रुपयों की जरूरत होगी और थोड़े संगठन की। देवली गाँव के कोई आदमी बीच-बिचाव का काम करने को तैयार हो जायँ, तो यह काम और आसान हो जाय। गाँव से हर हफ्ते दर्जी, धोबी, मोची, कैम्प में आते हैं। कैम्प के होस्टल मे भी कुछ बच्चे काम करते हैं। वे बहुत गरीब हैं और इनमें कुछ की सहानुभूति हमारी ओर हो सकती है। थोडा समझाने-बुझाने और कुछ रुपया खर्च करने से यह काम आसानी से हो सकता है। कम्यूनिस्टों ने नियमित संपर्क कायम कर लिये

हूँ। जब तक नियमित सपर्क विकसित नहीं होता, तब तक के लिए मैं एक तरीका बता रहा हूँ। इस चिट्ठी का जवाब मुझे चाहिए। कोई उपन्यास ले लो, उसकी जिल्द को उघाड़ डालो, फिर उसके अदर चिट्ठी रखकर किताब पर मढवा दो। इस किताब के साथ दो-तीन किताब और भेजो, लेकिन अन्य पुस्तकें उपन्यास की न हों, जिससे मुझे पता चल जाय कि किस किताब की जिल्द मुझे खोलनी है। यदि सभव हुआ, तो मैं भी इस तरीके से तुम्हारे पास लिखूँगा।

मुझे कुछ गभीर सलाह भी देनी है; लेकिन यह तभी सभव है, जब सपर्क पक्का हो जाय। तब तक मैं उपन्यास की प्रतीक्षा में हूँ।

क्या युद्ध अविभाज्य है ?

[जयप्रकाश ने यह लेख गुप्त रूप से हजारीबाग़ जेल से भेजा था और 'एक कांग्रेस समाजवादी' के नाम पर यह प्रमुख पत्रों में छपा था ।]

स्टालिनवादियों के, जो कि इस लड़ाई में ब्रिटिश सरकार की बिना शर्त मदद करने की नीति का समर्थन कर रहे हैं, दो मुख्य तर्क हैं—पहला यह कि यह 'जनता का युद्ध' है, और दूसरा यह कि यह युद्ध अविभाज्य (indivisible) है।

जनता के युद्ध के प्रश्न पर लिखते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने यह दिखलाया है कि जहां तक ब्रिटेन और अमेरिका का सम्बन्ध है, इस युद्ध के लिये 'जनता का युद्ध' बनना अभी बहुत दूर की बात है और इन देशों के लिये अभी यह ऐसा ही युद्ध बना हुआ है, जो कि उनके विशाल साम्राज्यों—राजनीतिक तथा आर्थिक—तथा विश्वप्रभुत्व की उनकी स्थिति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये लड़ा जा रहा है।

अब हम यहाँ युद्ध की अविभाज्यता के प्रश्न की विवेचना करें। पहली बात यह है कि इस शब्दावली का अर्थ क्या है ? जब स्टालिनवादी यह कहते हैं कि यह युद्ध अविभाज्य है, तब उनके कहने का अर्थ यह होता है क प्रत्येक मोर्चे के परिणाम से सोवियत रूस के स्वार्थ सम्बद्ध हैं। बर्मा, लीबिया अथवा एटलाण्टिक के मोर्चों में मिली कोई विजय सोवियत रूस के लिये उतन ी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि स्मोलेंस्क में हुई जीत।

वे लोग कुछ इस तरह की दलील पेश करते हैं—कम्यूनिस्ट होने के नाते हमे अवश्य ही सोवियत रूस को मदद पहुँचाने में जल्दी करनी चाहिए। लेकिन चूँकि हिन्दोस्तान ब्रिटेन के अन्तर्गत एक पराधीन देश है, इसलिये प्रत्यक्ष रूप से रूस की सहायता करने के लिये हम स्वतत्र नहीं हैं। प्रत्यक्ष रूप से हम केवल ग्रेट ब्रिटेन की मदद कर सकते हैं। किन्तु चूँकि युद्ध अविभाज्य है इसलिये जो कुछ मदद ब्रिटेन को दी जायगी, वह रूस की मदद होगी और चूँकि रूस की सहायता करते हुए हम किसी शर्त को बात नहीं सोच सकते, इसलिये हम ब्रिटेन को जो कुछ मदद दें, वह निस्सकोच और विना शर्त के दी जानी चाहिये। सक्षेप में स्टालिनवादियो की यही दलील है, यद्यपि इसका निरूपण करने मे और अपनी इससे पूर्व की नीति की ग़लतियो को मालूम करने में रूस-जर्मन युद्ध छिड़ने के बाद ६ महीने से अधिक उन्हें लगे।

जहाँ तक राष्ट्रीय भारत का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि यह तर्क इतनी घृणोत्पादक है कि उसपर विचार भी नहीं किया जा सकता। इसपर किसी को भी तर्कवितर्क करने की आवश्यकता नहीं। यह एक ऐसी वास्तविकता है, जिसके तथ्य को कोई भी व्यक्ति, जो कि जान-बूझकर अन्धा नहीं बनना चाहता, स्वयमेव देख सकता है। यहाँ तक कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रीयतावादी व्यक्ति को भी, जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति गहरी और स्पष्ट है, विवश होकर कम्यूनिस्ट नीति को देशद्रोही कहना पड़ा है।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण

अब इस तर्क पर समाजवादी तथा मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विचार करना शेष रह जाता है। स्टालिनवादो कहते हैं कि हम यह स्मरण रखें कि हमें सभी भ्रमपूर्ण कल्पनाओं (illusions), राष्ट्रीय धारणाओं से मुक्त होना

चाहिये और अपने अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य का पूर्णरूप से पालन करना चाहिये।

हिन्दुस्तान जैसे मुल्क में एक समाजवादी के लिये राष्ट्रवादिता भ्रमपूर्ण कल्पनामात्र नहीं है। यह एक कठोर यथार्थता है, जिसकी उपेक्षा भारतीय समाजवादी समाजवादी आन्दोलन को भीषण हानि पहुँचाकर ही कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रश्न है। दुनिया की जनसख्या के पचमांश की स्वतन्त्रता का ससार के इतिहास पर और विशेषकर विश्वव्यापी साम्राज्यशाही पर निर्णयकारी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

ग्रेट ब्रिटेन के साम्राज्यशाही भवन की हिन्दुस्तान ही प्रधान आधार-शिला है, जिसके हटते ही सारा महल चकनाचूर होकर धराशायी हो जायगा। और, ब्रिटिश साम्राज्य के चकनाचूर होने का अर्थ यह होगा कि दुनिया की एक सबसे बड़ी प्रतिक्रियावादी शक्ति नष्ट हो जायगी। इस प्रकार हिन्दोस्तान की आज़ादी दुनिया भर के किसान-मज़दूरो तथा उत्पीड़ित जनता को लक्ष्य-प्राप्ति की दिशा मे आगे बढानेवाला एक बहुत बड़ा कदम साबित होगा और साम्राज्यशाही दासतो से प्रत्यक्ष रूप में लाखों, करोड़ों जनता जो मुक्त होगी वह अलग से।

ऐसी स्थिति में हिन्दोस्तान मे भ्रमपूर्ण राष्ट्रीय धारणाओ (nationalist illusions) की बात करना मार्क्सवाद को हास्यास्पद बनाना है। एक मार्क्सवादी को अनिवार्य रूप से सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि अत्याचारी देशों की जनता की राष्ट्रीयता और उत्पीड़ित देशों की जनता की राष्ट्रीयता में अन्तर है। हिन्दोस्तान की आज़ादी के लिये प्रयत्नशील भारतीय समाजवादी उसी प्रकार अपने अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्य की पूर्ति कर

रहा है, जिस प्रकार वह बन्दूक ले और रूसी मोर्चे पर नाज़ियों से लड़ने के लिये जाय।'

आइये, अब हम स्टालिनवादियों के तर्क को लें। जहाँ तक रूस को मदद देने का सवाल है, उसपर मतभेद नहीं हो सकता। प्रत्येक समाजवादी का यह कर्त्तव्य है कि वह रूस की मदद करे। मेरा विश्वास है कि हिन्दोस्तान के अनेक राष्ट्रवादी—क्योंकि हमारी राष्ट्रीयता मूलतः प्रगतिशील है—प्रसन्नतापूर्वक रूस की मदद करने के लिये जायँगे। याद रखना चाहिये कि वह कांग्रेस ही थी, जिसने कि चीन और स्पेन को जो कुछ भी सहायता पहुँचाना सम्भव था, पहुँचाया था। कांग्रेस ने प्रसन्नतापूर्वक रूस को इस प्रकार की या इससे भी अधिक सहायता भेजी होती, परिस्थितियाँ यदि ऐसा करने की अनुमति देतीं।

यहाँ स्टालिनवादियों को युद्ध को अविभाज्यता की दलील उन्हें आश्रय देती है। चूँकि युद्ध अविभाज्य है, इसलिये रूस के किसी युद्ध के साथी को दी गयी सहायता का अर्थ रूस की सहायता है।

अविभाज्य शान्ति नहीं, क्रान्ति

इसलिये जिस प्रश्न की हमें समीक्षा करनी है वह यह है—क्या ब्रिटेन को दी गयी मदद का अर्थ है रूस को मदद करना ? अर्थात् क्या युद्ध वास्तव में अविभाज्य है ? दुर्भाग्यवश स्तालिन की सरकार अर्से से ऐसी चीजों मे अविभाज्यता पाने के प्रयत्न मे है, जो कि स्वय समाज के वर्गमूलक स्वरूप के कारण विभाज्य है और जो कि उनके प्रयत्न के पश्चात् विभाज्य प्रमाणित हुई है। दूसरी तरफ उक्त सरकार ने उस एकमात्र वस्तु की अविभाज्यता की उपेक्षा की है, जो कि आज की दुनिया मे वास्तव मे अविभाज्य है। यह वस्तु विश्वक्रान्ति है। मजदूर-क्रान्ति (उत्पीडक देशों में) तथा राष्ट्रीय क्रान्ति

(उन देशों में जो कि उत्पीड़ित है) उसके दो पूरक (complimentary) अंग हैं। सोविएट सरकार ने जानबूझकर क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं में फूट डालने की कोशिश की है और उनमें भ्रम और हतोत्साहिता फैलायी है।

कुछ वर्षों तक स्टालिन सरकार का अलीशान नारा यह था कि "शान्ति अविभाज्य है"। जब ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने, चेम्बरलेन और उनके साथियों के नेतृत्व में, ऊपर बतलाये गये कारण के आधार पर अर्थात् यह कि दुनिया की सामाजिक व्यवस्था वर्गमूलक है और पूँजीवाद और समाजवाद में तथा प्रतिद्वन्दी पूँजीप्रणालियों के आपस के स्वार्थों में विरोध है—यह निर्णयात्मक रूप से प्रमाणित कर दिया कि शान्ति विभाज्य है तो बेचारे लिटविनाफ को हटाया गया और स्टालिन ने हिटलर के साथ समझौता करके सुरक्षा का प्रयत्न किया और मोलोटोव ने बिना किसी हिचक के घोषणा की कि यूरोप के सुख शान्ति के लिये एक शक्तिशाली जर्मनी की जरूरत है। फिर भी उस घोषणा के चन्द महीनों के भीतर मोलोटोव के 'शक्तिशाली जर्मनी' ने शीघ्रता के साथ फ्रांस के विरुद्ध अपनी शक्ति का प्रमाण देने के बाद रूस की ही शान्ति और सुरक्षा पर जबर्दस्त धावा बोल दिया और सर्वतोमुखी युद्ध के महानाश में उसे रौंद डाला।

अविभाज्य शान्ति भग हो गयी और अविभाज्य समझौता छिन्न भिन्न हो गया। अब हम एक अविभाज्य युद्ध के मध्य में हैं और आज तक जो लोग किसान मजदूर क्रान्ति के सैनिक थे वह आज ब्रिटिश साम्राज्यशाही के फौज भर्ती मुहकमे के अफसर बनने को ललायित हैं।

अविभाज्यता का अर्थ

किसी हालत में कोई युद्ध अविभाज्य होता है? उस समय जब कि प्रत्येक युद्धलिप्त राष्ट्र में युद्धोद्देश्य के प्रश्न पर मतैक्य हो। मान लीजिये कि

केवल एक राज्यशक्ति दूसरी राज्यशक्ति से लड़ रही है। इस हालत मे यह युद्ध प्रत्येक पक्ष के लिये अविभाज्य है; लेकिन केवल उसी समय तक, जब तक प्रत्येक पक्ष के लोगोंका लक्ष्य समान है और जब तक कि युद्धोद्देश्यों के बारे में तथा लड़ाई करने की आवश्यकता के बारे में जनता तथा उनकी सरकार में मतैक्य है। वर्त्तमान युद्ध में तो दोनों पक्ष मे एक से अधिक राजशक्तियाँ है। धुरी राष्ट्रों के पक्ष की ओर दूसरे पक्ष की अपेक्षा कहीं अधिक मतैक्य है। किन्तु वह मतैक्य केवल धुरी राष्ट्रों के शासकों में है। फिर भी जिस हद तक जनता और शासको में युद्धोद्देश्य के प्रश्न पर मतभेद है, उस हद तक धुरी राष्ट्रों के लिये युद्ध विभाज्य हो जाता है।

मित्र राष्ट्रों के पक्ष की ओर हम दो साम्राज्यशाही ताकतें पाते हैं, जो दोनों ही विश्वव्यापी पूँजीवाद के नायक हैं और उन्हींके साथ हम एक समाजवादी सरकार को भी पाते हैं। क्या इस प्रकार के परस्पर विरोधी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं के दर्म्यान कभी युद्धोद्देश्यो मे समानता हो सकती है ?

वर्त्तमान युद्ध की अविभाज्यता की विवेचना करते हुए हमने कहा था कि युद्ध अविभाज्य उसी हालत में कहा जा सकता है, जबकि प्रमुख युद्धलिप्त राष्ट्रों के उद्देश्य समान हों। अब हम देखेंगे कि मित्र राष्ट्रों के उद्देश्य क्या हैं।

अब आइये, हम मित्र राष्ट्रों के युद्धोद्देश्यो की विवेचना करें। जब ब्रिटेन ने जर्मनी पर आक्रमण किया, तब पौलैण्ड के लिये सहानुभूति की भावना से उत्प्रेरित होकर वह युद्ध मे नहीं सम्मिलित हुआ और न तो उसने दुनिया को नाजीवाद से छुटकारा दिलाने के लिये ऐसा किया, बल्कि उसने ऐसा एक पूँजीवादी प्रतिद्वन्द्वी को बहुत आगे बढ़ जाने और अत्यधिक शक्तिशाली बन जाने से रोकने के लिये किया। दूसरे शब्दों में, ब्रिटेन ने अपने सुदूर

विस्तृत साम्राज्य पर आँच न आने देने, आक्रमणकारियों को उसका अपहरण करने से दूर रखने और युरोप के शक्ति-सन्तुलन को कायम रखने के लिये ऐसा किया।

यहाँ यह बात ध्यान में रखना प्रासंगिक होगा कि जर्मनी में हमेशा साम्राज्यवादियों के दो दल रहे हैं। एक दल युरोप के बाहर उपनिवेश प्राप्त करने का पक्षपाती रहा है और दूसरा, उग्रदल, युरोप मे ही, विशेषकर मध्य और पूर्व युरोप में, साम्राज्य-वृद्धि में विश्वास करता आया है। पिछले महायुद्ध में इस उग्रपक्ष का प्रतिनिधित्व करनेवाले ल्युडेनडार्फ और हाफमान थे। आज-कल उग्रपक्षवालों का नेता हिटलर है। हिटलर की सफलता युरोप के उस शक्ति-सन्तुलन के लिये घातक सिद्ध हुई, जिसे ब्रिटेन और फ्रांस दोनों मिलकर बनाये रखना चाहते थे।

अमेरिका का उद्देश्य

अमेरिका जाब्ते से युद्ध में जापान के हमले के बाद ही शामिल हुआ है। लेकिन अमेरिका पहले से ही पूरी तरह ब्रिटेन, जिसकी पूँजीवादी व्यवस्था के साथ अमेरिका की पूँजीवादी व्यवस्था घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है और जिसपर अमेरिका ने निश्चित रूप से आर्थिक प्रभुत्त्व स्थापित कर लिया है, के पक्ष मे काम कर रहा है। अमेरिका का महत्त्व युद्ध में सम्मिलित होने से पहले और उसके बाद दोनों हालतों में, उसकी विस्तृत उत्पादन-शक्ति में है। युद्ध में अमेरिका के सम्मिलित होने के पहले भी ब्रिटेन को इस उत्पादन-शक्ति से लाभ उठाने की पूरी सुविधा दी गई थी। अतः अमेरिका के सम्बन्ध में यह कहना ठीक होगा कि वह इस युद्ध मे इसलिये शामिल हुआ है कि ससार को पूँजीवादी व्यवस्था में उसका नेतृत्व (hegemony over world capitalism) कायम रहे, ब्रिटेन और फ्रांस की साम्राज्यवादी लूट में से

उसको भी हिस्सा मिलता रहे और कर्ज के बोझ से दबे हुए युरोप से वह खिराज वसूल करता रहे।

रूस और चीन

जहाँ तक सोवियत यूनियन का सम्बन्ध है, उसने अपनी नीति को हर तरह से तोड़-मरोड़ कर अपने को युद्ध से अलग रखने की कोशिश की। युद्ध के स्वरूप के सम्बन्ध में रूस को कभी शका नहीं थी, लेकिन रूस के लिये युद्ध से अलग रहना किसी तरह सम्भव न था। जब कि हिटलर और स्तालिन जन्म दिवस सम्बन्धी शुभ कामनाएं एक दूसरे को भेजने में लगे थे, रूस-जर्मनी युद्ध की घड़ी निकट आ रही थी। जर्मनी ने अपनी आदत के मुताबिक विद्युत वेग से रूस पर झपट्टा मारा और रूस को मजबूरन अपनी आजादी की रक्षा और अपनी भौगोलिक सीमा को ज्यों-का-त्यों बनाये रखने के लिये लड़ाई में शामिल होना पडा। इसलिये, जहाँ तक रूस का सम्बन्ध है, इस युद्ध मे उसका सम्बन्ध आत्मरक्षा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। रूस के लिये यह राष्ट्रीय रक्षा का युद्ध है।

शायद हमे मित्र राष्ट्रों के एक दूसरे सहयोगी अर्थात् चीन की याद दिलाई जाय। जो लोग हाल की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से परिचित हैं, उनके लिये इस बात पर विश्वास करना हास्यास्पद ही होगा कि अगर उनका मतलब चीन को जापान की दया पर छोड़ देने से निकलता हो तो ब्रिटेन और अमेरिका इस बात की रत्ती भर भी परवाह करेंगे कि 'अभागे चीनी कुलियों' पर क्या बीतती है। चीन और जापान के वर्त्तमान युद्ध के आरम्भ से अभी कुछ ही पहले तक चीन और जापान को आपस में फैसला करने के लिये छोड भी दिया गया था। चीन अपनी आत्मरक्षा के लिये वीरतापूर्वक युद्ध कर रहा है। परिस्थितियों के कारण कई शक्तिशाली राष्ट्र उसका पक्ष ले रहे हैं। पर

उसके इन मित्रों को चीन की वास्तव में कोई चिन्ता नहीं है। यहाँ तक कि अगर वे मौका देखें, तो चीन के आक्रमणकारी के साथ मिल कर चीन का बँटवारा करने में भी नहीं हिचकेंगे। चीन के कारण युद्ध के उद्देश्यों में कोई अन्तर नहीं आता।

लड़ाई के बाद की दुनिया

मित्र राष्ट्रों के इन उद्देश्यों को देखते हुए क्या वर्त्तमान युद्ध को प्रजातंत्र और स्वतंत्रता का युद्ध—न सिर्फ युरोप के गुलाम देशों, बल्कि संसार भर के गुलाम देशों की स्वतंत्रता का युद्ध—बतलाना ईमानदारी है? स्तालिनवादियों और उनके एजेण्टों द्वारा दिन-रात हमारे कान में यह बात ठूँसी जा रही है कि यह युद्ध दासता, उत्पीडन और अत्याचार के विरुद्ध है और मित्र राष्ट्रों के युद्धोद्देश्यों के साथ मानव-प्रगति और सुख का भविष्य बँधा हुआ है। इस अतिरंजित चित्र में क्या सत्य का भी कोई अंश है? अगर मित्र राष्ट्रों के युद्धोद्देश्य पूरे हुए तो हमारे सामने दुनिया की कौन-सी तस्वीर होगी? यही न कि दुनिया में चारों ओर ऐंग्लो-अमेरिकन साम्राज्यवाद का बोलबाला होगा, आज से कहीं अधिक क्षीण अवस्था में रूस अपनी आत्मरक्षा के प्रयत्न में व्याकुल होकर लगा होगा और चीन यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र होगा; किन्तु-ऐंग्लो अमेरिकन राजनीतिक रथ के पहियों के साथ वह बड़ी मजबूती के साथ बँधा हुआ रहेगा।

शायद हमें यह याद दिलाया जाय कि लड़ाई के नतीजे अमेरिका और ब्रिटेन के मौजूदा शासकों के युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों पर निर्भर हैं। वास्तव में इसी बात पर हम भी जोर देना चाहते हैं। अगर हम मित्र राष्ट्रों के युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों के पीछे जाकर उन सामाजिक शक्तियों पर दृष्टि डालें, जो कि युद्ध के कारण मुक्त होंगी, तो हमें युद्ध की अविभाज्यता का नारा एकदम अर्थशून्य और प्रतिक्रान्तिवादी जान पड़ेगा और उसके स्थान पर क्रान्ति

की अविभाज्यता का नारा उठता हुआ दिखाई देगा। और, अगर युद्ध के अन्त में क्रान्ति के भड़क उठने की तस्वीर हमारे दिमाग मे है, तो क्या यह उचित है कि लड़ाई के जमाने में उस क्रान्ति को दबाने की हर तरह से तैयारी की जाय। उदाहरण के लिये साम्राज्यशाही की बिना शर्त मदद की जाय और यह आशा की जाय कि युद्ध के अन्त मे क्रान्ति पके फल की तरह आकाश से आ टपकेगी ? अगर ससार की क्रान्तिकारी शक्तियाँ ही अन्ततोगत्वा रूस की सहायता कर सकती हैं, तो उनका दमन करने के स्थान पर अभी से उनका विकास करने में ही अपनी शक्ति क्यों न लगाई जाय।

यहाँ पर हम एक महत्त्वपूर्ण घटना पर विचार कर लें, जिसके कारण युद्ध के बाद के ससार का ढांचा निर्णयात्मक रूप से बदल सकता है। हाल के कई लेखकों ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि ब्रिटेन और अमेरिका, दोनों ही जगहों मे पैदावार, व्यापार, मुद्रा और मजदूरी आदि के क्षेत्रों पर दिनोंदिन अधिकाधिक मात्रा मे राज्य का स्वामित्व या नियन्त्रण स्थापित होता जाता है। इसी प्रकार दाम और मुनाफे का फैसला भी राज्य की ओर से हो रहा है। फ्रीडा यूटले ने हाल के एक लेख में कहा है, 'इस प्रकार में राज्य के स्वामित्व या नियन्त्रण के आधार पर एक नई व्यवस्था उत्पन्न होती हुई देख रही हूँ। युद्ध जितना ही अधिक लम्बा होगा, इस नई व्यवस्था के पूरी तरह स्वरूप ग्रहण करने और विकसित होने की उतनी ही अधिक सम्भावना है। प्रश्न उठता है कि एक बार राज्य मालिक का स्थान ग्रहण कर लेता है, तब क्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राज्य का जनता पर नियन्त्रण रहेगा ? यह अनुभव किया जाता है कि अगर युद्ध के बाद भयकर रूप से फैली हुई बेकारी और सभावित क्रान्ति की बदौलत आर्थिक प्रणाली को विश्रृंखलित होने से बचाना है, तो युद्ध के बाद भी पूँजी और श्रम के इस नियन्त्रण को क़ायम रखना होगा।'

आगे चलकर इंगलैंड की चर्चा करती हुई वे लिखती हैं, 'अगर इंगलैंड के लिये इस लड़ाई में अब भी जीतना मुमकिन है, तो इसके लिये उसे जो कीमत चुकानी पड़ेगी और जो कुर्बानियां करनी पडेगी, उसके सिलसिले में इंगलैंड-का मध्यम वर्ग नष्ट ही हो जायगा, जैसा कि पिछली लड़ाई के बाद जर्मनी में हुआ।'

और, इस सिलसिले में उठनेवाले उचित प्रश्नों का वे उल्लेख करती हैं, - 'क्या ऐसी हालत में प्रजातन्त्रवादी तरीके को क़ायम रखा जा सकेगा?' ब्रिटिश लिबरल पार्टी के नेता ने भी कहा है कि वे लड़ाई के खत्म होने के तीन साल बाद तक इंगलैंड में नये चुनाव को टालने के लिये तैयार हैं।

बहुत-से लोग राष्ट्र के आर्थिक जीवन मे प्रजातंत्रवादी राज्यों के इस बढ़ते हुए नियत्रण को आशाभरी दृष्टि से देखते हैं। उनका विश्वास है कि इस प्रकार के नियत्रण के जरिये समाजवाद के लिये रास्ता साफ हो रहा है। पर यह भी समझ लेना चाहिये कि साथ ही साथ इस प्रकार का नियत्रण फासिज्म के लिये भी रास्ता साफ करता है। राज्य का अधिकार या नियत्रण केवल समाजवाद की ही नहीं, फासिज्म की भी विशेषता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि फासिज्म के अन्तर्गत राज्य पूँजीवादी बना रहता है। दूसरे शब्दो में, सामाजिक दमन के अस्त्र पूँजीपतियों और उनके साथी अर्थात् गरीब और गुमराह मध्यमवर्ग के हाथ में बना रहता है।

इस प्रकार युद्ध के बाद ब्रिटेन और अमेरिका में फासिज्म की स्थापना के लिये आवश्यक सभी कारण मौजूद होंगे—पूँजीवादी राज्य, आर्थिक जीवन पर राज्य का पर्याप्त नियंत्रण और दिवालिया मध्यमवर्ग। इसके अतिरिक्त क्रान्ति का वास्तविक भय भी मौजूद होगा। ऐसी हालत में क्या इस बात की सम्भावना नहीं है कि पूँजीवाद को क्रान्ति से बचाने का मार्ग न देखकर

ये राष्ट्र फासिज्म को अपना लें। इस सम्भावना की दृष्टि में फासिज्म-विरोधी युद्ध का क्या परिणाम होगा ?

पिछला युद्ध युद्धों का सदा के लिये अन्त कर देने के लिये लड़ा गया था, किन्तु उसने अपने से भी भयानक युद्ध को जन्म दिया। वर्त्तमान युद्ध फासिज्म का अन्त करने के लिये लडा जा रहा है। कहीं इसके बाद फासिज्म का और विस्तार न हो।

सोवियत रूस का प्रश्न

कुछ लोग यह प्रश्न करेंगे कि ब्रिटेन और अमेरिका में युद्ध के बाद फासिज्म के फैलने का खतरा रहते हुए भो क्या यह उचित न होगा कि हमलोग सोवियत रूस की रक्षा करें ? सोवियत यूनियन की रक्षा ही क्या इतने महत्त्व की नहीं है कि उसके लिये हम ब्रिटेन के दोस्त बनने में आनाकानी न करें ? क्या आज की अवस्था में हम ब्रिटेन की मदद करके रूस को सहायता नहीं पहुँचाते हैं ? निस्सन्देह, अगर रूस की रक्षा की जा सके, तो ससार की उन्नति के लिये यह सबसे महत्त्व की बात होगी। किन्तु इस सिलसिले मे दो प्रश्न उठते हैं, पहला प्रश्न यह है कि रूस को फासिस्ट ताक़तों से घेर कर क्या हम रूस को रक्षा करेंगे और दूसरा प्रश्न यह कि क्या ब्रिटेन को दी गयी मदद रूस को वचाने के काम में आयेगी ? क्या बर्मा या लीविया के क्षेत्रों की कोई जीत उतना ही महत्त्व रखती है, जितना कि रूसी मोर्चे की कोई जीत ?

पहले प्रश्न के उत्तर मे हमे यह याद रखना चाहिये कि लड़ाई के बाद रूस का किसी प्रकार बच रहना—जब कि वह काफी कमजोर हो चुका हो और फासिस्ट राष्ट्रों से घिरा हुआ हो—प्रजातत्र, स्वतंत्रता और शान्ति के लिए कोई गारण्टी नहीं होगी, जिसका कि इतना ज्यादा शोर स्तालिनवादियों

के प्रचार में सुनायी पड़ता है। ऐसी हालत में सोवियत यूनियन की रक्षा और उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्त्ति केवल एक ही बात के जरिये हो सकती है और वह है, प्रत्येक देश में क्रान्ति की शक्तियों का विकास। हिन्दोस्तान का आज़ादी की ओर बढ़ना ही सोवियत यूनियन और ससार की शान्ति और उन्नति के लिए एकमात्र सेवा है।

अब आइये, हम दूसरे प्रश्न पर विचार करें। मित्र राष्ट्रों के युद्ध सम्बन्धी उद्देश्यों की विवेचना करते हुए हम यह देख चुके हैं कि किस हद तक उनके उद्देश्य विभिन्न तथा अनमेल हैं। ब्रिटेन और अमेरिका के मुख्य उद्देश्य तो वही हैं, जो जर्मनी के शासकों के। और, यह दोनों ही सोवियत यूनियन के खिलाफ हैं। इस बुनियादी बात को ध्यान में रखते हुए हम यह समझ सकते हैं कि ब्रिटेन और अमेरिका को सोवियत रूस की रक्षा की किस हद तक चिन्ता होगी। ब्रिटेन और अमेरिका के शासकवर्ग अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए जर्मनी के खिलाफ रूस को इस्तेमाल जरूर करेंगे; लेकिन मौका पड़ने पर रूस के हितों की उपेक्षा करके अपने प्रतिस्पर्धी से समझौता करने में उन्हे हिचक न होगी। ऐसी अवस्था में ब्रिटेन को दी गयी मदद रूस की मदद है, यह किस प्रकार समझा जा सकता है?

युद्धसम्बन्धी उद्देश्यों में जो विभिन्नता है, उसके कारण युद्ध के संचालन और युद्ध के उपरान्त युरोप और संसार के पुनर्निर्माण की योजनाओं में भी स्वभावतः विभिन्नता आ जाती है। इस बात के कितने ही प्रमाण हमें समय-समय पर मिलते रहते हैं। उदाहरण के लिए मन्त्रिमण्डल के सदस्य बन जाने के पहले सर स्टैफर्ड क्रिप्स की वक्तृताओं से ही हमारे कथन की पुष्टि होती है। उन्होंने अपनी वक्तृताओं मे कहा था कि रूस का क्या हश्र होनेवाला है। इस बारे में जैसा चाहिये, वैसा जोश ब्रिटेन में नहीं देखा जाता है। रूस और ब्रिटेन के विभिन्न राजनीतिक उद्देश्यों के कारण दोनों देशों के

बीच बढते हुए सन्देह के वातावरण का भी आपने उल्लेख किया था।

स्तालिन, मोलोतोव, लिटविनाफ की युरोप में हिटलर के खिलाफ दूसरा मोर्चा बनाने की अपीलों का क्या असर हुआ है, यह भी पाठक जानते हैं। जब स्तालिन ने बहुत स्पष्ट शब्दों में और जोरों के साथ दूसरे मोर्चे की माँग की थी, तब यह समझना अनुचित न होगा कि उन्होंने इस बात का विचार करके ही यह माँग की थी कि सैनिक दृष्टि से दूसरा मोर्चा बनाना व्यवहार्य है।

हमारा विश्वास है कि दूसरा मोर्चा बनाने मे अबतक जो आनाकानी दिखायी गयी है, उसका कारण सैनिक अव्यावहारिकता के अतिरिक्त और भी कुछ है। ब्रिटेन के साम्राज्यवादी शासक, जिन्हे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की शक्तिशाली सहायता प्राप्त हो गयी है, हिटलर को स्वय हराना चाहते हैं; वे स्तालिन के द्वारा उसे हराया जाना देखना पसन्द नहीं करते। बर्लिन के प्रवेशद्वार पर स्तालिन का पहुँचना उन्हे उतना ही खतरनाक मालूम पड़ता है, जितना कि हिटलर का ब्रिटिश चैनेल को पार करना।

सच तो यह है कि जर्मनी मे समाजवाद के फैलने की अपेक्षा ब्रिटेन के पूँजीपतियों को इगलैंड में फासिज्म का फैलना कम खतरे की चीज़ मालूम पड़ेगी। स्पेन के गृहयुद्ध के समय ब्रिटिश शासकों की नीति यही थी।

हमारे इस कथन का यह तात्पर्य न समझा जाय कि ब्रिटेन और अमेरिका हिटलर के खिलाफ दूसरा मोर्चा न खोलेंगे। वे ऐसा अवश्य कर सकते हैं, पर अपनी सुविधा के अनुसार। ऐसे वक्त वे ऐसा मोर्चा खोलना न पसन्द करेंगे, जब कि उसका लाभ विशेष रूप से स्तालिन को मिले, न कि उनको। ब्रिटेन और अमेरिका की दृष्टि से आदर्श स्थिति यह होगी कि रूस और जर्मनी दोनों एक दूसरे से लड़ते-लड़ते थक जायें और ब्रिटेन तथा अमेरिका ऐसी सुविधाजनक स्थिति मे हों कि वे फैसलाकुन चोट कर सकें और

इस प्रकार युद्ध में विजयी होने और शान्ति की स्थापना करने का यश उन्हें प्राप्त हो सके। ब्रिटेन और अमेरिका के शासकों की यह नीति युद्ध के आरम्भ के समय स्तालिन द्वारा अपनायी गयी नीति से मिलती-जुलती है। उस समय स्तालिन सोचते थे कि फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी लड़कर अपनी ताकत खत्म कर दें, तब वे आगे बढकर युरोप के भाग्य का फैसला कर सकें।

अमेरिका और ब्रिटेन पूर्वी मोर्चे पर लड़ाई को लम्बा चलाने की कोशिश करेंगे, इस बात का ख्याल रखते हुए कि दो में से कोई भी पक्ष जीतने न पाये। रूस की जो मदद की जायगी, उसमें इस बुनियादी बात का हमेशा ध्यान रखा जायगा। अगर ऐसा हुआ कि रूस को जो मदद दी गयी, उसके बावजूद भी हिटलर की रफ्तार जारी रही और उसको कामयाबी मिलती हुई दिखाई दी, तो रूस के हनन को सहन करके भी जर्मनी के साथ रूस के इन 'प्रजातन्त्रवादी मित्रों को समझौता कर लेने मे देर न लगेगी। यह आशा वे लोग अवश्य रखेंगे कि आगे चलकर अपनी तैयारी पूरी होने पर फिर वे जर्मनी को नीचा दिखा सकें। सम्भवतः वे ऐसा तब करें, जब कि अमेरिका की पैदावार अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाय। इससे उनकी ताकत बढ गयी रहेगी।

लेकिन अगर हिटलर के बढने के बजाय लाल सेना ही बर्लिन के दरवाजे पर पहुँच गयी, तो भी ब्रिटेन और अमेरिका के शासक हिटलर से समझौता कर लेंगे। इस उद्देश्य से, कि युरोप को बोल्शविज्म की बाढ से बचाने के लिए जर्मनी बाँध का काम दे सके, जो आज रूस के दोस्त हैं, वे कल उसके दुश्मन भी बन सकते हैं।

भारी भ्रम

एक बड़ा भ्रम, जिसके शिकार स्तालिनवादी हो रहे हैं, वह यह है कि ब्रिटेन और अमेरिका के शासक प्रगतिशील शक्तियों के बन्दी होकर इस युद्ध

में लड़ रहे हैं। लेकिन इस तरह की कोई मजबूरी वास्तव में नहीं है। युद्ध का सचालन आज भी उनकी इच्छा के अनुसार हो रहा है। रूस की सहायता के प्रश्न को भी वे लोग अपने ही ढग से सुलझा रहे हैं। रूस को छोड़कर सभी क्षेत्रों में ब्रिटेन और अमेरिका के सचालन में ही लड़ाई चल रही है।

अटलाण्टिक की जिस घोषणा मे मित्र राष्ट्रों के युद्धोद्देश्य की घोषणा और ससार की जनता की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश की गयी थी, वह ब्रिटेन और अमेरिका के शासको के दिमाग की ही उपज थी और समूचे ससार मे उसका एलान हो जाने के बाद रूस से उसपर हस्ताक्षर करा लिये गये थे। रूस और उसके मित्रों के बीच सन्देह का वातावरण बढ रहा है, यह भी देखा जा सकता है। इस युद्ध मे शासकगण जनता के बन्दी होकर नहीं लड़ रहे हैं, बल्कि जनता ही अपने शासकों की पूंजीवादी व्यवस्था के लिए रचे गये षड्यन्त्र का शिकार होकर युद्ध में भाग ले रही है।

युद्ध नहीं, क्रान्ति अविभाज्य है

इस प्रकार हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि युद्ध अविभाज्य नहीं, बल्कि विभाज्य है। ब्रिटेन या अमेरिका को दी गयी मदद रूस को पहुँचेगी, ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। ब्रिटेन और अमेरिका से रूस को उससे अधिक सहायता पहुँचने की आशा नहीं की जानी चाहिये, जितनी सहायता उन्हें अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की रक्षा के लिए आवश्यक प्रतीत होती हो। ऐसी अवस्था में अपनी आजादी के लिए लड़ना ही रूस और ससार की प्रगतिशील शक्तियों के लिए हमारी सबसे बड़ी सहायता है। यह न भूलिए कि क्रान्ति अविभाज्य है।

विदेशी आक्रमण के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य हो, यह युद्ध की अविभाज्यता से अलग प्रश्न है। हिन्दोस्तानी अपनी आज़ादी के लिए लड़

रहे हैं। वे ब्रिटेन, जर्मनी या जापान किसीकी गुलामी नहीं चाहते। स्वभावतः वे इसका स्वागत नहीं करेंगे कि एक प्रकार का विदेशी शासन हट-कर दूसरा विदेशी शासन आ जाय। किन्तु इस देश के विदेशी शासन ने उन्हे निहत्था कर रखा है और सैनिक रक्षा का समूचा भार अकेले अपने ऊपर ले रखा है। संकट की इस घड़ी में भी वे जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में सेना का भार सिपुर्द करने के लिए तैयार नहीं; क्योंकि वे देश पर से प्रभुत्व खोना नहीं चाहते। ऐसी हालत में जनता के लिए सिर्फ यही चारा है कि वह जिस प्रकार से ब्रिटिश साम्राज्यशाही के खिलाफ लड़ती आई है, उसी तरह नये आक्रमणकारी के खिलाफ भी लड़े। 'राष्ट्रीय रक्षा' या 'जनता का युद्ध' के भ्रमात्मक नारों से बचते हुए हमे अपनी स्वतन्त्रता के लिए अपना अथक प्रयत्न जारी रखना चाहिए।

लाहौर क़िले की यंत्रणायें

[लाहौर-किले में जयप्रकाश को जो यातनायें दी गई, उनको लेकर देश भर में बड़ी सनसनी मची थी। श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी, प्रयाग ने हैबियस कारपस की दरखास्त लाहौर हाईकोर्ट में दी और जयप्रकाश ने भी तीन दरखास्तें हाईकोर्ट में पेश कीं। नीचे उनकी आखिरी दरखास्त दी जा रही है, जिससे इस सम्बन्ध की पूरी जानकारी हासिल होती है।]

माननीय चीफ जस्टिस,

हाईकोर्ट, लाहौर।

महामान्यवर,

आपको कुछ खिजलाहट होगी, यह समझते हुए भी मैं फिर आपकी सेवा में यह अर्ज़ी पेश कर रहा हूँ। जस्टिस मुनीर ने ४-१२-४४ को मेरी दरखास्त पर जो फैसला दिया है, उसीके सम्बन्ध मे मुझे लिखने को मजबूर होना पड़ा है। सबसे पहले मैं आपको और जस्टिस मुनीर को धन्यवाद देता हूँ कि मेरी पहली दरखास्त रद्द किये जाने पर भी फिर से सुनवाई की।

(१) यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि दूसरी बार की सुनवाई में भी, यद्यपि इस वार वकील भी मुझे मिले थे, मेरा मुकदमा आपके सामने सही सही नहीं रखा जा सका; क्योंकि पुलिस के सामने अपने वकील से बातें करना मैंने नामंजूर कर दिया था। मेरा ख्याल है, मैं कुछ भ्रम में था और मेरे वकील श्री कपूर भी। उन्होंने मुझे बताया था कि जिस समय मैं उनसे अपनी बातें कहूँ, उस समय पुलिस न रहे; कोर्ट मेरी इस अर्जी को नामजूर भी कर दे, तो भी मुझे एक बार फिर से उनके सामने अपना मुकदमा रखने का मौका मिलेगा ही। मैंने सोचा था कि मैं इस दूसरे मौके से फायदा उठाऊँगा। मेरी समझ में नहीं आता कि श्री कपूर के माँगने पर भी यह दूसरा मौका मुझे क्यो नहीं दिया गया। मालूम होता है, जिन शब्दों में मैंने एफिडेविट की थी, उन्हींके चलते ऐसा हुआ। मुझे ताज्जुब होता है, साधारण आदमियों की भाषा कानूनी तर्जेबयाँ से क्यों नहीं ज्यादा साफ होती है! खैर, मुझे इस बात का दुःख है कि अपने वकील को मैं पूरी सलाह न दे सका, इसलिए मेरा मुकदमा न अच्छी तरह कोर्ट के सामने पेश किया जा सका और न मुझे कुछ फायदा हुआ। लेकिन, यह मैं आपके पास कुछ शिकायत की तरह से नहीं पेश कर रहा हूँ।

यहाँ मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि मैंने क्यों पुलिस के सामने अपने वकील से मुलाकात करने से इनकार कर दिया। पहली बात यह, कि मेरी ऐसी धारणा थी कि कैदी को यह क़ानूनी हक है कि वह अपने कानूनी सलाहकार से एकान्त में बातें करे या कम से कम इतनी दूरी पर बातें करे के कोई सरकारी अफसर न सुन सके। मैं इसी अधिकार का उपयोग करना चाहता था। दो और बातें भी थीं—विद्वान जज ने अपने फैसले में लिखा है, 'कैदी का जो कुछ भी सलाह मिस्टर कपूर को देनी थी, उसे आखिर कोर्ट के ही सामने तो खुलेआम पेश करना था; फिर पुलिस सुन लेती,' तो

क्या हो जाता ? जिसे कुछ दिन बाद पुलिस को सुनना ही था, वह बात पुलिस को नहीं सुनने देने के लिए कैदी के पास कौन-सी सच्ची दलील थी, यह मेरी समझ में नहीं आता।' मेरा कहना है कि यहाँ जज ने सकुचित दृष्टि दिखाई है। मुलाकात के समय दो पुलिस ऑफिसर हाज़िर थे और तीसरा एक शॉर्टहैण्ड जाननेवाला था, जो मेरी बगल में था। इससे साफ है कि जो कुछ मैं या मेरे वकील कहते या जिस बात को पुलिस से दिलचस्पी होती, उसे शब्दशः लिख लिया जाता। मुझे कुछ ऐसा लगता था कि मैं अपने वकील से बातें नहीं कर रहा हूँ, पुलिस के सामने अपना बयान दे रहा हूँ। जब कोई मुद्दई या मुद्दालह अपने वकील से बाते करता है, तो वह सिर्फ उन्हीं बातों की चर्चा नहीं करता, जिन्हे कोर्ट के सामने पेश करना होता है; बल्कि मुकदमे के सभी पहलुओं पर विचार-विनिमय करता है। कुछ पहलू कमजोर होते हैं, कुछ मज़बूत। फिर हर पहलू की अच्छी और बुरी सभावनायें होती हैं। उन्हे किस तरह पेश किया जाय, यह भी सवाल उठता है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि वह अपने वकील से खुलकर बाते कर सके। मैं भी यही चाहता था कि खुलकर मुकदमे के सभी पहलुओं पर राय दूँ और लूँ। लेकिन जब पुलिस सुन रही हो और शॉर्टहैण्ड वाला नोट ले रहा हो, तब क्या ऐसा सभव था ? यह देश के किसी हिस्से मे भी असभव होता, किन्तु, खासकर इस प्रान्त में, जहाँ नागरिक आजादी का नाम भी नहीं है और पजाब की सी०आई०डी० सर्व-शक्तिमान कही जाती है और नागरिकों के लिए भयानक हौवा बनी हुई है।

एक तीसरी बात भी इस सम्बन्ध मे मुझे कहनी है। मुझसे सलाह लेने के बाद मेरे वकील को कोर्ट के सामने मेरा मुकदमा रखना था और उसका विरोध सरकारी वकील या एडवोकेट-जेनरल को करना था। अब श्री कपूर जब तक मेरी बातों को कोर्ट के सामने रखें, यदि उसके पहले ही सरकारी

वकील को सारी बातें मालूम हो जायँ, तो क्या मेरे और मेरे वकील के साथ यह इंसाफ की बात होती ? मेरी मुलाकात के समय लिये गये नोट की कापी पुलिस सरकारी वकील को नहीं दे सके, इसके लिए क्या कोई भी कारवाई सभव थी ? मुझे अफसोस है कि विद्वान जज ने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया।

(२) दूसरी बात मुझे फैसले मे लिखी गई कुछ गलत बातों के सम्बन्ध में कहनी है। मैं नहीं जानता कि किसने कोर्ट को ये गलत बातें बताईं। अगर मेरे वकील ने बताई हो, तो उस बेचारे का क्या कसूर! क्योंकि उनको सही बात जानने का मौका कहाँ दिया गया! और, अगर सरकार की ओर से ये बातें रखी गई हैं, तो मेरी समझ मे नहीं आता कि कोर्ट को गलत जगह ले जाने की जरूरत क्यों अनुभव की गई ?

मैंने यह कभी नहीं छिपाया कि बिहार के हजारीबाग सेण्ट्रल जेल से मैं भाग आया था; लेकिन मैं किसी एक आदमी के साथ नहीं, पाँच आदमियों के साथ भागा था। फिर यह घटना १९४३ में नहीं हुई थी, बल्कि नवम्बर १९४२ में। मैं अमृतसर स्टेशन पर गिरफ्तार किया गया था, जब मैं फ्रण्टियर मेल से दिल्ली से रावलपिण्डी जा रहा था और उसकी तारीख थी १८ सितम्बर १९४३ की भोर। किन्तु फैसले में लिखा गया है कि मैं लाहौर में १९ अगस्त १९४३ को, सभवतः भारत-रक्षा कानून की १९ वीं धारा के अतर्गत गिरफ्तार किया गया और २२ सितम्बर को उसकी दफा बदलकर २६ कर दी गई थी। गिरफ्तारी की तारीख तक में जब गलती है, तो नजरबदी की दफाओं में भी गलती हो सकती है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि उस समय मुझपर कोई ऑर्डर तामील नहीं किया गया था। फिर, मैं कांग्रेस वर्किंग कमीटी का सदस्य नहीं हूँ और न हजारीबाग से भागने के समय था। १९३६ में, थोडा समय छोड़कर, मैं कभी वर्किंग कमीटी का मेम्बर

नहीं रहा । मैं इस गलती को इसलिए सुधारना चाहता हूँ कि जेल से भागने या उसके बाद के मेरे काम से कांग्रेस का कोई सरोकार नहीं समझा जाय ।

मुझपर सरकारी ऑर्डर, एक के बाद एक, तामील होते रहे। पहला ऑर्डर पंजाब गवर्नमेण्ट के चीफ सेक्रेटरी का था, जिन्होंने पुलिस के आई० जी० को हुक्म दिया था कि १८५८ के बंगाल रेगुलेशन के अनुसार मुझे लाहौर के किले में कैदी की हैसियत से रखा जाय। यह १९४३ के नवम्बर महीने के मध्य मे हुआ, यानी जैसाकि अब मालूम होता है, श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी द्वारा हाईकोर्ट में दरखास्त देने के कुछ दिनो के बाद ही। इसके पहले भारत-रक्षा-कानून की १२९ या २६ धाराओं के अनुसार जो ऑर्डर हुए थे, मुझे उनकी कोई खबर भी नहीं। दूसरा ऑर्डर, जो मुझपर तामील किया गया, वह मिस्टर बूर्न का था, जिसमे कहा गया था कि मुझे नजरबंद की तरह से उसी किले मे रखा जाय। यह ऑर्डर १ ली जुलाई १९४४ का था, जिसकी चर्चा फैसले मे की गई है। भारत सरकार के होम डिपार्टमेंट के संयुक्त मंत्री, मिस्टर सहाय, के ऑर्डर की मुझे कोई खबर नहीं। कुछ दिन के बाद सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट ने २३ अगस्त, १९४४ को श्री टॉटिनहम के दस्तखत से मुझपर एक ऑर्डर तामील कराया, जिसमें कहा गया था कि मुझे १९४४ के तीसरे आर्डिनेन्स के मुताबिक उस किले मे रखा गया। आखिरी ऑर्डर ३० नवम्बर को मुझपर तामील हुआ है कि पहला ऑर्डर मुझपर जारी रखा जाय।

यहाँ मैं आपके सामने पहले ऑर्डर के बारे मे एक विचित्र बात का उल्लेख करूँगा। जैसाकि मैंने आपको कहा, यह पहला ऑर्डर नवम्बर के मध्य में मुझपर तामील किया गया। तारीख की याद मुझे नहीं रही; लेकिन वह तीसरे सप्ताह के शुरू मे जरूर था। कुछ दिनों के बाद, पंजाब गवर्नमेण्ट के द्वारा या केन्द्रीय सरकार के द्वारा यह तय किया गया कि मुझे

उस ऑर्डर के अनुसार स्टेट प्रिजनर की सारी सहूलियतें दी जायें। १ ली फरवरी १९४४ को पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने आकर सरकार के निर्णय की सूचना मुझे दी। उन्होंने मुझे सूचित किया कि अन्य सहूलियतों के अतिरिक्त मुझे ५०) पचास रुपये माहवारी मिलेंगे और शुरू के खर्च के लिए ५०) इसके अलावा। उन्होंने कहा कि मेरा वकिऔता कुल मिलाकर १२५) हुआ, जो मेरे हिसाब में दर्ज कर दिया जायगा। उस समय मैंने हिसाब नहीं किया, लेकिन पीछे हिसाव किया तो मेरे १७५) रु० होते थे—पचास रुपये शुरू के, पचीस रुपये आधे नवम्बर के और पचास पचास रुपये नवम्बर-दिसम्बर के। मैंने जब इस ओर स्थानीय अफसर का ध्यान आकृष्ट किया तो उसने कहा, मेरा हिसाव आधे दिसम्बर से किया गया है। मैंने कहा, आधे नवम्बर से क्यों नहीं? तो उसने मजूर किया कि गलती हो गई है; किन्तु मुझसे आरजू की कि मैं इस सवाल को आगे न बढाऊँ। पचास रुपये से कुछ होना-जाना न था, इसलिए मैं भी चुप्पी लगा गया।

लेकिन अब, जब मैं उसपर विचार करता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि यह गलती जान-बूझकर की गई थी, जिसमें ऐसा मालूम हो कि लाहौर हाईकोर्ट मे श्रीमती बनर्जी की दरखास्त पड़ने पर मैं स्टेट प्रिजनर बनाया गया। कोई दूसरा कारण भी हो सकता है; क्योंकि बिना किसी कारण के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट पचास रुपये की तुच्छ रकम क्यों हड़पता!

यहां मैं आपका ध्यान एक बात की ओर और खींचना चाहता हूँ। जहां मुझपर तामील किये गये या बेतामील किये गये ऑर्डरों की सभी तारीखें कोर्ट के सामने रखी गई हैं, जिनका फैसले में उल्लेख है, वहा बगाल रेगुलेशन वाले आर्डर की तारीख कहीं नहीं दी गई है, क्योंकि फैसले मे कहीं भी इसकी चर्चा नहीं है।

मैं कह नहीं सकता, इस विचित्र तथ्य का कोई महत्त्व है। तो भी मैंने

इसे आपके सामने रख दिया है और मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि इस पचास रुपये से मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है।

मैं कह नहीं सकता कि जस्टिस मुनीर के फैसले पर इस तथ्य का कोई प्रभाव पड़ सकता है। यह आपके और विद्वान जज के विचार पर निर्भर करता है और मेरे वकील का काम है कि वह इससे कोई नई दलील शायद आपके सामने पेश कर सकें।

(३) अब मैं अपनी दरखास्त के मुख्य हिस्से पर आता हूँ यानी इस बात पर कि मेरी नजरबंदी कानूनी है कि नहीं। मैं शुरू में ही कह दूँ कि कानूनी बातें आपके सामने रखने का उपयुक्त पात्र मैं अपने को महसूस नहीं करता। लेकिन मैं इस सम्बन्ध की बातों को आपके सामने संक्षेप में रख देना चाहता हूँ। सबसे पहले मैं कोर्ट के इस निर्णय पर संतोष प्रकट करता हूँ कि उसने सरकारी वकील की इस दलील को रद्द कर दिया है कि १९४४ के तीसरे आर्डिनेंस के ऑर्डरों पर हस्तक्षेप करने का कोर्ट को कोई अधिकार नहीं है।

मेरे वकील ने मेरी सलाह न मिलने पर भी मेरी दरखास्तों में उल्लेख की गई खबरों के आधार पर मेरा मुकदमा आपके सामने अच्छी तरह रखने की कोशिश की है। उन्होंने नजरबंदी की आज्ञा का दो कारणों से विरोध किया। पहला यह कि अधिकारियों को ऐसा ऑर्डर देने का अधिकार नहीं था और दूसरा यह कि उनका उद्देश्य विशुद्ध नहीं था। पहले कारण को इस धारणा पर अस्वीकार किया गया कि भारत-सरकार के ज्वायण्ट सेक्रेटरी को जरूर ही ऐसी आज्ञा देने का अधिकार दिया गया था। यह धारणा सच हो सकती है। लेकिन इसका कोई भी सबूत नहीं पेश किया गया और दूसरे कारण को इसलिए अस्वीकार किया गया कि मेरी नजरबंदी सिर्फ जिस किसी भी तरह से मुझसे कुछ बातें निकालने के लिए ही नहीं की गई होगी। और,

फिर यह कि १० दिसम्बर १९४३ के बाद कोई पूछताछ मुझसे नहीं की गई।

इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन संक्षेप में यह है—मैं खुलेआम यह स्वीकार करता हूँ कि जो कानून हमारे देश पर जबरदस्ती लादा गया है, उसके अनुसार, जेल से भागने के पहले या उसके बाद की मेरी कार्रवाइयों से हो सकता है कि जनता की शान्ति में बाधा पड़ी हो और युद्ध के सफल संचालन में विघ्न हुआ हो। किन्तु मैं समझता हूँ कि मेरी इन कार्रवाइयों से मेरे देश को अधिक से अधिक लाभ ही हुआ होगा। यह एक राजनीतिक विचार है और कानून और कोर्ट का इससे कोई भी ताल्लुक नहीं होना चाहिये और मैंने इसका उल्लेख यहाँ यों ही चलते-चलाते कर दिया है।

इस विचार से, जिस समय मैं गिरफ्तार किया गया, मेरे मन में इस बारे में जरा भी संदेह नहीं था कि मेरी गिरफ्तारी और नजरबंदी तथाकथित जनता की शान्ति की रक्षा और युद्ध के सफल संचालन के लिए ही हुई है। मैं यह कहकर अपनी रिहाई नहीं चाहता था और न चाहता हूँ कि मुझपर ये आरोप गलत लगाये गये थे। तो भी मैं आपको बार-बार असुविधा दे रहा हूँ—दो मर्तबे दरखास्त दे चुका और यही तीसरी बार दे रहा हूँ, क्यों?

इसका कारण वही है, जिसका उल्लेख मैंने पहली दरखास्त में किया था। जिस समय श्रीमती बनर्जी ने हाईकोर्ट में दरखास्त दी थी, उस समय उसकी खबर मुझे नहीं थी और न मुझे यह मालूम था कि मुझे स्वयं भी यह कानूनी हक हासिल है कि मैं ४९१ दफा के अनुसार दरखास्त देकर अपने ऊपर होनेवाले असहनीय बर्ताव को रोक सकता हूँ। तो भी मैंने उस तथाकथित पूछताछ के जमाने में कई बार यह चर्चा की थी कि मैं सरकार को इस सम्बन्ध में लिखना चाहता हूँ, किन्तु मुझे इसकी इजाजत नहीं दी गई। अब मैं सोचता हूँ कि यदि मैंने हैबियस कारपस की दरखास्त देने का हुक्म माँगा होता, तो

उसे भी अस्वीकार कर दिया गया होता। मेरे खयाल से पारडीवाला के मुकदमे के बाद ही इस प्रान्त मे यह सम्भव हो सका है कि मुसीवत मे पड़ा हुआ राजवदी हैवियस कारपस की दरखास्त देकर कानूनी रक्षा की माँग कर सके।

जव श्रीमती बनर्जी की दरखास्त नामजूर की जा चुकी, तव मुझे उसकी धुँधली खवर मिली थी। उसका पूर्ण उद्देश्य का पता तो मुझे जस्टिस मुनीर के फैसले से लगा है। किन्तु मुझे यह खबर मालूम हुई थी कि चूँकि मैं वगाल रेगुलेशन का स्टेट प्रिजनर हूँ, इसलिए मुझपर दफा ४९१ लागू नहीं हो सकती। किन्तु जव जुलाई मे मुझे फिर वगाल रेगुलेशन से हटाकर भारत-रक्षा-कानून के अनुसार नजरवद बनाया गया, तो मुझे यह समझने मे देर न लगी कि मेरी गिरफ्तारी के बारे मे हुई कुछ गैरकानूनी कार्रवाई को ढकने के लिए ही यह चाल चली गई थी। मैंने पहली दरखास्त इसीलिए दी कि मैं कोर्ट को सही वात तक पहुँचने मे मदद कर सकूँ। दूसरी दरखास्त मे मैंने साफ लिखा कि अब तक गैरकानूनी कार्रवाइयों को दुरुस्त कर लिया गया होगा, तो भी कोई पता लगावे कि शुरू मे गैरकानूनी कार्रवाई हुई थी या नहीं। गैरकानूनी कार्रवाई से मेरा मतलब वही था, जिसे मेरे वकील ने कोर्ट सामने रखा था यानी यह ऑर्डर न तो योग्य अधिकारी द्वारा जारी किया गया था और न कानून के अनुसार मुझपर तामील किया गया था। यह सवाल अभी हल नहीं हो पाया है, क्योंकि मेरे वकील का ध्यान केन्द्रीय सरकार के २७ जून, १९४४ वाले ऑर्डर पर था।

जस्टिस मुनीर ने अपने फैसले मे लिखा है—'जव यह दरखास्त मेरे सामने १७ दिसम्बर, १९४३ को पेश की गई, सरकारी वकील ने वताया, चूँकि अभियुक्त वगाल स्टेट प्रिजनर रेगुलेशन के अनुसार नज़रवद किया गया है, इसलिए उसपर ताजीरात हिन्द की ४९१ दफा लागू नहीं है और इसी

आधार पर यह दरख़ास्त रद्द कर दी जाय। सरकारी वकील की बात रह गई और २२ दिसम्बर को श्रीमती बनर्जी की दरख़ास्त डिसमिस की गई।' इन शब्दों से ही मालूम होता है कि बंगाल रेगूलेशन की आड़ इसीलिए ली गई थी कि श्रीमती बनर्जी की दरख़ास्त पर सुनवाई न हो। इस बात से मैं इस नतीजे पर आया हूँ कि मेरी गिरफ्तारी में जरूर ही गैरकानूनी कार्रवाई की गई थी और मेरे साथ गैरकानूनी व्यवहार किया गया था, जिस तथ्य को हाईकोर्ट में प्रगट होने से सरकार डर गई थी। इसलिए बंगाल रेगुलेशन का प्रयोग निस्सन्देह ही एक गैरकानूनी कार्रवाई को छिपाने के लिए किया गया था और मैं इस ग़लती को दुरुस्त कराने के लिए हर सम्भव उपाय को काम में लाना चाहता हूँ। यह गलती एक साल पहले हुई थी, इसलिए आज उसे सही नहीं मान लिया जा सकता, न कोर्ट को ही मुनासिब है कि उस ओर ध्यान न दे।

अब मेरी गिरफ्तारी के सम्बन्ध की बुरी नीयत के प्रश्न पर आइये। मैं कोर्ट के फैसले से सहमत हूँ कि मेरी नजरबंदी सिर्फ मुझसे गुप्त गुप्त बातें निकालने के लिए ही नहीं हुई थी; लेकिन मेरा यह दृढ विचार है कि लाहौर किले में तो मुझे इसी उद्देश्य से रखा गया था। जज ने मेरी गिरफ्तारी और इस पूछताछ के बीच के लम्बे अर्से पर जोर दिया है। मेरा कहना है कि यह अर्सा लम्बा नहीं है; क्योंकि मैं १८ सितम्बर को गिरफ्तार हुआ था, न कि १९ अगस्त को। इसलिए पूछताछ तो एक महीने के बाद ही शुरू हो गई थी और इतनी देर करना जरूरी था; क्योंकि मेरे सम्बन्ध के कागजात केन्द्रीय सरकार के पास से ही नहीं, प्रान्तीय सरकारों के पास से भी मँगाने थे। सच बात तो यह है कि जिस समय पूछताछ शुरू हुई, पंजाब सी० आई० डी० के अतिरिक्त बंगाल और बिहार की सी० आई० डी० भी वहाँ हाजिर थी। फिर, यह पूछताछ १० दिसम्बर को बंद हो गई, तो इसलिए कि मुझसे कुछ निकालना

असम्भव था और उधर पूर्णिमा बनर्जी की हाईकोर्ट को दरखास्त ने सरकारी अफसरों को भंडाफोड़ से भयभीत कर दिया। पूछताछ को फिर से जारी क्यों नहीं किया गया, इसका कारण भी यही है कि पुलिस समझ गई कि मुझसे वह कुछ पा नहीं सकती और बंगाल रेगुलेशन का स्टेट प्रिजनर होते ही मुझसे मिलने को आये हुए पंजाब के होम सेक्रेटरी और गैर-सरकारी दर्शक नवाब मुजफ्फर अली खाँ से मैंने इसकी शिकायत कर दी थी और पंजाब सरकार के पास एक दरखास्त भी भेजी थी। इसलिए, मेरा यह निवेदन, आपकी सेवा में, फिर से है कि मुझे लाहौर क़िले में रखने में सरकार की नीयत साफ नहीं थी, वह मुझसे अगस्त-क्रांति के सम्बन्ध की खबरें मुझपर जुल्म ढाकर प्राप्त करना चाहती थी। इस निवेदन के साथ अब मैं चौथे सवाल पर आता हूँ।

(४) इस क़िले में रखा जाना मुझसे खबरें लेने की बुरी नीयत से हुआ था, यह निवेदन मैं कर चुका हूँ। अब मेरा यह निवेदन है कि इस क़िले में रखकर मुझे जान-बूझकर और बदले की भावना से अतिरिक्त सज़ा देने की कोशिश की गई। एक तो इस क़िले में किसीको रखना ही, दूसरे जेलों को दृष्टि में रखते हुए, जान-बुझकर अतिरिक्त कड़ी सजा देना है। मैंने सरकार को लिखा कि मुझे किसी जेल में भेज दीजिये, किन्तु उसने यह कहकर उस दरखास्त को रद्द कर दिया कि कोई जेल मेरे लिए सुरक्षित नहीं है। यह दलील लॅंगड़ी है और इसीसे उसकी बुरी नीयत साफ प्रगट हो जाती है। मैं मानता हूँ कि सरकार को यह हक है कि वह अपनी सुविधानुसार जेल का चुनाव करे, किन्तु इस हक के प्रयोग की सीमा होनी चाहिये। जिसपर कोई मुकद्दमा न चला, जो अपराधी सिद्ध न हुआ, जिसे शान्ति-रक्षा के नाम पर ही नज़रबंद रखा गया है, उसके आराम और सुविधा का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा। पन्द्रह महीनों तक एक छोटी-सी कोठरी में दिन-रात बन्द रखना, शाम-सुबह सिर्फ एक घंटे के लिए बाहर निकालना, किसीसे मिलने-जुलने न देना—ये

तकलीफें तो सजायापता कैदियों को भी विशेष जुर्म पर ही दी जाती हैं। किसी भी तरह ये बातें नजरबंद पर लागू नहीं की जा सकतीं।

(५) अब मैं अपनी अन्तिम बात पर आता हूँ। मैंने अपनी पिछली दरखास्तों में चर्चा की है कि २० अक्तूबर १९४३ से १० दिसम्बर तक मुझे कष्ट और यन्त्रणायें दी गईं। ये यन्त्रणायें क्या थीं? इस सम्बन्ध में मैंने पंजाब सरकार के होम सेक्रेटरी को जो खत लिखा था, उससे ही उद्धृत कर देना काफी समझता हूँ—

'मैं पिछले साल १८ सितम्बर को अमृतसर मे गिरफ्तार किया गया और उसी दिन मुझे इस किले में लाया गया। गिरफ्तारी के करीब एक महीने बाद मुझे आफिस में ले जाया गया, जहाँ पंजाब, बंगाल और बिहार के सी० आई० डी० आफिसर हाजिर थे। मुझे सूचित किया गया कि मुझे कुछ सवालों का जवाब और अपनी हाल की कार्रवाइयों पर बयान देना है। मैंने अफसरों से कहा कि हाल की गुप्त कार्रवाइयों को छोड़कर आप जो कुछ पूछेंगे, मैं उसका जवाब दूँगा और जहाँ तक बयान देने की बात है, मुझे सिर्फ यही कहना है कि मैं भारत मे स्थापित अँगरेजी साम्राज्य का शत्रु हूँ (इङ्गलैंड या कामनवेल्थ का नहीं); मैं अपने देश को आजाद करने का काम करता रहा हूँ और तब तक करूँगा, जब तक उद्देश्य में मुझे सफलता मिले या मेरी मौत आ जाय। पूछताछ करनेवाले अफसरों ने कहा कि वे मुझे तब तक नहीं छोड़ेंगे, जब तक वे उन खबरों को, जिन्हें वह हासिल करना चाहते हैं, न पा लें।

इस तरह मुझसे वह तथाकथित पूछताछ शुरू की गई। इसके बाद मुझे रोज आफिस में बुलाया जाता और भिन्न-भिन्न समयों तक वहाँ बैठाया जाता। शुरू के दिनों में तो कुछ ही घंटों तक बैठाया जाता, तो भी मैंने उनसे कहा कि इस तरह मुझे जबर्दस्ती बैठाना और उन सवालों को दुहराते जाना, जिनका

जवाब मैं देना नहीं चाहता, मेरे प्रति जुल्म और ज्यादती है। उन्होंने जवाब दिया कि आप पंजाब की सी० आई० डी० के हाथों मे है, जहाँ इस तरह की बात उठाना भी फिजूल है। धीरे-धीरे पूछताछ का समय लम्बा होता गया—आठ बजे भोर से पाँच बजे शाम, फिर दस बजे रात और आधीरात तक। मुझे तरह-तरह से धमकाया जाता—कभी मुलायम से, कभी सभ्यतापूर्वक, कभी त्यौरी बदलकर गुस्सा दिलाते हुए। मैंने इसका बहुत विरोध किया और कहा कि मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट से मिलाओ या सरकार के पास लिखने दो। यह बात मुझे विचित्र लगी कि कैदी को उस सरकार के पास लिखने या शिकायत करने का मौका भी नहीं दिया जाय, जिसने उसे कैद किया है। मैं आपका ध्यान इस ओर भी आकृष्ट करता हूँ; क्योंकि इस बात के चालू रखने से बहुत-सी बुराइयाँ और बेइन्साफी हो सकती है। मेरे विचार से कैदी को दरखास्त देने का हक तो हर हालत में होना चाहिये। मैंने उस समय शेखी बघारने की नीयत से नहीं, बल्कि पूरी गम्भीरता के साथ, उनसे कह दिया कि आपलोग मेरी जान भले ही निकाल लें, किन्तु दबाव डालकर मुझसे बातें नहीं निकाल सकते। अपनी अवरोधी शक्ति का अन्दाजा किसीको नहीं रहता; किन्तु यह मेरा ईमानदार निर्णय था और आफिसरों को मैंने उसकी गम्भीरता अनुभव कराने की पूरी कोशिश की।

'मुझे जो कष्ट दिये जाते थे, वे यन्त्रणा में तब बदल गये, जब मुझे रात या दिन में सोने नहीं दिया जाता था। भोर से बारह बजे तक मुझे आफिस मे रखा जाता था। तब एक घंटे के लिए मुझे सेल में ले जाया जाता था; फिर वहाँ से एक या दो घंटे के लिए आफिस में लाते, फिर सेल मे ले जाते—यों इस सिलसिले को रात भर भोर तक जारी रखते। बीच-बीच में जो थोड़ा वक्त सेल मे मिलता, उसमें क्या खाक मैं सो पाता—ज्यों ही झपकी आती कि मुझे जगा देते और आफिस मे ले जाते। कागज पर लिखने में यह क्रिया

उतनी भीषण न मालूम पड़े, किन्तु मैं ईमानदारी से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कई दिनों तक लगातार इस क्रिया को दुहराने पर ऐसा मालूम पड़ता था कि दिमाग फट गया, नसें चूर हो गईं, उफ, कैसी यन्त्रणा ! हाँ, यंत्रणा छोड़कर इसका दूसरा नाम दिया नहीं जा सकता है !

'दिसम्बर के दूसरे हफ्ते में इस यन्त्रणा का अन्त हुआ और "पूछताछ" भी खत्म की गई। कुछ दिनों के बाद मुझे खबर दी गई कि अब मुझसे पूछताछ नहीं की जायगी।'

श्रीमान्, ये तथ्य हैं और सरकार को भी इसे अस्वीकार करने या इसकी सच्चाई पर उंगली उठाने की हिम्मत नहीं हुई है। अपने उस खत से ही मैं कुछ और भाग उद्धृत करना चाहता हूँ, क्योंकि वे इस मौके के लिए भी बेमौजूँ नहीं हैं—

'मेरी शिकायत यह है कि मुझे जो यन्त्रणायें दी गई हैं, या मेरे साथ जो ऐसा व्यवहार किया गया है, उसके लिये कोई भी औचित्य नहीं है। इसके लिये सरकार के पास कोई कानूनी या नैतिक भित्ति नहीं है। आर्डिनेन्सों में अधिक से अधिक अख्तियार दिये गये हैं, किन्तु ऐसी कार्रवाइयों के लिए उसमें भी जगह नहीं है। कैदी बेचारा सबसे निरीह प्राणी होता है; वह जो भी जुर्म करे, सभ्यता उसे बुरे व्यवहार से रक्षा करती है। अपने जुर्म के कारण, कानूनी ढग से, उसे फाँसी दी जा सकती है। कैदी की हैसियत से कैद के कानून तोड़ने पर, उसे सजायें भी दी जा सकती हैं; किन्तु पुलिस को यदि वह बातें न बताये, तो उसे कष्ट या यन्त्रणा नहीं दी जा सकती ; फिर राजनीतिक कैदी के साथ ऐसा व्यवहार हो, यह तो और भी भयानक बात है। यहाँ मैं सरकार का ध्यान दूसरी बात की ओर आकृष्ट करता हूँ। मैं अभिमान या शेखी नहीं दिखाता; लेकिन, अपनी बात को महत्त्व देने के लिए मुझे कहना पड़ता है कि यदि सी० आई० डी० मेरे

साथ ऐसा व्यवहार कर सकती है, तो उनलोगो के साथ कहाँ तक वह जाती होगी, जो मुझसे भी अधिक देशभक्त होंगे, किन्तु जो जनता के समक्ष या सार्वजनिक जीवन मे मेरे ऐसा स्थान या पद नहीं प्राप्त कर पाते। ऐसे लोगों को सी० आई० डी० की मर्जी पर छोड़ देना मुनासिब नहीं; ऐसी स्थिति का अन्त तो होना ही चाहिये।'

'राजनीतिक विपक्षियों का दमन और नाश तो नाजियों और फासिस्टो का तरीका है और कष्ट एव यत्रणायें उनके शासन के मुख्य चिह्न। यह तर्क पेश किया जाता है कि जो लोग मेरी तरह हिंसा में विश्वास रखते हैं, उनका दमन हिंसात्मक उपाय से करना अनुचित नहीं। मैं इस दलील को मान लेता हूँ, किन्तु उनके दमन के लिए भी कानूनी ढग को ही बरतना होगा। एक राजनीतिक क्रान्तिकारी को फांसी भी दे दीजिये, यदि कानून उसे अपराधी समझता है तो; लेकिन कोई सूचना या खबर उससे लेने के लिए उसे यत्रणा नहीं दी जा सकती। राजनीतिक सघर्षों मे युद्ध बहुत ही भयानक, पाशविक और सहारक है। किन्तु युद्ध के बदियों के लिए कुछ नियम हैं, जिनका पालन सुसभ्य समाज ईमानदारी से करता है। युद्ध क्षेत्र में जिसे किरचों से भोंक कर निर्ममता से मार दिया जा सकता है, उसे ही जब कैद कर लिया जाता है, तो उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया जाता और उससे उसके देश के जीवन के मापदंड और सेना मे प्राप्त पद के अनुसार बर्ताव किया जाता है।'

मैंने उस समय यह लिखा था और आज भी इन्हे इसलिए दुहरा रहा हूँ कि श्रीमान् इसपर विचार करें।

इसका एक दूसरा पहलू भी है। पूछताछ के सिलसिले मे कहा गया था कि पुलिस को अपना काम करना ही है और ऐसे कामों मे मानवी मूल्यों और सभ्य आचार पर जोर नहीं दिया जा सकता। ऐसा कहना किसी भी

सभ्य सरकार और उसकी पुलिस के लिए लज्जास्पद है। मान लीजिये, पुलिस मानवी मूल्य और सभ्य आचार पर ध्यान न दे, तो उसे कानून पर तो ध्यान देना ही है। मेरा दावा है कि मेरे साथ जो व्यवहार हुआ, वह कानून-सगत नहीं था।

समाप्त करने के पहले श्रीमान् से एक बात और कहना चाहता हूँ कि भारत-रक्षा-कानून और आर्डिनेन्सो ने इस नारकीय किले को पुलिस के लिए स्वर्ग बना रखा है। इस किले मे किसी कैदी को लाकर पुलिस उसे बाहर के ससार से बिल्कुल पृथक् कर देती है, उसे किसी कचहरी या मजिस्ट्रेट के पास पेश नहीं करती और जब तक चाहे, यहाँ सड़ाती रहती है। ऐसे तीन उदाहरण मेरे सामने हैं—इन्द्रप्रकाश आनन्द, जयचद्र विद्यालकार और डाक्टर राममनोहर लोहिया के साथ भी मेरे ही ऐसा या उससे भी बदतर व्यवहार किया गया है। मेरा ख्याल है, ऐसे सैकड़ों मामले होगे। मुझे ताज्जुब होगा, इस प्रान्त का सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश होने की हैसियत से यदि श्रीमान् पुलिस के जुल्मों के शिकार ऐसे निरीह बन्दियों की रक्षा करने का भार अपने ऊपर नहीं लेंगे।

अब मैं अपने कथन का सारांश दे रहा हूँ—

(क) फैसले में जो कई तथ्य बताये गये हैं, वे गलत हैं और मैंने जो तथ्य पेश किये हैं, उनका फैसले पर प्रभाव पड़ना चाहिये।

(ख) मैं जो कुछ दिनो के लिए जल्द जल्द स्टेट प्रिजनर बना दिया गया था, वह या तो इसलिए कि मेरी नजरबदी में की गई गैरकानूनी कार्रवाई को ढॅक दिया जाय या मेरे साथ जो दुर्व्यवहार हुआ है, उसकी ओर हाईकोर्ट का ध्यान नहीं जाने पावे।

(ग) लाहौर किले मे मुझे रखना बुरी नीयत का नतीजा था और है।

(घ) मेरे साथ २० अक्तूबर से १० दिसम्बर, १९४३ तक गैरकानूनी व्यवहार किया गया, यानी, मुझे कष्ट और यत्रणायें दी गईं ।

इसलिए मेरा निवेदन है कि ४९१ दफा के अनुसार या किसी दूसरी दफा के अनुसार मुझे यह अधिकार दिया जाय कि मैं अपने वकील के मारफत इस बात को कोर्ट के सामने पेश करूँ और इस सम्बन्ध में फैसला पाऊँ। अन्तिम बात के सम्बन्ध में आपसे यह प्रार्थना है कि आप उनलोगों के खिलाफ मामला चलावें, जो गैरकानूनी व्यवहार करने के मुजरिम हैं और मुझे आज्ञा दी जाय कि मैं सरकार पर मुकदमा चलाऊँ, जिसके नौकरों ने मेरे साथ ऐसे बुरे सलूक किये हैं ।

इस सम्बन्ध मे अपने वकील श्री जीवनलाल कपूर से सलाह ले सकूँ और उन्हें अपनी बातें बतला सकूँ, इसके लिए श्रीमान् से निवेदन है कि उन्हें मुझसे मिलने की आज्ञा उन शर्तों के साथ दी जाय, जिन्हे आप उचित समझें। यह भी निवेदन है कि इसकी एक कापी उनको दे दी जाय, जिसमें वह इस बारे में योग्य कार्रवाई कर सके ।

इतना समय लेने के लिए क्षमा चाहता हुआ,

श्रीमान का अत्यन्त विश्वस्त

जयप्रकाशनारायण

कुछ फुटकर चीजे

१. हमारे मेहतर

कम-से-कम उत्तर भारत में अछूतो की जितनी श्रेणियां है और उनके जितने प्रकार के कर्म हैं, उनमें मेहतरों या भगियों की श्रेणी और उनका कर्म मुझे सबसे पतित मालूम होता है। जो काम हम अपने भगियों से लेते हैं, वह ऐसा काम है कि उसकी वर्त्तमान दशा में किसी मनुष्य को अधिकार नहीं होना चाहिये कि दूसरे मनुष्य से वह कर्म कराये। जब जब मैंने मेहतरानियों या भगिनों को सर पर मैले का टोकड़ा या बालटी रखकर शहरों की सड़कों पर से गुजरते देखा है, तो मेरी आत्मा कांप उठी है और मैंने अक्सर अपने से पूछा है कि क्या यह काम मैं स्वय करने को राजी हो सकता हूँ? अमेरिका में जब पढता था, तो अनेक प्रकार के काम पढाई का खर्च जुटाने के लिए किये थे। खेतों मे, होटलों में, कारखानों में काम किये और अन्त में विश्व-विद्यालय में अध्यापन भी किया। इसी सिलसिले में एक बार शिकागो के एक होटल मे दो सप्ताह तक एक नीग्रो छात्र के साथ पाखाने भी साफ करने का काम करना पड़ा। लेकिन जिस प्रकार के वहां के पाखाने थे और जिस प्रकार के यन्त्रों तथा वस्तुओं से सफाई की जाती थी, वे ऐसे थे कि हाथों से गलीज़ का स्पर्श होता ही नहीं था और दुर्गन्ध भी नहीं के बराबर होती थी। जीवन भर यदि वही काम मुझे करना पड़े, तब तो मेरा मन अवश्य

विद्रोह कर उठें; लेकिन कुछ समय के लिए आज भी उस प्रकार का काम करने के लिए तैयार हूँ। दूसरों से भी वह काम कराने में मुझे कोई उज्र नहीं है, हालांकि मेरी कोशिश यह अवश्य रहेगी कि अप-टु-डेट ट्वायलेटों के साफ करनेवाले भी उमर भर वही धन्धा न करते रहें। लेकिन जो कर्म हमारे मेहतरों को आज करना पड़ता है, उसको ध्यान मे लाने पर भी जी मितला उठता है।

पटने में एक बार मेहतरो का युनियन बनाने का ख्याल हुआ। उस सिलसिले में उनके घरो मे जाना पडा। म्युनिसिपैलिटी की तरफ से उनके रहने की जगहें बनी हुई हैं या मुकर्रर हैं। वह जगहे इन्सान के रहने की जगहे नहीं हैं—वह नरक हैं, भीषण नरक। कम-से-कम कोई अमेरिकन किसान अपने सूअरों को भी वैसी जगहों मे न रखेगा। लेकिन यह एक ऐसा रोग है, जिसकी दवा थोडी-सी चेष्टा करने पर मिल सकती है।

असली और जटिल प्रश्न तो यह है कि जो काम हम अपने मेहतरों से लेते हैं, उसका क्या इलाज है? एक जवाब और बहुत हद तक सही जवाब तो यह है कि हम अपने शहरों में 'फ्लश' तरीके के पाखाने और अन्तर-वाहिनी नालियाँ बनायें। लेकिन क्या हम अभी बहुत वर्षों तक ऐसा कर सकते हैं? मेरा अनुमान है कि बहुत मुद्दत तक हमारी आर्थिक दशा इस सुधार की इजाज़त न देगी। तब फिर क्या इलाज है? गांधीजी के आश्रमवासी स्वयं पाखाने की सफाई करते हैं। लेकिन हमारे नगरों के बसनेवाले क्या ऐसा करेंगे? उत्तर स्पष्ट है। तो फिर क्या किया जा सकता है?

मेरे पास इस सवाल का जवाब नहीं है। अछूतोद्धार या हरिजन सेवा का जो लोग काम कर रहे हैं, उनके सामने मैं यह प्रश्न रखना चाहता हूँ। सम्भव है, वह इसका कोई हल निकाले। मैं यहां पर इतना ही और लिख सकता हूँ कि कुछ अनुभवी सैनीटेरी इञ्जीनियरों की एक कमिटी बना ली

जाय और उसके सामने यह समस्या रखी जाय कि हमारे मेहतरों का काम किस प्रकार थोड़ा मानुषीय बनाया जा सकता है। यदि कोई उपाय नहीं निकाला जा सके, तो मेहतरो का उद्धार हम एक ही प्रकार से कर सकते हैं—यानी उनको सघटित करके उनसे पाखाने साफ करने का काम छोड़वा दें और किसी दूसरे व्यवसाय मे उन्हें लगा देने का यत्न कर दें। ऐसी अवस्था मे शहर के बाबू लोग या तो खुद पाखाने साफ करेंगे या नर्क में रहने का दृढ और उत्तम निश्चय कर लेंगे। जिन लोगोंने (मैं भी अपने को उनमें गिनता हूँ) दूसरो को नर्क में डाल रखा है, वह यदि स्वय नर्क का आनन्द उठायें, तो शायद समाज का कुछ कल्याण हो और हम भारतवासी कम से कम सफाई के मामूली नियम तो सीख जायँ।

—लाहौर फोर्ट मे

२. स्वर्गीय सत्यवती देवी

प्रिय बलभद्र जी,

किन शब्दों मे अपने भाव व्यक्त करूँ ? आपने अपना जीवन-साथी खोया। मैंने तथा बहनजी के सहस्र साथियों और अनुगामियों ने भी अपना साथी खो दिया। आपका दुःख हमारा दुःख भी है, सारे देश का दुःख भी। इससे भी अधिक सान्त्वना और क्या हो सकती है ? आपका तथा वन्दनीय माताजी का दुःखभार इससे हलका तो होना चाहिए।

बहनजी की दशा बिगड़ती जा रही थी, यह समाचारपत्रों से मालूम हुआ करता था; लेकिन अन्त इतना समीप था, इसको तनिक भी शका नहीं थी। खैर, बहन ने अपने घोर पार्थिव कष्ट से मुक्ति पाई और अब जहाँ

भी वह होंगी, उन्हे शान्ति ही मिली होगी। हमलोगो के लिए तो वह एक ज्योति जगा गई; प्रकाश की एक ऐसी रेखा छोड़ गईं, जिसका अवलम्बन कर हम कल्याण-पथ पर नये साहस से अग्रसर हो सकेंगे। उसका बलिदान अमर रहेगा और उस अमरत्व की दो-दो बूंद पीकर हम जैसे भीरु भी बलिदान-पथ पर निर्भय हो बढते जायँगे।

इन शब्दों को उस दुःखद समाचार के मिलने के कई दिन बाद इसलिए लिख रहा हूँ कि उस समय महीने के सब खत लिख चुका था। आज १ ली तारीख को इस महीने के पत्र लिखने को मिले, तब यही पहला खत लिख रहा हूँ।

३ हमारा प्राचीन वाङ्मय

साधारणत· भारतीय हिन्दू अपने प्राचीन वाङ्मय से सर्वथा अपरिचित होता है। जो अपढ हैं, उनका तो कहना ही क्या! अधिक-से-अधिक उनके लिए इतना ही सभव है कि गांवो के कथावाचकों से वे उस वाङ्मय का थोडा परिचय प्राप्त करे। लेकिन कथावाचक प्राय रामायण, श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों से आगे नहीं जाते। जो पढे-लिखे हिन्दू हैं वे अधिकतर अग्रेजी वाङ्मय से परिचित होते हैं। इसमें भारतीय शिक्षापद्धति का दोष तो है ही, साथ साथ सस्कृत में प्रवेश होने की कठिनाई के कारण जो अपने दर्शनादि, वेदादि को देखना भी चाहते हैं, वे उन्हे देखने के सौभाग्य से वचित रह जाते हैं। अग्रेजी के द्वारा इनका वे मनन कर सकते हैं, लेकिन अग्रेजी की इतनी योग्यता बहुत कम लोगोमें होती है। इस परिस्थिति का नतीजा यह होता है कि हममें से अधिकांश अपने प्राचीन वाङ्मय को एक अपूर्व, अग्राह्य, अगम्य वस्तु समझ लेते हैं, जिससे हमारा मानसिक स्वातन्त्र्य और हमारा स्वाभाविक विकास दब जाता है। हमारे वेद, हमारे दर्शन

हिमालय-शृंखला बन जाते हैं, जिसकी चोटी पर हमारा पहुँचना असाध्य मान लिया जाता है। इस मानसिक और बौद्धिक संकोच को मिटाये बिना हममें न विचार-स्वातन्त्र्य पैदा हो सकता है और न मानसिक साहस। यदि प्राचीन भित्तियों के आधार पर हमें सभ्यता की नई मंजिलें खड़ी करनी हैं, तो उन भित्तियों को दृढ़ करना और उनका महत्त्व समझना आवश्यक होगा।

यह ठीक है कि हममें से जो लोग संस्कृत के आचार्य हैं, उनके लिए यह वाङ्मय गम्य और सुलभ है। लेकिन जनसाधारण की भाषा आज संस्कृत नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे समस्त प्राचीन वाङ्मय का जनसाधारण की भाषाओं में रूपान्तर किया जाय—इन भाषाओं में उर्दू भी एक है, इसे न भूलना चाहिए। आज परिस्थिति यह है कि हिन्दी या अन्य वर्त्तमान भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अंग्रेजी और जर्मन भाषाओं में हमारे वेद, दर्शनादि अधिक सुलभ हैं। यदि हिन्दी को ले लें, तो इस भाषा मे प्राचीन भारतीय वाङ्मय का अनुवाद करने का कार्य छोटे-मोटे प्रकाशकों का नहीं हैं। यह काम तो बड़ी बड़ी सार्वजनिक संस्थाओं का ही हो सकता है। क्या यह खेद का विषय नहीं है कि अमेरिका का एक विश्व विद्यालय—उदाहरण के लिए 'हरवर्ड' (Harward)—एक प्राच्य ग्रन्थ माला (Oriental Series) का प्रकाशन करे और हमारा हिन्दू विश्व-विद्यालय कौटिल्य के 'अर्थ-शास्त्र'-जैसी पुस्तक को भी अंग्रेजी में ही पढाये! यह आशा की जा सकती थी कि यह विश्वविद्यालय पुराने वाङ्मय का हिन्दी में प्राप्य बनाने की चेष्टा करेगा, लेकिन वहाँ भी अंग्रेजी भाषा का ही साम्राज्य है! वह साम्राज्य इतना विस्तृत है कि यदि कोई वक्ता वहाँ विद्यार्थियों की सभा में हिन्दी बोलना शुरू करता है, तो चारों तरफ से 'इंगलिश-इंगलिश' का शोर मच जाता है। कम-से-कम मेरा तो दो बार का यही अनुभव है। इसका कारण यह बताया जाता है कि वहाँ देश के हर

भाग से विद्यार्थी आते हैं और विशेषकर दक्षिण के विद्यार्थी हिन्दी समझने में कठिनाई महसूस करते हैं। यह भी विचित्र बात है। यदि ये दक्षिणी विद्यार्थी बर्लिन या पेरिस पढ़ने के लिए जाते हैं, तो ये चेष्टा करते हैं कि कम-से-कम समय मे जर्मन या फ्रेञ्च समझने और बोलने की क्षमता प्राप्त कर ले। लेकिन काशी में रहते हुए भी इस बात की प्रेरणा इनको नहीं होती कि थोड़ी हिन्दी सीख लें। परतु इनको ही क्यों दोष दिया जाय, जब स्वय महामना पडित मालवीयजी ने ही अपने पवित्र 'हिन्दू विद्यालय' में अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाना उचित समझा। यह कौन कह सकता है कि लाखों रुपये के खर्च से एक मदिर बनाने का जो आयोजन वहाँ हो रहा है, वह मदिर ही भारतीय सस्कृति को जीवित रखने का कारण बनेगा अथवा वह प्राचीन वाङ्मय के प्रकाशन का आयोजन, जिसके अभाव पर ऊपर खेद प्रकट किया गया है? उस सास्कृतिक वाङ्मय की अपेक्षा, जिसका पुनरुद्धार तबतक असभव है जबतक वह जनता के लिए सुलभ और सुगम नहीं बनाया जाता, महामना पंडितजी को सुर्खी-चूने में ही हिन्दू-सस्कृति की आत्मा ज्यादा सफाई से नजर आई।

मेरा ऐसा विचार है कि एक ऐसी सस्था स्थापित की जाय, जिसका केवल यही कार्य हो कि भारत के पुराने (वैदिक, अवैदिक, बौद्ध, जैन, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक) वाङ्मय का हिन्दी मे अनुवाद करे, कराये और प्रकाशित करे। व्यापारिक लाभ इस सस्था का हेतु न हो, केवल सास्कृतिक हेतु हो। इसमें सुलझे विचार के विद्वान् हों और इसका उपयोग मत-विशेष के प्रचार के लिए न हो। विद्वानों मे अंग्रेजी, जर्मन, चीनी, अरबी इत्यादि विदेशी भाषाओं के भी पंडित हों, लेकिन जहाँ तक सभव हो, सब भारतीय हों। विदेशी विद्वानों को—जिनसे सहायता लेना आवश्यक हो—एक परामर्श-दात्री समिति बना ली जा सकती है। अनुवाद

की भाषा—जैसे हिन्दी—सरल हो और (हिन्दी में) उर्दू के प्रचलित और सुबोध शब्दों का बहिष्कार न हो। आद्योपान्त कार्य-संपादन के लिए एक योजना बना ली जाय और एक निर्दिष्ट समय में कार्य को समाप्त कर देने की चेष्टा हो। इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि यह सारी योजना हमारे व्यापारी दानवीरों के चिद्विलास का हेतु न बन जाय। धन के बिना यह कार्य नहीं हो सकता, फिर भी धनियों के द्वारा इस कार्य का सपादन कल्पना से परे है। यह कार्य निःस्वार्थ, निर्द्वेष, महामना विद्वानो का है। स्पर्धा और द्वेष से आबद्ध पंडितों को भी इससे दूर रखना आवश्यक होगा।

लाहौर-किला, २० अगस्त १९४४

४. महादेवीजी

आज महादेवीजी के "अतीत के चलचित्र" और "स्मृति की रेखायें" समाप्त की। दूसरी पुस्तक मे पहली से अधिक प्रौढ़ता है—शैली और कला की। लकिन दोनो पुस्तकें सुन्दर हैं। अबतक हिन्दी मे ऐसी चीज देखने को नहीं आई थी।

इन पुस्तको मे उनलोगो की कथाएँ हैं, जिनके सम्पर्क मे महादेवीजी किसी न किसी समय मे आई हैं। बचपन के रामा से लेकर हाल के गुंगिया तक का वर्णन आता है। लेखिका के सभी पात्र गरीब, दुःखी, उत्पीड़ित साधारण प्राणी हैं, जिनमे अधिकतर स्त्रियाँ हैं। लेकिन इन कथाओं से महादेवी के व्यक्तित्व का ज्ञान भी हमे हो जाता है—और कितना सुन्दर है यह व्यक्तित्व! वह तो सहृदयता, सुशीलता और दयालुता की प्रतिमा-सी मालूम होती हैं। और, कठोरव्रती और कर्त्तव्यपरायण। मैं तो समझता था कि कवि होने के कारण उनका जीवन लिखने-पढने और काव्यचर्चा मे

ही बीतता होगा। लेकिन वह तो एक कुशल और दृढ़व्रती सामाजिक कार्य-कर्त्री भी हैं। जितना कार्य इस दिशा में उन्होंने अवतक किया है, उसके बल पर तो साधारण तरह से लोगोंको नेतागिरी प्राप्त हो जाती है। पर इनका सब काम एकान्त और विना विज्ञापन के हुआ है।

सहृदयता
शील
दुखी नारी
शुद्ध और शिव की ओर

५. विश्व-साहित्य-सार

दुनिया को उन्नत भाषाओं में—जैसे अँगरेजी, जर्मन, इत्यादि—प्रति-दिन नई नई पुस्तकें छपती रहती हैं। ये पुस्तकें साहित्य, कला, विज्ञान, सामाजिक-विज्ञान, दर्शन इत्यादि सभी विषयों पर लिखी होती हैं। हमें इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि एक ऐसे मासिक पत्र का प्रकाशन किया जाय, जिसमें इन विदेशीय ग्रन्थों में से कुछ चुनी हुई पुस्तकों का सार दिया जाय। यह काम कोई योग्य और प्रगतिशील प्रकाशक कर सकता है, लेकिन अधिक योग्यता से इसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी कोई संस्था ही कर सकती है। पुस्तकों का चुनाव और उनके सारांश का तैयार करना, यह कार्य एक योग्य सम्पादक-समिति के सुपुर्द होना चाहिये, जिसके सदस्य विदेशों की बौद्धिक उन्नति के सम्पर्क में हों। पंडित जवाहरलालजी इस सम्पादक-मण्डल के प्रधान यदि हो, तो मण्डल का कार्य योग्यता से सम्पादन हो सके।

१८—९—४४

६. मुलाकात

नरेन—२० वर्ष—एम० ए० का विद्यार्थी, क्रान्तिकारी, जिला अफसर का हत्या।

गौरी—१८ वर्ष—नरेन से देखादेखी। एक ही जाति। ब्राह्मण। नरेन व्याह नहीं करना चाहता था। गौरी को देखने के बाद राजी। व्याह के बाद हत्या। फरार। इसी अवस्था मे गौरी से उसके घर जाकर मिलना। गिरफ्तार। फांसी की सज़ा। गौरी का कचहरी और जेल मे मिलना। नरेन की जेलर से प्रार्थना। जेलर की शर्तें। फांसी के बाद गौरी का क्रान्तिकारी हो जाना। दादा। दूसरा हत्या। गौरी फरार। गिरफ्तारी। एक का मुखबिर होना। पुरुष-वेष। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट। फांसी।

७. गाँधीजी की एक चिट्ठी

प्रिय बापूजी,

चरणों में सादर सप्रेम प्रणाम!

प्रभा के हाथों आपका जो कृपा-पत्र आया था, वह उसी समय मिल चुका था। खेद है कि अब तक उत्तर नहीं दे पाया था, क्षमाप्रार्थी हूँ।

मैंने प्रभा से सिर्फ इतना ही कहा था कि आपसे पूछ ले कि जो पत्र लाहौर से सेवा में भेजा था, वह मिला था या नहीं। मुझे दुःख है कि उसने आपको पत्र लिखने का कष्ट दिया। फिर भी कृपापत्र पाकर धन्य हुआ हूँ।

यह सही है कि कुछ विचार-क्षेत्रों में मैं खिचकर आपके बहुत निकट आ गया हूँ, जिससे मुझे प्रसन्नता ही मिली है। परन्तु साथ ही इस बात का दुःख बना हुआ है कि मौलिक सिद्धान्तों के क्षेत्र में आज भी अपने को आप-

से उतनी ही दूर पाता हूँ, जितना कभी भी था और कार्य क्षेत्र से तो मुझे ऐसा लगता है कि मेरा क्षेत्र दूर ही नहीं, बल्कि नितान्त पृथक् भी हो जायगा। इधर प्राय: जितनी घटनायें हुई हैं, उनके कारण तो मैं इस धारा में अपने को अधिकाधिक वेगवान ही हुआ पाता हूँ। अस्तु, जैसा आपने लिखा है, जेल की और बाह्य जगत की भावनाओं में अक्सर अन्तर पाया जाता है।

यों तो जेल मनुष्य के रहने का स्थान नहीं है, फिर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं न अपनी रिहाई के दिन ही गिन रहा हूँ, न यही सोचता हूँ कि कोई महायज्ञ कर रहा हूँ।

क्रान्तियों में कुछ का मरना, कुछ का बरबाद हो जाना, कुछ का कारागारों में सड़ते रहना अनिवार्य है। इसमें किसी प्रकार के सोच-विचार का स्थान ही कहाँ है! अभी हजारों जेल में पड़े हैं—आगे भी हजारों पड़े रहेंगे।

अब हमारे बाग के बरसाती फूलों के म्लान मुख पर बुढापे की झुर्रियाँ पड़ चुकी हैं। उनकी जगह लेने के लिए शीत ऋतु के फूलों के अंकुर मिट्टी के अंचल में झाँक रहे हैं। और, आजकल मेरा अधिक समय उन्हींके भविष्य के निर्माण में बीत रहा है और इस कल्पना में कि मेरी इस छोटी दुनिया के किस कोने को कौन-सा फूल आलोकित करेगा और किस क्यारी को अपने मुस्कान से ढँक लेगा।

परिस्थिति इस बात का विश्वास दिला रही है कि अपनी कल्पनाओं का मूर्त रूप अवश्य देखने को मिलेगा।

और, इसमे प्रसन्नता का ही अनुभव करता हूँ, क्योंकि अपने परिश्रम का निष्फल जाना साधारणत: मनुष्य को सह्य नहीं होता।

आशा है, इस बकवास से कुछ मनोरंजन ही हुआ होगा। फिर भी पत्र की लम्बाई के लिए क्षमा चाहता हूँ। पत्रोत्तर देने का कष्ट न करें, तो ही मुझे संतोष होगा।

बम्बई में ज्वर हो आने का समाचार पढ़कर दुःखी हुआ था। आशा है, अब स्वास्थ्य ठीक होगा। सरदार साहब के चरणों में मेरा प्रणाम। समाचार-पत्रों से यह जानकर खुशी हुई है कि उनके स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। आशा है, शीघ्र ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर सकेंगे।

प्रभा पिछले मास के १५, १६ को आई थी। फिर इस महीने के अन्त में उसके आने की आशा है।

आपका—
जयप्रकाश

जयप्रकाश की विचारधारा

चतुर्थ खंड

आजादी के बाद

जनराज्य या हिन्दूराज्य

एक लम्बे अर्से के बाद आपके सामने आने का मौका मिला है। इस अर्से में देश मे बड़ी-बड़ी घटनायें घटी हैं। उन घटनाओं का क्या महत्त्व है, मैं नहीं जानता कि आपमें से कितने भाई उसे समझते होंगे। उन घटनाओं ने देश के सामने एक बहुत बड़ा प्रश्न खडा कर दिया है। १५ अगस्त को देश आजाद हुआ। बडी कशमकश के बाद हमने आजादी हासिल की। आपस में जो भी झगड़े हों, प्रवृत्तियाँ हों, रास्ते हों, लेकिन, यह आज़ादी बराबर कायम रहेगी, यह आमलोगों का ख्याल है। किन्तु, पिछले हफ्तों की घटनाओं ने सवाल पेश किया है कि यह आजाद हिन्दोस्तान कै दिन जिन्दा रह सकेगा? या यह जिन्दा रहेगा भी कि नहीं? मैं मानता हूँ, सबको इस खतरे का अनुभव नहीं हो सकता। आजाद भारत के जीने पर भी सशय हो, इतनी दूर तक अभी बहुतों ने नहीं सोचा हो। लेकिन, यदि आप हालत को समझेंगे और सोचेंगे, तो आप भी उसी नतीजे पर आयेंगे।

कुछ दिन पहले मैं दिल्ली गया था—रेल और खान के मज़दूरों का सवाल लेकर। उन्हीं दिनों दिल्ली में दगा चल रहा था। मैंने जो हालत देखी, जो तस्वीर देखी, उससे मैं बहुत चिन्तित हुआ, परीशान हुआ। सिर्फ दु:खी ही नहीं हुआ, देश के अधकारमय भविष्य की कल्पना कर स्तब्ध रह गया। अखबारों में आपने सिर्फ यह पढा होगा कि पजाब और दिल्ली मे दगे हो रहे

दंगों में जिन लोगोने भाग लिया था उनके सामने एक तस्वीर थी, बडी लुभावनी तस्वीर। वह तस्वीर थी हिन्दू राज्य कायम करने की। यह सुनने में अच्छा लगता है। लेकिन, सोचिये तो रहस्य खुले। हिन्दू राज क्या है? उसमें सिक्ख क्यों रहेंगे, हरिजन क्यों रहेंगे, पारसी और ईसाई क्यों रहेंगे? हिन्दुओं मे भी किसका राज—मराठों का या राजपूतों का? हिन्दू राज एक धोखा है, यह सर्वनाश का रास्ता है। जो हिन्दू राज की बात करते हैं, वे हमें आपस के झगडे मे फँसाना चाहते हैं। आज हिन्दोस्तान का एक छोटा-सा टुकडा निकल गया है, हम-आप सभी चिन्तित हैं। लेकिन, तो भी एक बहुत बडा हिस्सा एक साथ है। अगर वह हिस्सा भी टुकड़े-टुकड़े हो गया, तो याद रखिये, हमारे सारे बलिदान निष्फल हो जायेंगे। हमारे शहीद आस्मान से आँखों में आँसू भरकर हमारी ओर देखेंगे और हमें शाप देंगे—हमने, ओ कपूतो, क्या इसीके लिए अपनी जान की कुर्बानी की? तिरंगे झंडे की छाया में हमने गोली खाई, डंडे खाये, हम मिट गये; लेकिन, उसकी शान नहीं मिटने दी कि समूचे देश मे इस तिरंगे के नीचे एक राज्य कायम हो, पूर्ण स्वराज्य कायम हो। और, तुम ऐसे नालायक निकले कि हमारे देश को टुकडों मे बँटवा दिया! अब भगवा झंडा ले के क्या इस बड़े टुकड़े को तार तार कर देना चाहते हो? बताइये, अपने शहीदों की इस उक्ति का हम क्या जवाब देंगे?

याद रखिये, हिन्दू साम्प्रदायिकता एक बर्रे का छत्ता है, ज़हर का गोता है, उसे खोदकर मत उकसाइये, नहीं तो, आप हम कहीं के नहीं रह जायँगे। आज कांग्रेस की हुकूमत है, राष्ट्रीय सरकार है, तो भी हमारे प्रान्त में क्या हो रहा है? राजपूत, भूमिहार, कायस्थ, यादव, कुरमी आदि जातों की पार्टियाँ बन रही हैं। आपस की फूट है, तू-तू मैं-मैं है, लोग तबाह हैं। फिर जब हिन्दुत्व के नाम पर आप राज्य कायम करेंगे, तो उसमें कितने भेद-

'भाव होंगे, कितनी परीशानियाँ होंगी—आप सोच सकते है।

मुझे सुनने में आया है, हमारे बहुत से नौजवान भाई राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ मे भर्त्ती हो रहे हैं। मैं साफ कहूँ, यह आप गलत कर रहे हैं, आप गलत रास्ते पर जा रहे हैं। आज मुसलमान समझने लगे हैं कि जिना का रास्ता नाश का रास्ता है। किन्तु, कितना बड़ा अफसोस कि हमारे भोले भाले उत्साही नौजवानों को उसी नाश के रास्ते पर ले जाया जा रहा है। मैं अपने उन नौजवान साथियों से कहता हूँ—कि मैं आपका साथी हूँ, आपका सेवक हूँ। आपसे मैं पूछता हूँ कि वह कौन-सी तस्वीर थी हमारे सामने, जिसने हमे घर की माया-ममता से खींचकर वलिदान के रास्ते पर ला खड़ा किया था? हमारा क्या उद्देश्य था हजारों तरह की मुसीबतें झेलकर आगे बढ़ने में? क्या आपलोगों ने उन दिनों यह सुना था कि आजादी की लड़ाई हिन्दू राज्य कायम करने के लिए लड़ी जा रही है? क्या हमारे शहीदों के सामने यह हिन्दू या सिक्ख राज्य था? १९४२ की क्रान्ति मे जो नौजवान जगल जगल घूमते रहे, जो नौजवान देश के बाहर नेताजी की फौज मे शामिल हुए, क्या उनके दिमाग मे हिन्दू राज था, मुस्लिम राज की तस्वीर थी? आजादी की लड़ाई इसलिए लड़ी गई थी कि हमारे गरीब देश के लोगोंको भरपेट भोजन मिले, कपड़े मिले। हमारे लाखों भाई आज सड़कों के किनारे बाल-बच्चों को लेकर जिन्दगी गुजार रहे हैं। हम आजादी इसलिए चाहते थे कि सबके पास अच्छा घर हो और घर के अन्दर अच्छी गृहस्ती। एक अकाल आता है और लाखों आदमी मर जाते हैं। बगाल के अकाल में ३५ लाख आदमी मर गये। हम आजादी इसलिए चाहते थे कि एक ऐसा हिन्दोस्तान बनायें, जिसमें अकाल न हो, बीमारी न हो, गरीबी न हो। अस्पताल बने, स्कूल बने। हम अपने लोगोंको सभ्य बनायें, सुसस्कृत बनायें। समाज में घोर अन्याय है. जो मेहनत करते हैं, एँड़ी-चोटी का

पसीना एक करते हैं, वे भूखों मरते हैं और जो कोई काम नहीं करते, ऐश करते हैं। हम आजादी इसलिए चाहते थे कि उस अन्याय को दूर करें, उस प्रथा को हटायें, जिसके चलते ऐसे अन्याय होते हैं, न कि हिन्दू राज, खालिस्तान या द्राविड़िस्तान कायम करने के लिए।

हिन्दू राज की बातें करके जो लोग हमारे नौजवानों को राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ में भर्त्ती करते हैं, उनसे पूछिये—क्या हिन्दू राज पहले नहीं था और आज भी नही है ? नेपाल में तो हिन्दू ही राजा है, वहाँ का क्या हाल है, आप जानते हैं ? मैं वहाँ जेल मे कैद था, वहाँ के बारे में कुछ जानकारी रखता हूँ। हमारे देश मे जब विदेशी राजा था, तो भी हम उस राज्य की आलोचना कर सकते थे—अखबार निकालते थे, सभा करते थे, उससे लड़ने के लिए सगठन करते थे। लेकिन नेपाल के आपके हिन्दू राज में वहाँ के शासकों के खिलाफ आप जबान भी नहीं हिला सकते। यदि ऐसी गुस्ताखी आप करें, आप की जबान खींच ली जाय, आपका सिर उतार लिया जाय। सिक्ख भाई जरा पटियाला जाकर देखें, सिक्ख राज कैसा होता है ? मैसूर मे हिन्दू राज्य है, जो हिन्दू प्रजा पर गोलियाँ चलवाने में नहीं हिचकता। त्रावनकोर का हिन्दू दीवान पाकिस्तान से दोस्ती गाँठने चला था। इन हिन्दू राज्यों मे एक राजा है, उसके आसपास सैकड़ों जागीरदार हैं, वे जनता को लूटते हैं, बीसों रानियाँ रखते हैं, तरह-तरह के दुराचार करते हैं। ऐसे राज्यों और राजाओं के दिन लद गये। आज जनता का ज़माना है। हम एक ऐसी दुनिया देखना चाहते हैं, जिसमें कोई राजमुकुट पहननेवाला न रहे। जो लोग हिन्दू राज की बात करते हैं, वे प्रतिक्रियावादी हैं, वे देश को सैकड़ों वर्ष पीछे ले जाना चाहते हैं।

दिल्ली में एक सज्जन मेरे पास आये और बोले कि हमारा हिन्दू राज से मतलब है, रामराज्य से। मैंने उनसे कहा—रामराज्य की शकल में जो

राज्य क़ायम करना चाहेगा, वह पड़ोसियों के घर में आग नहीं लगावेगा, लूटमार नहीं करेगा, परायी औरतों की इज्ज़त नहीं लूटेगा, बच्चों को कत्ल नहीं करेगा। आग लगाकर, बलात्कार करके, कत्लेआम करके रामराज्य नहीं कायम किया जा सकता। वह तो जानवरों का राज होगा, डकैतों का राज होगा, लठैतों का राज होगा। आप रामराज्य क़ायम करना चाहते हैं, तो हिन्दोस्तान में एक ही व्यक्ति है, जिसके चरणों के नीचे आपको बैठना होगा, जिसके चरण-चिह्नों पर चलना होगा। वही एक व्यक्ति है, जो देश को रामराज्य की ओर ले जाना चाहता है, उसीकी तपस्या ने हमें आज़ादी दिलाई है, उसीके तपोबल से हमारा बूढा देश ससार के देशों के सामने सिर ऊँचा करके खड़ा हुआ है। उसीके उपदेशों और आदेशों पर चलकर हम रामराज्य क़ायम कर सकते हैं, बाकी लोग तो हमे धोखा देना चाहते हैं।

राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के अन्दर गरीब नौजवान, स्कूल-कालेज के विद्यार्थी और छोटे-छोटे रोजगारियों और व्यापारियो के बच्चे शामिल हो रहे हैं। उन बेचारों को यह पता भी नहीं है कि इस संघ के पीछे कौन-सी ताक़त काम कर रही है। देश की आज़ादी के लिए किसी एक भी राजा ने काम नहीं किया—वे अँगरेजों के जूते चाटते रहे। जमींदार और सेठ-साहूकार भी अगरेजों के ही खीमे में रहे। उनमें से सिर्फ चन्द इने-गिने लोगोंने देश का साथ दिया। बाकी लोग जिस समय देश जीवन-मरण के बीच में था, चोर-बाज़ारी और मुनाफाखोरी से जेब गर्म कर रहे थे। गांधीजी ने पिछली लड़ाई में अंगरेजो की कोई मदद न करने को कहा। न एक पाई, न एक भाई—यह था राष्ट्र का नारा। लेकिन, ये जमींदार और साहूकार राष्ट्र की पुकार सुन सके? जेल से निकलकर मैंने भी इनसे बार-बार अपीलें की, लेकिन, कौन सुनता है! वे तो लड़ाई में लखपती से करोड़पति बनते रहे। हिन्दू सभा या राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के लोग भी उन दिनों

कहाँ थे ? जब फाँसी और गोली के मौके थे, तो ये बिलों में घुसे रहे। लेकिन आज आज़ादी मिलते ही बाहर आये हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पीछे करोड़पति हैं, राजे-महाराजे हैं, उनका रुपया है, उनका हाथ है। उनके छिपे हुए मतलब को समझना कोई मुश्किल नहीं है। इन राजों-महाराजों, जमींदारों-साहूकारों को हिन्दोस्तान की जनता से खतरा है। आजादी के बाद खतरा बढ़ गया है। वे देख रहे हैं—एक तूफान, एक आँधी आ रही है। यह तूफान राजमुकुटों को सरों से गिराकर सात समुद्र पार फेंक देगा। यह आँधी तिजोरियों से नोटों के पुलिन्दों को उड़ाकर भुखमरों और भिखमगों में बाँट देगी। वे इस आँधी-तूफान को रोकना चाहते हैं, किन्तु, रोकें तो कैसे ? जब अँगरेजों की तोपें कोई काम कर न सकीं, तो फिर इनकी क्या बिसात ? तब उन्होंने एक नई चाल चली है। इनकी नई चाल यह है कि जनता को ही पथभ्रष्ट कर दें, देश की प्रगतिशील शक्तियों को दूसरे रुख पर मोड़ दें। ऐसा समाँ पैदा कर दें कि मजदूर राज, किसान राज की बात हवा में उड़ जाय और हिन्दू राज्य के भूल-भुलैया में सब लोग पड़ जायँ; तिरंगे को लोग भूल जायँ और भगवे झण्डे के नीचे सारी प्रगतिशील शक्तियाँ एकत्र होकर प्रतिक्रिया के पथ की ओर मुड़ जायँ। यह भगवा झण्डा देश के लिए खतरा है, गरीबों के लिए खतरा है, आपके लिए खतरा है। हम इस खतरे का सामना करें। हम साफ बातें अपने नौजवानों से कहें। हमारे नौजवानों का हृदय साफ है। क्रान्ति और प्रगतिशीलता उनकी नसों में है, वे बहकावे में नहीं आ सकते और जो फँस गये हैं, वे भी इस माया-जाल को छोड़कर निकल जायँगे।

साम्प्रदायिकता आज़ादी पाने के पहले भी हमारा दुश्मन थी। अँगरेजों ने इसको पाला-पोसा, इसको मदद दी। फिरकापरस्ती के चलते ही देश दो टुकड़ों में बँटा। हमने अँगरेजों पर विजय प्राप्त की; पर, पूरी नहीं।

कितने दुःख की बात है, आज भी साम्प्रदायिकता हमारा दुश्मन बनी हुई है। कल उसके शिकार मुसलमान थे, आज हिन्दू होने जा रहे हैं। यह फिर हममें झगड़े पैदा कर रही है। एक बार हम आपस में लड़े, तो डेढ सौ वर्षों तक गुलाम रहे। यदि हमने फिर वही ग़लती की, तो हमारे देश पर क्या आफत आयगी, इसकी कल्पना से ही मैं घबरा जाता हूँ।

देश पर सकट है। मैं बार-बार कहता हूँ कि विश्वास रखे, यह हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा नहीं है। इन झगड़ो की आड़ मे दूसरी ताक़तें काम कर रही हैं। दिल्ली में ऐसे हिन्दू नौजवान मिले, जो कहते हैं—एक दिन जवाहरलाल की लाश सड़को पर पाई जायगी। वे बेचारे नही जानते कि जिस दिन जवाहरलाल की लाश सड़को पर होगी, उस दिन हिन्दोस्तान की लाश ससार के सामने लावारिश पड़ी होगी।

आप पूछ सकते हैं, हिन्दुओं पर इतने अत्याचार हुए, उनका क्या जवाब? क्या हम बैठे रहे? इसका जवाब सीधा है। यदि आप समझते हैं कि आप जुल्म को जुल्म से बद कर सकेंगे, तो यह नादानी है। क्या आप दस करोड़ मुसलमानों को मिटा सकते हैं? जो 'हां' कहते हैं, वे पागल हैं। इनको मिटाने के लिए आपको भी मिट जाना पड़ेगा। जिन बातों के लिए हम जिना साहब को गाली दें, वे ही काम हम खुद करें। किन्तु, उसका नतीज़ा? जब बिहार में दगा हुआ, तो लोग कहते थे—शाबास विहारियो, अच्छा जवाब दिया, अब दगे रुक जायंगे। क्या दगे रुक गये? हमने उस समय जो किया, उससे पाकिस्तान को जड़ मजबूत हुई। दुनिया ने भी मान लिया कि जब बिहार ऐसे काग्रेसी सूबा मे ऐसा हो सकता है, तो दूसरी जगह क्या नही हो सकता? पाकिस्तान बनकर रहा।

आज तो आपको अपनी सरकार है। यदि आपपर कोई जुल्म करता है, तो उसका जवाब आपकी सरकार दे सकती है, चाहे वह जुल्म पाकिस्तान

करे या अफ्रीका—जिना करे या स्मट्स। लेकिन यह जवाब तभी मिल सकता है, जब आपकी सरकार मजबूत हो। आज तो जिना देखता है कि जवाहरलाल की हुकूमत में जवाहरलाल की बात नहीं चलती। उसका हुक्म उसके मुलाजिम नहीं सुनते। फिर उस सरकार की ताक़त ही क्या है? आप दिल-दिमाग को दुरुस्त कर अपने राज्य को मज़बूत तो बनाइये। हमारे देश में किस चीज की कमी है? कमी है तो मेहनत की, ईमानदारी की। हमारे पास कोयला है, लोहा है, अन्न है, कपास है। हमारे पास बिजली पैदा करने के सामान हैं। ३० करोड़ से ज्यादा की हमारी तायदाद है। अगर हम एक राज कायम करें और मेहनत करें, तो फिर हम क्या नहीं कर सकते? १९१७ की क्रान्ति के समय रूस एक हारा, थका, उजड़ा हुआ देश था। तीस साल के अन्दर उसने ऐसा सगठन किया है कि अब सिर्फ अमेरिका ही उसका मुकाबला कर सकता है। हमने भी यदि योजनायें बनाकर ईमानदारी से काम शुरू किया, तो हमारा देश भी उतना ही बड़ा हो सकता है। फिर पाकिस्तान की क्या हस्ती, जिना साहब की क्या ताक़त जो हमारे लोगोंपर अत्याचार कर सकें? यदि आप पाकिस्तान से बदला चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि जो हिन्दू या सिक्ख पश्चिमी पजाब से भाग आये हैं, उनको ज़मीन और रुपये वापस हों, तो उसका एक ही तरीका है कि आप अपनी हुकूमत को मज़बूत बनाइये, देश को मजबूत बनाइये। मुसलमानों को कत्ल करके आप उसका बदला नहीं चुका सकते।

मुसलमानों को यहाँ से हटा दिया जाय; ज़रा इसके बारे में भी सोचें। मैंने हमेशा लीग की मुखालफत की, जिना को मीरजाफर कहा। पजाब में जहाँ मुसलमानों की आबादी ७०-८० सैकड़े तक है, उन जगहों में भी मैंने जिना को मीरजाफर कहा। किन्तु, मैंने जिना या लीग को सभी मुसलमानों का प्रतिनिधि नहीं माना। कांग्रेस के अन्दर भी मुसलमान हैं और बड़े बड़े

मुसलमान हैं। क्रांतिकारी आन्दोलन में रामप्रसाद फांसी पर चढ़े, तो अशफाक़ भी फाँसी पर चढ़ा। आज़ाद हिन्द फौज में सहगल थे, तो शाहनवाज़ भी थे। हमारी पार्टी में ऐसे मुसलमान हैं, जिनपर हमें नाज़ है। फिर हम मुस्लिम लीग और मुसलमान को एक कैसे समझते हैं? हाँ, मुसलमान जनता को भड़काया गया, उसे गुमराह किया गया। हमसे भी ग़लती हुई कि हम मुसलमान जनता तक नहीं पहुँच सके। नतीजा यह हुआ कि लीग ने उन्हें मनमाना नचाया। किन्तु, हम उन्हें आज भी समझा सकते हैं, उनको अपनी तरफ कर ले सकते हैं। मुझे मुस्लिम जनता पर विश्वास है। किन्तु, मैं साफ कह दूँ, मुस्लिम लीग के जो लीडर आज हमारे नेताओं के साथ घूमा करते हैं और हिन्दोस्तान के प्रति राजभक्ति की कसमें खाते हैं, उनपर मेरा विश्वास नहीं है। खलिकुज़्ज़मा साहब को आपने देखा न, उन्होंने राष्ट्रीय झंडे को सलाम किया, राजभक्ति की कसमें खाई; किन्तु, कराँची पहुँचते ही उनको राजभक्ति हवा में उड़ गई। आप ऐसे लीगी लीडरों को हिन्दोस्तान से निकाल दीजिये, मुझे कोई उज्र नहीं है। किन्तु, आप साढे चार करोड़ मुसलमानों को किस तरह हटायेंगे, इसपर सोचिये। आज दस बीस लाख शरणार्थियों को हटाने में आपकी सरकार को दो करोड़ रोजाना खर्च पड़ रहा है। यदि साढे चार करोड को हटाया, तो कितना खर्च होगा, यह सोचिये। और, वह पैसे आयेंगे कहाँ से? आपकी ही जेब से तो। फिर इनके ढोने ढुलाने मे जो परेशानी होगी, सारा इतजाम तखड़-पखड़ हो जायगा, उसकी कल्पना भी आप कीजिये और अत मे एक बात और ख्याल कीजिये—अपना घर सबको प्यारा होता है। जिन साढे चार करोड़ को सगीन की नोकों से आप निकालेंगे, वे आपके जानी दुश्मन बन जायंगे और पाकिस्तान के साढे चार करोड़ मुसलमानो से मिलकर हिन्दोस्तान के खिलाफ इतना बड़ा जबर्दस्त मोर्चा बनायेंगे कि हमारा सारा ध्यान लड़ने-लड़ाने में

ही लगा रहेगा; क्योंकि वे लोग अपने घरों पर फिर से कब्जा करने को छटपटाते रहेंगे। याद रखिये, प्रतिशोध की भावना सभी भावनाओं से प्रबल होती है। हमें ठंढे दिमाग से सोचना है और एक ऐसी परिस्थिति पैदा करना है, जिसमें टूटा हुआ हिन्दोस्तान फिर एक हो सके। यह तभी हो सकता है जब कि हम हिन्दोस्तान के मुसलमानों के दिल को जीतें और दिल्ली के तख्त पर एक ऐसा राज्य कायम करें, जो जनता का राज्य हो, सही मानी में किसान-मजदूर का राज्य हो। जब दिल्ली में किसान मजदूर-राज्य कायम होगा और हिन्दोस्तान के मुसलमान खुशहाल होंगे, तब पाकिस्तान के मुसलमान सोचने लगेंगे कि यह क्या? हमसे कहा गया था, दिल्ली पर हिन्दुओं का राज्य है, किन्तु वहाँ तो हिन्दुओं का नहीं, गरीबों का राज्य है। हमारे ही जैसे खेतिहरों और मेहनतकशों का राज्य है, तो वे फिर अपने यहाँ नवाबों और सरमायेदारों का राज्य बर्दास्त नहीं करेंगे। वे इस्फहानी और ममदोत के यथार्थ रूप को समझ जायँगे और उन्हें तख्त से उतार डालेंगे। वहाँ भी गरीबों का राज्य होगा। फिर पाकिस्तान और हिन्दोस्तान के गरीब हाथ मिलायेंगे, उनका दिल एक होगा, उनका राज्य एक होगा। अपने देश से मुसलमानों को हटाकर आप यह तस्वीर नहीं खींच सकते।

ठंढे दिल से सोचिये कांग्रेस ने क्या कहा था—सभी हिन्दोस्तानी एक हैं, भाई-भाई हैं, हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख-पारसी सभी भारत माता की संतान हैं। गांधीजी ने ४० करोड़ को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की। यह तो जिना ने कहा था कि हम अलग अलग हैं और इसलिए कहा था कि वह अंगरेजों के इशारे पर नाचते रहे। लेकिन आज अजीब हालत है। हिन्दू लोग मुस्लिम लीगी बनते जाते हैं और मुसलमान कांग्रेस की ओर आ रहे हैं। हजारों साल से लोग हमारे देश में आते रहे। आर्य, हूण, शक, मुगल, पठान सब आये और एक हो गये। किन्तु, यदि हमने उन्हें अलग माना, तो

निश्चय ही लीग का झंडा अपने हाथ में ले लिया, हम जिना की फौज में शामिल हो गये। जिना की फौज आज टूट रही है, क्योंकि मुसलमान अब समझने लगे हैं कि उनको धोखा हुआ। वे भक्ति की शपथ लेकर कांग्रेस की फौज मे शामिल होने को आतुर हैं। जिना का रास्ता पकड़कर हम सर्वनाश की ही ओर जायँगे, यह याद रखिये।

देश के सामने नाजुक हालत है। हम अपने नौजवान साथियों से खासकर अपील कर रहे हैं—नौजवानो, आपने इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा लगाया, वह सफल हुआ, किन्तु, सफलता आधी ही मिली है। राजनीतिक इन्कलाब में हम सफल हुए, हम आज आजाद हैं। लेकिन, दूसरा इन्कलाब बाकी है। हमें सामाजिक क्रांति करनी है। गरीबी, सामन्तशाही, पूँजीवाद और जाति भेद आदि को दूर करना है। जाति-भेद को दूर किये बिना हम उन्नति की ओर नहीं बढ़ सकते। आजादी के बाद अब समाजवाद ही एक रास्ता रह गया है। सारी दुनिया में समाजवाद की लहर है। पूँजीवाद बूढा हो चला है। यूरोप में इसका जन्म हुआ, वहाँ इसके दफन की तैयारियाँ हो रही हैं। हिन्दोस्तान में समाजवाद कायम करना है, तो ऊँच नीच, जात-पाँत का भेद हटाना होगा। साम्प्रदायिकता और फिरकापरस्ती को लात मारनी होगी। आप ही नौजवानों पर आसरा है। अफसोस, आप धोखे मे आकर भगवा झंडे के पीछे दौड़ रहे हैं। आपका झंडा तिरंगा है, जिसे आपने खून से रँगा है। इस झंडे को हटाकर, कांग्रेस को मिटाकर, आप हिन्दू राज्य भी कायम नहीं कर सकते। सारा देश टुकड़े-टुकड़े में बँट जायगा। दिल्ली का गौरव नष्ट हो जायगा, राजे-महाराजों और पूँजीपतियों की चाँदी होगी, गरीब पिस जायँगे। आप गलत जगह पर खड़े न हों। जो लोग तिरंगे के सामने सर नहीं झुकाते, वे गद्दार हैं, देशद्रोही हैं। आइये, हम देशद्रोहियों को दूर भगायें। आज भारत माता कीचड़ में पड़ी है। उसे हिमालय के शिखर पर रखें और उसके

वरदहस्त की छाया तले एक ऐसा राज्य बनायें, जो जनता का राज्य हो, किसानों और मजदूरों का राज्य हो ; जिस राज्य में सब सुखी रहें, सब आनन्द रहें।

बापू की हत्या : जिम्मेवार कौन ?

पिछले महीनों में हमारे देश मे जो दुर्घटनाएँ हुई हैं, वैसी दुर्घटनाएँ हमारे देश के इतिहास मे क्या—दुनिया के किसी देश के इतिहास में नही हुई थीं। हाल ही में देश ने आजादी हासिल की थी कि उसके सर पर सकट के पहाड़ टूट पड़े। बड़े-बड़े सकट आये, झगड़े-फसाद, खून-गारत क्या-क्या न देखने पड़े हैं हमको। एक बाजाप्ता लड़ाई भी कई महीनों से चल रही है। इन मुसीबतों से सारा मुल्क दबा जा रहा था कि अचानक एक ऐसी बड़ी मुसीबत आ गई, जिससे देश की कमर टूट-सी गई है। अभी हम उठकर खड़े हुए थे, कदम बढ़ा रहे थे कि गाज गिरी और हमें सर पर हाथ रखकर बैठ जाना पड़ा। अब हम किस तरह फिर खड़े होगे, कैसे आगे बढेगे किस रास्ते से जायँगे—सारे देश के हृदय में यही प्रश्न उठ रहा है। किन्तु, इसका जवाब आसान नहीं। जो कुछ देश ने किया, उसपर पानी फिर जायगा। साठ बरस की तपस्या, त्याग, कुर्बानी व्यर्थ जायगी, यदि हमने आगे का रास्ता नहीं ढूँढ़ निकाला। चोट खाकर भी हमे सम्हलना है, कर्त्तव्य को निभाना है, सही रास्ते पर जाना है। देश पर जो मुसीबतें आई, वे क्यों आईं, कैसे आई—इसे समझना सबके लिए जरूरी है। जो हुआ, सो हुआ। आगे हमारी मुसीबतें आपसे आप बद हो जायँगी, यदि हम ऐसा समझें तो यह भूल होगी।

दुश्मन घर में है और उसने अपनी जड़ बहुत नीचे तक जमा रखी है। उस दुश्मन को पहचानना है और उसे जड़ से उखाड़ कर खत्म करना है।

कोई अमर होकर नहीं आया। महात्माजी कहते थे कि वह १२५ साल तक जीना चाहते हैं। वह जीना चाहते थे दुनिया के मजे लूटने के लिए नहीं। और नेताओं के घर जमींदारियां हैं - रुपये-पैसे हैं। उनके लिए अच्छे अच्छे पद हैं, वजारत है, किन्तु गांधीजी ने तो घर को भी छोड़ रखा था, बाल-बच्चों को छोड़ रखा था। पद का सपना भी वह देख नहीं सकते थे। वह जीना चाहते थे तो देश के लिए, देश की सेवा के लिए; किन्तु ऐसे वक्त पर वह चले गये, जबकि उनकी सबसे ज्यादा जरूरत थी। यों तो ऐसे भी बहुत-से लोग हैं, जिन्होंने उनके चरणों मे बैठकर सीखा था, वे भी कहते थे—'अब महात्माजी सन्यास ले लें, राजनीति में दखल न दें', 'राजनीति के सिद्धान्त कुछ जुदे होते हैं ; वह महात्मा हैं, राजनीति के दांव-पेंच वे क्या जानें'—किन्तु, आपलोगों का ध्यान तो गांधीजी पर लगा था। आजाद हिन्दोस्तान की सरकार किसकी हो, गांव कैसे हों, शहर कैसे बसाये जायँ, उद्योग-धन्धों की उन्नति किस तरह हो, किस तरह की शिक्षा हो, हमारा आपस का बर्ताव कैसा हो—इन सारी बातों में जनता गांधीजी ही की तरफ देखती थी। इस मौके पर वही देश को राह बता सकते थे। देश को ही नहीं—दुनिया को राह दिखाना था उन्हें। इस दुनिया में जहां पशुता का ही बड़ा बल समझा जाता है, जहां हथियार और फौज ही सबसे बड़ी शक्ति समझी जाती हैं, आज उनकी जरूरत सब दिनों से ज्यादा थी, तभी वह चले गये। जिस तरह लोग जाते हैं, वह भी चले गये होते, उनकी प्राकृतिक मृत्यु हुई होती, तो भी हिन्दोस्तान को दुख होता, तब भी यह कमी पूरी नहीं हो सकती थी। किन्तु, वह जिस तरह गये, उसने हमारे शोक को और बढ़ा दिया है, हमारी क्षति को अपूरणीय कर दिया है; किन्तु हमें सिर्फ रोना नहीं

है। जिन व्यक्तियों के ह थ उनका वलिदान हुआ, हमे उन्हे पहचानना है और उन्हें किस तरह पछाड़ें, शिकस्त दें—यह सोचना है। हम अँगरेजों से लड़े, उन्हे हराया, गुलामी से छुटकारा पाया, किन्तु शत्रु नये ढग का है। इन नये शत्रुओं का मुकाबला कैसे किया जाय—यही सवाल है। अँगरेजों को भो हिम्मत नहीं हुई थी कि उनकी शान के खिलाफ कुछ करें। उन्हें गिरफ्तार भी किया गया, तो कभी उनके हाथ में हथकड़ियाँ नहीं डाली गईं, जेल में भी ले गये, तो इज्जत से ले गये—उसी महात्मा की हत्या एक हिन्दोस्तानी के हाथ से हो जाय, क्या यह आश्चर्य की वात नहीं मालूम पड़ती ?

याद रखिये—यँह किसी पागल का काम नहीं था। किसी एक व्यक्ति ने उनकी हत्या नही की। देश में एक जमात थी—एक खास ढग के लोग थे, जिनका हाथ इस हत्या में था। गाँधीजी ने हमे वहुत-सी बातें सिखाई थीं। कुछ पर हमने ध्यान दिया, कुछ को अनसुनी कर दिया। दिल्ली से प्रतिदिन प्रार्थना मे कितनी बातें वताते थे वे हमें। किन्तु कितने लोग उनपर ध्यान देते थे ? तो भी वह हमें वताते जाते थे। किन्तु, वह हमें यह नहीं बता सके कि जो लोग हमारी आजादी को बर्बाद कर देना चाहते हैं, उनसे हम किस तरह से बचे। जो उनकी जिन्दगी से नहीं सीख सके, अब हम उनकी कुर्बानी से तो सीखें। तीन महीने पहले मैंने अपने एक भाषण मे कहा था कि देश में एक अजीव ताकत पैदा हो गई है। उस ताकत ने दिल्ली में दस दिनों तक गजब मचा रखा था। वह मुसल्मानो की ताकत नहीं थी। वे तो पनाह माँग रहे थे—भागे जा रहे थे। खतरा था उन हिन्दुओं से, उन सिक्खों से, जिन्होंने लूटमार मचा रखी थी, जिन्होंने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि इस हुकूमत को जनता के हाथों से, जनता के प्रतिनिधियों के हाथो से छीन लेंगे। वे सरेआम कहते थे कि हम वर्मा की हालत यहाँ भी करेंगे;

गांधी और जवाहर की लाशें दिल्ली की सड़कों पर तड़पती होंगी। मैंने आपको उन दिनों आगाह किया था और आपको बताया था कि आजादी की लड़ाई क्यों लड़ी गई। गरीबों की तकलीफ दूर हो, जनता का राज हो, भूखों को अन्न मिले, फटेहालों को कपड़े मिलें, बीमारों को दवा मिले, स्कूल कालेज खुलें, कृषि और उद्योगों की तरक्की हो—आजादी की लड़ाई इसलिये लड़ी गई थी। हमारे देश में उलटी गंगा बह रही है; मेहनत करनेवाले तो भूखों मरते हैं और बैठे-ठाले लोग मौज करते हैं, सेवा कराते हैं। ऐसा राजतन्त्र, ऐसा आर्थिक-तन्त्र देश में हो, जिसमें मेहनत का बँटवारा न्याय के अनुसार हो। आजादी की लड़ाई अलवर ने, ग्वालियर ने या पूंजीपतियों और करोड़-पतियों ने नहीं लड़ी। वे तो अँगरेजों के जूते झाड़ते रहे। लड़े गरीब। तो राज भी गरीब का होना चाहिये। यही समस्या है—सबसे बड़ी समस्या। एक इन्कलाब हो चुका है—दूसरा इन्कलाब होना चाहिये। राज में क्रांति हो चुकी है, अब समाज मे क्रान्ति होनी चाहिये। एक ऐसा समाज बनाना चाहिये, जिसमे नीच-ऊँच का भेद न रहे; कोई राजा और कोई रंक न हो। यह काम अँगरेजी राज के हटाने से भी बड़ा काम है; किन्तु, यह होकर रहेगा। दूसरा इन्कलाब भी जल्द आनेवाला है। कांग्रेस तो कोई सोशलिस्ट संस्था नहीं। उसकी भी आर्थिक समिति की रिपोर्ट से जो सूरत निकली है, आपने देखी होगी। उसमें भी समाजवाद है, जिससे कलकत्ता और बम्बई के पूंजी-पतियों के झुंड में तहलका मच गया है और वे तार-पर-तार दिल्ली भेज रहे हैं।

यह जो शक्तियाँ इन्कलाब से घबराती हैं, उनके पास अँगरेजों की तरह के कोई साधन नहीं कि जनता का मुकाबला कर सकें। ये राजे, ये नवाब, ये सेठ, ये साहूकार क्या खाकर जनता का सामना कर सकेंगे? उनके पास न फौज है, न कोई शासन-यन्त्र है, इसलिये इन्होंने कुछ ऐसे उपाय

सोच निकाले हैं कि जिनसे इनकी रक्षा हो सके। इन्कलाब से हमीं सबक नहीं लेते हैं, जनता के दुश्मन भी सबक लेते हैं। वे देखते हैं कि बहुमत गरीबों का है। गरीबों का स्वार्थ एक है, उनकी तकलीफें एक हैं और उन तकलीफों को दूर करने का तरीका भी एक है। वह तरीका है, जनता का जबर्दस्त संगठन। जब सब गरीब एकत्र हो जायँगे, हमारी सत्ता छीन लेंगे, हमारे राज-पाट, बैंक, कारखाने सबपर कब्जा कर लेंगे। इसलिये कोई ऐसा रास्ता निकालो कि गरीब एक न हो सकें। अँगरेजों से उन्होंने सबक लिया है। हम आपस में झगड़ रहे थे कि अँगरेज आ गये और इस झगड़े को हमेशा बढ़ाते रहे और वे तबतक बने रहे, जबतक हम एक न हो गए। कांग्रेस ने सबको एक किया। अब ये सरमायेदार जागीरदार यह चाह रहे हैं कि उस एकता को तोड़ दें—जनता को आपस में लड़ा दें। ऐसी हालत पैदा कर दें कि हिन्दू किसान मुसलमान किसान का गला काटें, पठान मजदूर सिक्ख मज़दूर के पेट में छुरा भोंक दें—यही नहीं, बंगाल-बिहार का झगड़ा हो, गुजरात-महाराष्ट्र का झगड़ा हो, यों तरह-तरह के झगड़े हों कि सारी जनता, जो उनकी ओर बढ़ी आ रही है, वह पथ-भ्रष्ट हो जाय—उद्देश्य को भूलकर बीच में उलझ जाय। मैंने आपको कहा था कि यह जहर हटाइए। मुसलिम लीग के नेतृत्व और अँगरेजों के षड्यन्त्र से देश के तीन टुकड़े हो गए हैं। यदि हमने इन्हे नहीं रोका, तो जनता के राज की बात तो दूर, देश ३०० टुकड़ों में बँट जायगा। एक हिन्द राष्ट्र नहीं हो सकता। जब हिन्दू राज्य होगा, तो सिक्ख राज्य क्यों नहीं ? बौद्ध, जैन, पारसी, आदिवासी इनके भी अलग-अलग राज्य क्यों न बनेंगे ? फिर हिन्दुओं में भी किनका राज्य ? राजपूतों का राज्य, जाटों का राज्य, ब्राह्मणों का राज्य—किनका-किनका राज्य ? भरतपुर के जाट दिल्ली पर आँख गड़ाए हुए हैं। राजपुताने में राजपूतों का राज—किन्तु वहाँ भी उदयपुर का राज्य या जयपुर का

राज्य ? और, मराठों का राज्य हो, तो शिवाजी के देश-घर कोल्हापुरवालों का राज्य या बड़ौदा अथवा ग्वालियर का राज्य ? याद रखिये, इन राजाओं में देश की भक्ति नहीं है। इनका अपना-अपना स्वार्थ है। होड़ें लगेंगी और फैसले के लिए कोई गोलमेज कान्फरेंस नहीं बैठेगी, तलवार से फैसले होंगे—खून की नदी बहेगी, देश सैकड़ों टुकड़ों में बँट जायगा और हमारी वही हालत होगी, जो मुगल सल्तनत के बिगड़ने पर हुई। फिर ? गुलामी को आने से भी हम नहीं रोक सकेंगे; हम गुलाम होकर रहेंगे।

जिस समय मैंने ये बातें कहीं, उस समय अखबारों ने मेरी खिल्ली उड़ाई, नेताओं ने मुझपर फब्तियाँ कसीं; किन्तु, जिनके दिमाग के दरवाजे बन्द थे, अब खुल जाने चाहिए। यदि साम्प्रदायिकता रही, तो हम आगे बढ़ नहीं सकते। भिन्नताओं की हममें कमी नहीं। भिन्नताओं को अलग करके ही हमने आजादी हासिल की। इन भिन्नताओं को दबा कर ही हम उसे क़ायम रख सकते हैं। लोहार लोहे को गरम करके, पीट करके, तब तलवार या हल बनाता है। यदि हमने यह नहीं किया, तो महात्माजी का बलिदान निष्फल जायगा। सबसे पहले हम हिन्दोस्तानी हैं, उसके बाद हिन्दू या मुसलमान, बिहारी या बंगाली। जब तक हम ऐसा नहीं सोचते, तब तक देश बच नहीं सकता। तब तक हमारा कोई भविष्य नहीं। यही महात्माजी बार बार कहते रहे और अपनी शानदार शहादत द्वारा चलते चलते फिर अन्त में उन्होंने हमें यही बताया है। १५ अगस्त के बाद हम कई कदम पीछे ही गये हैं, आर्थिक दृष्टि से और राजनीतिक दृष्टि से भी। दुनिया में जो हमारी इज्जत थी, उसे भी हमने धूल में मिलाया है। यह खुशी की बात है कि हुकूमत की भी आँखें खुली हैं और उसने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उनकी तरह की दूसरी फिरकापरस्त जमातों को गैरकानूनी करार दिया है। हम पहले से ही आगाह कर रहे थे, किन्तु देश के नेताओं ने ध्यान नहीं

दिया। यहाँ बिहार राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की रैली हुई और उसमें कई वजीर तक गये। ऊपर से देखने पर तो कवायद अच्छी लगती ही है। किन्तु, असल चीज थी उनकी अदरूनी सर्किल। उस सर्किल मे लेकर तब वे भेद बताते थे। हमने ये बाते जनता के सामने रक्खी, कांग्रेस के सामने रक्खीं ? किंतु दुश्मन हुकूमत के साये में पलता रहा, बढता रहा। हुकूमत बदलने को सबको हक है, किन्तु उसका तरीका क्या हो ? सावरकर या गोडसे जनता से कहे कि यह खराब राज है। जब चुनाव हो, तो जनता से कहें कि वह उन्हे ही वोट दे और जनता यदि हत्यारो का ही राज चाहे, उन्हें ही वोट दे, तो यही सही। आखिर लोग आत्म-हत्या भी तो करते ही है। यदि जनता आत्म-हत्या ही करना चाहे, तो उसे कौन रोक सकता है ? किन्तु जब सैकड़े निनानवे लोग नेहरू का राज चाहते हैं, तब सैकड़े एक बम-पिस्तौल से इस राज को उलटाना चाहें— यह तो देश के साथ, जनता के साथ गद्दारी है। अँगरेजो के खिलाफ हममें से कुछ ने पिस्तौल चलाये, बम फेंके; क्योंकि वह राज जनता की इच्छा के खिलाफ देश पर लादा गया था। इसलिये हमें यह हक था कि उसे उलट दें। किन्तु, जो राज प्रजा की इच्छा से कायम हुआ, उसके साथ यह सलूक करना तो प्रजाविद्रोह है, प्रजा के साथ गद्दारी है। ऐसा राज प्रजा-राज नहीं कहा जा सकता, वह तो कातिलो का राज होगा, लुटेरों का राज होगा, चाहे ऐसे लोग राजा हों या नवाब, पूँजीपति हों या करोड़पति।

दिन दिन यह खतरा बढता जा रहा था। हम गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे। आखिर कांग्रेस का ध्यान इस ओर गया और दिल्ली में जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई, तो उसमें राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के खिलाफ प्रस्ताव पास हुआ। उस प्रस्ताव को खुद गांधीजी ने अपने हाथों से लिखा था और बताया था कि यह सघ देश के लिए मिनेस है, खतरा है—

किन्तु, तीन महीने हो गये केन्द्रीय सरकार ने या सूबाई हुकूमतों ने उसे दबाने के लिए क्या किया ? कांग्रेस की संस्था सर्वव्यापी है, गाँव-गाँव तक इसकी पैठ है। प्रान्तीय सरकारों और कांग्रेस संस्थाओं ने उस तरह काम किया होता, जैसा हमने किया, तो शायद हमने महात्माजी को नहीं गँवाया होता। मैंने पूना में, जहाँ इस संघ का गढ़ है और जहाँ इसके गुरुजी का घर है, हेडगवार साहब, जो हिटलर से सीखकर आए थे, उनके घर में भी खुलेआम संघ की भर्त्सना की। मेरे पास संघवालों ने धमकी के खत भेजे, लेकिन मैं सब जगह गया और बोलता रहा; किन्तु कांग्रेस के कुछ नेताओं ने, कुछ वजीरों तक ने कहा कि यह तो देशप्रेमियों की संस्था है। मुझे इससे चोट लगी। यह गैरजिम्मेवारी क्यों ? गांधीजी की इस हत्या की जिम्मेवारी उन सब लोगोंपर है, जिन्होंने साम्प्रदायिकता से समझौता किया। सिर्फ महात्माजी की हत्या ही उनका उद्देश्य नहीं था। उनके बाद बड़े पैमाने पर हत्यायें करने का षड्यन्त्र था। इन हत्याओं से वे दिल्ली की हुकूमत उलट देना चाहते थे। उनके आदमी हुकूमत में थे, पुलिस में थे, सिविल सर्विस में थे, सेक्रेटेरियेट में थे। उनका आयोजन था कि जब दिल्ली पर ये हमला करेंगे, तो उनके ये सब-के सब लोग उनकी मदद करेंगे। यह खतरा अभी टला नहीं है। चन्द गिरफ्तारियों से कुछ होने-जाने का नहीं। मजबूत हाथों से इनका सर कुचलना होगा, साथ ही जनता में पूरा प्रचार करना होगा। ये नौजवान क्यों संघ में गये ? उनमें शक्ति थी, उमंग था। हम कहते रहे कि उनके लिए कोई रास्ता बनाइये। एक ऐसी सिविल-गार्ड, नैसनल-गार्ड बने, जिसमें हम नौजवानों को भर्ती करें, उन्हें कवायद सिखायें, हथियार चलाना सिखायें, उन्हें बौद्धिक शिक्षा दें। किन्तु ऐसा किया गया ? नेशनल गार्ड की बात मे भी वही नौकरशाही तरीका—जैसे हजार वर्ष में नया हिन्दोस्तान बनेगा।

जैसा मैंने कहा, सकट टला नहीं है और हमें उसका सामना करना है। इसी उद्देश्य से हमने दिल्ली में एक बयान दिया। उस बयान को लेकर तरह-तरह की गलतफहमियाँ फैलायी जा रही हैं। यहाँ भी कहा गया है कि मैं उन गलतफहमियों को दूर करूँ। आप मेरे अपने हैं। मैं आपके घर का हूँ। आपको भी मेरे बारे में गलतफहमी हो, ऐसी उम्मीद मुझे नहीं थी। किन्तु, दुर्भाग्य से ऐसे अखबार हैं, जिनकी नकेल करोड़पतियों और महाराजाओं के हाथ में है। वे जिस तरह प्रचार कर रहे हैं, उनके चलते आपके दिल में गलतफहमी हो जाय, तो आश्चर्य की बात नहीं। किंतु, आप मेरी नीयत पर शक करें, तब मुझे दुःख होगा। मैं गलती कर सकता हूँ, मतभेद भी हो सकता है; किंतु, यह कहना कि मैं महात्माजी की हत्या से फायदा उठाना चाहता हूँ, मेरे साथ अन्याय करना है। १९३० से ही बिहार मे सोशलिस्ट पार्टी कायम है। दूसरों की गलती से हमने कभी नहीं फायदा उठाया। फिर महात्माजी की हत्या से फायदा उठाना चाहूँ, तो मुझे सार्वजनिक जीवन मे रहने का कोई हक नहीं। व्यक्तिगत रूप से मैं उनके कितना निकट था, आप जानते हैं। मेरी पत्नी और मुझे उनके निकटसम्पर्क का सौभाग्य प्राप्त था। आर्थिक प्रश्नों पर भी इधर उनसे मेरा बहुत-कुछ मत साम्य हो-चला था। किंतु, ऐसे भी अवसर आये हैं कि मैंने उनसे मतभेद प्रगट किया। किंतु, इस मतभेद मे बदतमीजी नहीं, अश्रद्धा नहीं आने दी। फिर उनके उठ जाने के बाद मैं फायदा उठाना चाहूँ, तो मेरे लिए राजनीतिक जीवन में रहने का स्थान नहीं। मेरा यह पक्का विश्वास है कि गांधीजी की हत्या इसलिये हुई कि हमसे गलतियाँ हुईं, हमारे नेताओं से गलतियाँ हुईं। मैं भाग्य नहीं मानता कि मान बैठूँ, यही होना था। यदि हमने जनता को सघ के खतरों से आगाह किया होता, हमारे वजीर सघ के जलसों में शामिल नहीं हुए होते और उसकी तारीफें नहीं किये होते, यदि हमने नौजवानों

को समझाया होता, उससे हटाया होता, तो मेरा विश्वास है, हमने गांधीजी को नहीं . खोया होता। गांधीजी की रक्षा का जो इन्तजाम था, उसमें भी त्रुटियाँ थीं। हमसे गलती हुई है, तो हमें साफ स्वीकार करना चाहिए। किन्तु, हम तो बातों पर हमेशा लीपा-पोती करते हैं। बिहार में इस छोटे की बात लीजिये। इतना हल्ला मचा, फिर वही लीपा-पोती हुई। मैंने समझा था कि सत्य कहने से हम गाली सुनेंगे। तो भी उसे जनता के सामने रखना ही चाहिये। यही हमारी मशा थी। किन्तु, हमें गालियाँ ही गालियां मिलीं। कहा जाता है, गांधीजी गये, तो जयप्रकाश को पद की उत्सुकता हुई है। मैं पद चाहता, तो पहले मिल गया होता। ऐसे पद, जिनके लिए खुशामदें होती हैं, सिफारिशें होती हैं। मन्त्री का पद भी मेरे लिए दूर नहीं था। खुद महात्माजी ने कई बार चर्चा की थी। मैं ज्यादा अक्लमन्द नहीं; किन्तु, इतनी अक्ल तो मुझमें थी ही कि यदि मैं पद चाहता, तो खुशामद करता, न कि इस तरह की निर्भीक बातें कहता। यह निर्भीकता अपने माता-पिता से सीखी, आपसे सीखी और गांधीजी से सीखी। खैर, इस बयान से किसीका नुकसान नहीं हुआ; नुकसान हुआ, तो मेरा ही। एक सभा में मैंने पटेल और नेहरू के मतभेदों की चर्चा की, तब भी फब्तियां कसी गईं कि शोक-सभा में यह चर्चा ठीक नहीं। दिल्ली में जितनी शोक-सभायें मैंने कीं, उतनी दूसरे किसी ने नहीं की। इन बीसों सभाओं में से सिर्फ एक में मैंने इसकी चर्चा की और वह भी खास उद्देश्य से। दिल्ली मे यह आम चर्चा थी कि पटेल और नेहरू में हर मामले में मतभेद है। बड़े-बड़े लोगोंके हल्के में भी यही चर्चा। विदेशी अखबारों तक में भी यही चर्चा। मैं चाहता था कि उसे सामने रख दूँ कि हमारे वे दोनों नेता इस भ्रम को दूर कर दें और जनता को विश्वास दिलावें कि दोनों मिलकर आगे का रास्ता बतावेंगे। मुझे खुशी है कि इस काम में भी मुझे कामयाबी मिली और दोनों नेताओं के जो बयान छपे हैं,

उनसे बात साफ हो गई है।

दिल्ली की वर्त्तमान हुकूमत से बहुत लोग सतुष्ट नहीं हैं। जब साम्प्रदायिकता से लड़ना है, तो फिर उसमें हिन्दू-सभा या अकाली दल के लोग क्यों रहें। मन्त्रिमडल कोई दुर्घटना होने पर ही बदलता है। लड़ाई के जमाने में चर्चिल और रूजवेल्ट ने कई बार अपने मन्त्रिमडलो में परिवर्त्तन किये। अंगरेजों पर आज आर्थिक सकट है। इस सकट के मुकाबिले मे एटली ने अपने मंत्रि मडल में कितने ही क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किये हैं। मैंने कहा—हमारे लिए यह भी तो महान सकट आन पड़ा है, यही मौका है कि मन्त्रिमंडल मे परिवर्त्तन किये जायें। साम्प्रदायिक लोगोंको वहाँ से हटाया जाय और उन्हें भी, जो हमेशा दुश्मन की कतार में रहे हैं। यह जनता की हुकूमत है; यह पूँजीपतियों की हुकूमत नही। तो भी अभी हाल में एक नेता ने पूँजीपतियों को सबोधित करते हुए कहा कि घबराते क्यों हो, एक वजीर को हमने इसीलिये रखा है कि वह तुम्हारे प्रतिनिधि हैं। आप ही बताइये, क्या इस तरह का आश्वासन जनता के हित के लिए है? मन्त्रिमडल में परिवर्त्तन करने की बात कहकर मैंने कोई बेमौके बात नहीं कही है, यह मेरा आज भी विश्वास है।

किन्तु यह तो कैफियत है, जो आपलोगों को दे देना जरूरी था, क्योंकि आप मेरे अपने हैं। लेकिन असल बात तो वह है, जो कि मैंने आपसे पहले कही। यह जो कुछ गिरफ्तारियाँ हो रही हैं, उनका होना जरूरी था। किन्तु इन गिरफ्तारियो से साम्प्रदायिकता दूर होने को नहीं। फिर सघ या मुस्लिम लीग के नेशनल गार्ड को गैर-कानूनी करार दिया गया, किन्तु मैं पूछता हूँ कि महासभा या मुस्लिमलीग को भी गैर-कानूनी करार क्यों नहीं दिया जाता? यह कहना कि इन सस्थाओं को दबाना प्रजातन्त्र को दबाना होगा, बिल्कुल गलत बात है। यदि हमें एक सयुक्त राष्ट्र बनाना है, तो राष्ट्रीय एकता को

कायम रखना होगा। धर्म के नाम पर वोट माँगने का हक देना उस राष्ट्रीय एकता को तोड़ना है। आर्थिक कार्यक्रम के बदले धर्म के नाम पर वोट माँगने की इजाजत अगर हम देंगे, तो हमारे राजनीतिक जीवन में एक ऐसी धाँधली मचेगी कि हमारे लिए कहीं ठिकाना न रहेगा। जिस समय पाकिस्तान बना, सोशलिस्ट पार्टी ने उसी समय कहा था कि देश में किसी साम्प्रदायिक संस्था के लिए इजाजत नहीं होनी चाहिए। हम आज भी कहते हैं कि तुरत कानून बनाना चाहिये कि कोई भी संस्था एक जात, फिरका या धर्म के नाम पर राजनीतिक क्षेत्र में काम नहीं कर सकती। पहले हमारी आवाज नहीं सुनी गई। महात्माजी के इस महान बलिदान के बाद भी तो हमारे इस कथन की सचाई को समझने की कोशिश की जाय।

सबसे बड़ा खतरा तो उनलोगों से है, जो हुकूमत के अन्दर रहते हुए भी संघ के हमदर्द हैं। बिहार के कुछ बड़े पुलिस अफसरों पर भी यह इलजाम है; उसका एक सबूत भी हमारे पास है। बिहार में संघ का संचालक कोई जोशी नाम का आदमी था। भारत सरकार ने संघ को गैर-कानूनी घोषित किया, उसके तीन दिनों के बाद जोशी के घर की तलाशी हुई। अंगरेजों के जमाने में कांग्रेस जब गैर-कानूनी होती थी, उसी आधी रात को सारे देश में तलाशियाँ हो जाया करती थीं, गिरफ्तारियाँ हो जाया करती थीं। आज तो अपना राज है। और भी मुस्तैदी से काम होना चाहिये। फिर यह कैसी बेढंगी बात कि तीन दिनों के बाद हमारे पुलिस अफसरों की नींद टूटे। मैं उनलोगों में से हूँ, जो यह मानते हैं कि सरकारी मुलाजिमों को भी अधिकार है कि वे राजनीतिक ख्याल रखें और अपनी पसन्द के राजनीतिक दलों के लोगों को ही वोट दें। सरकारी अफसर भी तो नागरिक हैं। उन्हें नागरिकता का हक क्यों न मिले? लेकिन हुकूमत के अन्दर एक आतंकवादी जमात के मेम्बर हों, यह बहुत बड़े खतरे की बात है। अफसोस की बात है कि ऐसे

लोगोंपर दिल्ली या यहाँ कोई कार्रवाई नहीं हुई है । जिसका नमक खाते हैं, उसीके साथ गद्दारी ! ऐसे लोगोंको मुहकमे से हटा देना चाहिये । मेरा बस चले, तो उन्हें न सिर्फ डिसमिस किया जाय, बल्कि उन्हें जेल में डाल देना चाहिये ।

साम्प्रदायिकता का अन्त सिर्फ सरकार को ही नहीं करना है । आपलोगों का भी इसमें कोई कर्त्तव्य है। यथार्थ बात तो यह है कि साम्प्रदायिकता आप ही मिटा सकते हैं । आपमे से एक एक का यह धर्म होना चहिये कि जहाँ भी साम्प्रदायिकता देखिये, उसका सर कुचल दीजिये। जो भूले हुए लोग हैं, उन्हें समझाइये, अपने में लाइये , किंतु जो राष्ट्रवाद के खिलाफ करते या कहते हैं, उनका स्थान अपने समाज में कोढियों का-सा कर दीजिये । वे हर जगह से अपने को निकाले हुए समझें । नौजावानों से मेरी खास अपील है। आप अपनी जिम्मेवारी समझे और फिरकापरस्ती से लड़ें । हमारे सर पर जो कलक का टीका लग गया है, उसे नौजवान ही धो सकते हैं । हमारा कितना बड़ा पतन हो गया है । हमारे देश मे ऐसा दुष्कर्म कभी नहीं हुआ था । बहुत से देश मिट गये, किंतु हमारा देश इसीलिए बचा रहा कि हममें उच्च कोटि की नैतिकता थी । दूसरे देशों की तरह हमने सेनापतियों या सम्राटों की पूजा नहीं की । हमने हमेशा महात्माओं और धर्म गुरुओं की पूजा की, किंतु आज हमारा इतना पतन हो गया है कि हमने सबसे बड़े महात्मा की हत्या कर डाली है । हम पशु हो गये हैं। हमें पशुता से मानवता की ओर बढ़ना है । महात्माजी ने हमें बताया था कि अत्याचार का बदला हमें अत्याचार से नहीं लेना है । अगर पाकिस्तान में लूट होती है, तो हम भी लूट-मार करें बच्चो की हत्या करें, औरतो की इज्जत लूटें ? यह धर्म नहीं, न्याय नहीं, इसमे देश का कल्याण नहीं । नोआखाली का बदला हमने बिहार मे लिया, लेकिन उसके बाद क्या आया ? पाकिस्तान बनकर रहा लूट-हत्या बढ़ती

गई और अन्त में हमें महात्माजी से हाथ धोना पड़ा। महात्माजी ने पाकिस्तान नहीं मंजूर किया था, न हमने किया था। पाकिस्तान तो मंजूर किया था पटेल साहब ने, नेहरू साहब ने। अब मुसलमानों की भी आँखें खुल रही हैं। जिनलोगों ने पाकिस्तान के नाम पर उनलोगों से वोट लिए, वे उन्हें छोड़ कर चले गये। यदि इसपर भी वे गद्दारी करें, तो उन्हें गोली से उड़ा दो। किंतु याद रखो, गद्दारों की कमी हिंदुओं में नहीं है। जिन्होंने गांधी या नेहरू की गिरफ्तारी की, क्या वे मुल्क के गद्दार नहीं थे? जो आज भी सरकारी मुहकमों में घूसखोरी करते हैं; आजाद हिंदोस्तान में घूस—क्या यह गद्दारी नहीं है? जिन व्यापारियों ने चोरबाजारी की, क्या वे गद्दार नहीं? जो लोग त्रिवेणी संघ, भूमिहार सभा आदि बनाकर जाति के नाम पर वोट मांगते हैं, क्या उनसे भी बढ़कर कोई दूसरा गद्दार है? इन गद्दारों को पहले खतम करो, तब मुसलमानों की ओर नजर डालना। हमारे देश में हमेशा से तरह-तरह के धर्म रहे हैं, तो भी हममें एकता रही है। यही भारत की मिट्टी की खूबी है। महात्माजी की इस शिक्षा को जिंदगी में उतारो और अपने देश के नये निर्माण में लग जाओ। हमें नये गांव बसाने हैं, नये शहर बसाने हैं, एक नई जिंदगी, संस्कृति का निर्माण करना है। एक ऐसा हिंदोस्तान बनाना है, जिसमें शोषण न हो, दोहन न हो, भुखमरी और फटेहाली न हो। ऐसे नये भारत की रचना करने से ही दुनिया में हमारी शान होगी—यही कल्याण का मार्ग है। महात्माजी ने अपने जीवन भर हमें यही शिक्षा दी। हम उनकी मृत्यु से यही शिक्षा लें।

काँग्रेस मर गई

हिन्दोस्तान में राजनीति जो नई करवट ले रही है, उसमें किसान-मजदूरों का ज्यादा हिस्सा होगा। इसलिए, यह जरूरी है कि किसान-मजदूर इस नई राजनीति के लायक बनें और उसमें उनकी क्या जिम्मेवारी हो, इसपर हम गौर करें।

सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेस से अलग हो चुकी है। यह क्यों अलग है, इसपर तरह-तरह की बातें पूछी और कही जाती हैं। इधर कांग्रेसी मंत्रि-मडलों के काम से जनता बहुत असतुष्ट हो गई है। लेकिन कांग्रेस के प्रति जो पुरानी श्रद्धा है, वह बहुत अशों में बनी हुई है। इसलिए, जनता भी यह ठीक नहीं समझ पा रही है कि आखिर हम कांग्रेस से क्यों अलग हुए। आखिर काग्रेस के झडे के नीचे ही लड़कर तो हम देश को आजाद कर सके हैं, काग्रेस में पं० जवाहरलाल नेहरू और डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ऐसे नेता हैं, जिन्होंने जनता की अनुपम सेवा की और कर रहे हैं। फिर काग्रेस में रहकर उनकी मदद करना चाहिए या उनका साथ छोड़ देना चाहिए। और, फिर जो लोग निकल चुके हैं, उनकी हस्ती ही क्या है? अभी तो ये लोग नवयुवक हैं, न इन्हें उतना अनुभव है और न इतनी प्रसिद्धि। अगर चुनाव ही करना है, तो हम पुराने नेताओं का साथ क्यों छोड़ें और क्यों नये लोगो-

को साथ दें—ऐसी बात बार-बार उठाई जा रही है और उठाई जायगी। इसलिए सबसे पहले हमें कांग्रेस के बारे में ही समझ लेना है।

कांग्रेस क्या थी और आज कांग्रेस क्या हो चली है—क्या आप लोगों-ने इसपर गौर किया है? कांग्रेस एक संयुक्त मोर्चा थी, अँगरेजी साम्राज्य-वाद से लड़ने के लिए। इस दृष्टि से कांग्रेस एक सेना थी, एक फौज थी। देश को आजाद करने के लिए शान्तिमय तरीके से लड़ना उसका उद्देश्य था। देश को आजादी मिल चुकी, अँगरेजी फौज की आखिरी टुकड़ी भी हिन्दो-स्तान से जा चुकी। देश में इस समय देशवासियों का राज्य है—जो दो चार अँगरेज रह गये हैं, उन्हें हम नौकर की तरह रखे हुए हैं। इस तरह हमने पूर्ण स्वराज्य कायम कर लिया, जो कांग्रेस का लिखित उपदेश था। जब वह उद्देश्य पूरा हो गया, तो फिर कांग्रेस की जरूरत-ही क्या रह गई। साफ बात यह है कि १५ अगस्त के बाद कांग्रेस वह कांग्रेस नहीं रही। अब वह एक बिलकुल नये ढंग की संस्था हो गई है। यह नये ढंग की कांग्रेस का काम रह गया है, अंगरेजों के हाथ से छीने गये राज्य का संचालन करना। यों जहाँ कांग्रेस पहले राज्य से लडनेवाली संस्था थी, वहाँ अब वह खुद राज करनेवाली संस्था बन गई है। जब वह विदेशियों से लड़ती थी, तब उसका विरोध करना देशद्रोह था। किन्तु, जब उसका रूप बदल गया, तो फिर उससे जुदा होने या उसका विरोध करने में वह पुरानी बात नहीं रह गई। फिर जब तक विदेशी शासन के खिलाफ लड़ाई होती रही, तब तक कांग्रेस सबकी संस्था थी, उसमें जमींदार, पूँजीपति, किसान, मजदूर सभी शामिल थे। किन्तु, सत्ता को हाथ में लेकर अब कांग्रेस नहीं कह सकती कि वह सबकी संस्था है। उसका वह गुण और लक्षण मिट गया। अब तो उसे यह तय करना होगा कि वह किसके साथ रहेगी—धनियों के साथ या गरीबों के साथ। क्योंकि धनियों और गरीबों के स्वार्थ जुदा जुदा हैं और जो एक का

समर्थक होगा, वह दूसरे का हितू नहीं हो सकता, यह निश्चित है।

कई महीने पहले मैंने कहा था कि आज़ादी के बाद कांग्रेस को तोड़ देना चाहिए। बंबई, दिल्ली या वर्धा में एक जलसा हो और वह वहाँ सर्वसम्मति से कांग्रेस की अंत्येष्टि क्रिया कर दे। जो सबकी संस्था रही हो, उसका उपयोग एक मुट्ठी लोग अपने स्वार्थ को पूरा करने में अपव्यय करें, यह कहाँका न्याय है?

मैंने इस आशय का बयान ही नहीं दिया, देश के नेताओं से भी चर्चा की। वे भी राजी मालूम होते थे, किन्तु, अब वे बदल गये हैं। हाँ, महात्माजी ने अपने वसीयतनामे में वैसा ही प्रस्ताव रखा—जैसा हमने कहा था। कांग्रेस का नाम मिट रहा है, उसकी इज्जत नष्ट हो रही है। इससे त्याग तपस्या करनेवाले सभी सच्चे आदमी दुःखी हैं। गांधीजी भी दुःखी थे, इसलिये उन्होंने कहा कि कांग्रेस को राजनीति से अलग करो, उसका दुरुपयोग चुनाव में मत करो। गांधीजी ने मरते समय यह नारा हमें दिया और इसके बाद मुझसे भी एक कदम आगे बढ़ गये। कांग्रेस के भंग कर देने से देश में जो एक शून्यता फैलती, उससे हानि होने की संभावना थी। इसलिये गांधीजी ने एक और नई बात जोड़ दी कि कांग्रेस का विकास 'लोक सेवक संघ' के रूप में किया जाय। किन्तु, गांधीजी की यह अंतिम बात भी नहीं मानी गई।

अब यह साफ हो चला है कि आज जो कांग्रेस है, वह पुरानी कांग्रेस नहीं है। यह तो एक बिलकुल नई कांग्रेस है। इस नई कांग्रेस में रहने और न रहने का निर्णय करने का हक, नये सिरे से सबको है। हमारे सामने दो ही रास्ते थे। या तो हम इस नई कांग्रेस के साथ रहते, जिसके हाथ में आज हुकूमत है, फलतः जिसमें तरह-तरह की गंदगी फैल रही है और जो हुकूमत की ताकत के लिये लड़ने का अखाड़ा बन गई है। यह नई कांग्रेस

और उसके मातहत की कांग्रेसी सरकार किस तरह काम कर रही है—आप-हम सभी जानते हैं। हमारे बहुत जोर लगाने पर वे जमींदारी उठाने को तैयार हुए, तो अब इतना मुआवजा दे रहे हैं कि बेचारे किसान पिस जायँगे। सदियों तक जमींदारों ने लूटा, फिर उन्हें मुआवजा देना तो एक बेतुकी-सी बात है। दरभगा के राजा के लिए मुआवजे की क्या जरूरत है? हाँ, छोटे जमींदारों की परवरिश के लिए जितना दीजिए। किन्तु, सिर्फ जमींदारी उठाने से ही तो किसानों का कल्याण नहीं हो जाता है। जमींदारी उठाने के बाद क्या नक्शा होगा—यह भी सवाल है। जमींदारी उठाना तो पहला कदम है, हमें आगे बढना होगा, तभी किसानो का फायदा है। एक नई कृषि-योजना तैयार कर उसपर मुस्तैदी से काम लेना है। किन्तु, कांग्रेस की हुकूमत यह सब नहीं करना चाहती। ऐसे बड़े-बड़े किसान हैं, जिनके पास हजारों बीघे जमीन है। और दूसरी ओर, ऐसे लोग हैं, जिनके पास एक धूर भी जमीन नहीं है! यह भेदभाव भी तो दूर करना ही होगा।

हमारे सामने दो ही सवाल थे—या तो कांग्रेस में रहकर हम भी खायँ-पकायँ या उससे अलग होकर हम आन्दोलन करें कि कांग्रेस और उसकी सरकारों में जो गदगी आ गई है, वह दूर हो और सही मानी में जनता का राज्य कायम हो।

हमने इसी दूसरे रास्ते को पसंद किया है।

एक बात और भी है। कांग्रेस का जो स्वरूप बदल गया है, उसका पता आपको एक बात से चलेगा। जब कांग्रेस के सदस्य का मानी जेल जाना, लाठी खाना, धन जब्त कराना था, तब जो लोग उससे दूर-दूर रहते थे, वे ही अब कांग्रेस की ओर टूट पड़े हैं। जिन्होंने कभी खद्दर का सपना नहीं देखा, वे खद्दर पहनकर अपने महलों और मोटरों पर तिरंगे झंडे उड़ाये जा रहे हैं। दिल्ली की सरकार में वैसे वजीर हैं, जो कांग्रेस के द्रोही थे

षण्मुखम् चेट्टी को लीजिए। उनका इतिहास क्या है? जिन्दगी भर अँगरेजों के पिट्ठू रहे और आज पूँजीपतियों के पिट्ठू बनकर नेहरू-सरकार में वजीर बनकर अब तो पूरे कांग्रेसी बन गये हैं। जिस कांग्रेस में षण्मुखम चेट्टी और श्यामाप्रसाद मुखर्जी ऐसे लोग हों, क्या उस कांग्रेस को पुरानी कांग्रेस ही कहा जायगा?

लोग पूछते हैं, मान लिया कि अब वह कांग्रेस नहीं रही; पर वहाँ राजेन्द्र बाबू और नेहरू तो हैं? हमारा यह दावा नहीं कि हमलोग हटे, तो कोई अच्छे लोग नहीं रहे। वहाँ भी ऐसे लोग हैं, जो जनता की सेवा करना चाहते हैं और उसकी इज्जत करते हैं। किन्तु, उस कांग्रेस में ऐसे लोगोंका बोलबाला हो रहा है, जो इस ताक में हैं कि प० नेहरूको भी हटा दें। इस-पर आप आश्चर्य मत कीजिये। बिहार को ही ले लीजिये। बिहार के एक-मात्र नेता हैं, डा० राजेन्द्र प्रसाद। जबसे मिनिस्ट्री बनी, कितनी गन्दगी फैली, कितनी बदनामी हुई। छोये को बात ने सारे बिहार को बदनाम किया। क्या राजेन्द्र बाबू इस गन्दगी को दूर कर सके? क्या छोये की जाँच भी करा सके? इसके क्या मानी? बड़े-बड़े नेता जनता के सेवक हैं; किन्तु कांग्रेस एक मशीन है, जो नेता से भी बड़ी है। सभी नेताओं के नेता महात्माजो अन्तिम दिनों में कांग्रेस की गन्दगी से किस तरह बैचेन थे? वह बार-बार कहते थे, मैं क्या करूँ, मेरी तो चलती नहीं। उनकी आवाज में कितना दर्द रहता था—रेडियो सुननेवाले जानते हैं। जब उनकी नहीं चली, तो फिर नेहरू, आजाद या राजेन्द्र बाबू की क्या चलेगी? नेहरू साहब प्रधान मन्त्री हैं; किन्तु, उनकी छाप क्या उनकी हुकूमत पर हम पाते हैं? उनकी चलती, तो देश की कायापलट हो जाती। नेहरू साहब एक वक्तव्य देते हैं कि दूसरी ओर से दूसरा निकल जाता है और ऐसा चक्र चलता है कि उनका कहा-सुना ठप्प हो जाता है। तो वे भी कांग्रेस से या इस पद पर

से क्यों नहीं हट जाते ? शायद इसलिए कि थोड़ा-बहुत जो कर पाते हैं, वह भी न हो और ऐसे लोगोंके हाथों में हुकूमत जाय, जिससे देश का बुरा होगा। किन्तु, नेहरू साहब की सारी परेशानियों के बाद भी देश उसी ओर जा रहा है। चीन में भी ऐसा ही हुआ और यदि यही रवैया रहा, तो हमारे देश की भी दुर्दशा चीन की ही तरह होगी।

हमारे नेता कांग्रेस को अच्छी राह पर ले जाना चाहते हैं; किन्तु वे कर नहीं सकते। हमने भी ऐसा करके देखा है। किन्तु, कांग्रेस में दिन-दिन अमीरों को बोल-बाला होता जा रहा है। गाधी-नेहरू सब असमर्थ सिद्ध हुए। फिर हमारी क्या बिसात! तब हमने सोचा कि कांग्रेस के अन्दर हम जब तक हैं, तब तक देश का कल्याण नहीं। अलग होकर हम कांग्रेस और उसकी सरकार की बुराइयों को जनता के सामने रखें और देश मे एक नये ढग का समाज बनाने के लिए अन्दोलन करें।

तब हमारा देश स्वर्ग होगा

आज हम सोशलिस्ट पार्टी के झंडे के नीचे 'मजदूर-दिवस' मनाने जा रहे हैं। मजदूर-दिवस के महत्त्व के बारे में मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है; इस दिवस के महत्त्व को बढ़ाने के लिए सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी सरकार से अनुरोध किया था कि पहली मई को आम छुट्टी का दिन घोषित किया जाय, जिससे सारे देश के मजदूर अच्छी तरह इस दिवस को त्योहार के रूप में मनावें। उस दिन हिन्द के सारे दफ्तर, खान, इंडस्ट्रिज और छोटे-छोटे उद्योग धंधे बन्द रहें। किन्तु बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि भारत सरकार ने अभी तक इसका कुछ फैसला नहीं किया; इसके महत्त्व को नहीं समझा। फिर भी हम उमीद करते हैं कि अगले साल इस काम में बहुत ज्यादा प्रगति होगी, जिससे इसको हम एक बड़ी शानदार चीज बना सकें।

सोशलिस्ट पार्टी ने इसपर अपना ज्यादा जोर क्यों दिया, इसके कई कारण थे? एक कारण तो यही था कि इसके जरिए अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रचार बढ़ेगा—उसे एक बहुत बड़ा बल मिलेगा। दूसरा कारण था हिन्दोस्तान में इसकी सबसे ज्यादा जरूरत है; क्योंकि यहाँ बहुत बड़े पैमाने पर गरीब मजदूर और किसान बसते हैं, जिन्हें इसका महत्त्व समझना है। इसके अलावा

जो परिश्रम करके पेट भरते हैं, ऐसे बुद्धिजीवी लोगोंके दिमाग से बाबूगिरी का ख्याल निकालना है और उन्हें समझाना है कि आपका वर्ग भी वही है, जो शारीरिक परिश्रम करके अपनी रोजी चलाते हैं। और, इस तरह धीरे-धीरे उन सबको इस झंडे के नीचे लाना है। इन सबका अन्तिम उद्देश्य है, एकमात्र लक्ष्य है—समाजवाद का प्रचार तथा समाजवादी व्यवस्था को कायम करना।

मैं इस सम्बन्ध में आपके सामने कुछ खास बातों का जिक्र कर देना चाहता हूँ।

१५ अगस्त को देश आजाद हुआ। आजादी के बाद देश ने सोचा—अब हम लक्ष्य की ओर बढ़ेंगे, अपना मार्ग तय करेंगे और किसान मजदूर राज कायम करेंगे। मगर वैसा होते कुछ नजर नहीं आ रहा है। आप कहेंगे कि आप जो कहते हैं, वही बात तो वे भी कह रहे हैं, फिर अन्तर किस बात का? आप धीरज धरें, कुछ समय उन्हें दें। अभी जल्दीबाजी क्या है?

जहाँ तक समाजवादियों का सवाल है, उनके पास समाजवाद का—राज्य-व्यवस्था का—निश्चित स्वरूप है। हम जल्दबाजी कहाँ कर रहे हैं? फिर भी यदि हमें एक घर बनाना है, तो पहले उसका नक्शा तैयार कर लेना जरूरी है। बगैर नक्शे के हम घर का रूप क्या देंगे—उसमें किधर क्या और कितनी एवं कैसी कोठरियाँ रख सकेंगे? आज कांग्रेस नेताओं के पास इस व्यवस्था के लिए कोई नक्शा नहीं है। यदि ऐसा होता, तो उनका कोई मंत्री कुछ और कोई कुछ नहीं बोलता। सब-के-सब पथभ्रष्ट की तरह अंधेरे में इधर-उधर भटकते नजर आ रहे हैं। हमारी इन बातों से आपको ताज्जुब नहीं होना चाहिए। अभी पंडित जवाहरलालजी ने बम्बई की ए०आई०सी०सी० की मीटिङ्ग में भारतीय औद्योगिक नीति के बारे में जो कुछ कहा है, उससे भारतीय सरकार की नीति से कोई समानता नहीं। भला जिस सरकार का

प्रधान मंत्री जो बात कहे और उससे सरकार की नीति में समानता नहीं, तो वह कैसी शासन-व्यवस्था है ? भारत सरकार के औद्योगिक मन्त्री डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने पूँजीपतियों को पूरा आश्वासन दिया है और कहा है कि हमारी नीति साफ है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। पंडित नेहरू जैसा क्रान्तिकारी नेता चाहते हैं कि सड़ी-गली इमारत की मरम्मत करके सुखी रहें, यह नामुमकिन है। जब इमारत जीर्ण हो गई है, तो हमें चाहिए—देश के नौजवानों को चाहिए कि उसे बिलकुल ध्वस्त कर नए सिरे से नई इमारत बनाएँ, जो खूब पोख्ता हो। आपने यह भी पढ़ा कि कलकत्ते में सरदार पटेल ने पूँजीपतियों की एक सभा में उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि अब तुम क्या चाहते हो ? तुम्हारे तो दो दो प्रतिनिधियों को मन्त्रिमंडल में रख लिया गया है, व्यर्थ घबराते हो। मगर एक दूसरे मन्त्री ने कहा कि चन्द वर्षों में हम पूँजीवाद को खत्म कर देंगे। इस तरह कुछ भी पता नहीं चलता कि सरकार की क्या नीति है, उसकी कौन-सी दिशा है। उसका निश्चित कोई कार्यक्रम नहीं है। मगर नहीं, समाजवादियों के दिमाग में व्यवस्था का पूरा चित्र है और एक निश्चित दिशा है।

आज देश के सामने भीषण गरीबी और अभाव की समस्या है। आज इस सवाल को हल करने की एक निश्चित दिशा चाहिए। देश में ९८ फी सदी गरीब मजदूर और किसान बसते हैं। इनके कपड़े, भोजन, घर, शादी-ब्याह हर तरह के अभाव को दूर करने की समस्या है। हमारे पिछड़े भाई हरिजन लोगोंके घरों को देखिये, जानवर से भी बदतर इनकी हालत है। जिन घरों में ये रहते हैं—वह भी इनका अपना नहीं। जब मालिक चाहे, उन्हें उसमें से निकाल बाहर कर देता है। बीमारी की समस्या विकराल है। पथ्य, दवा के बिना ये चूहों की तरह सड़-सड़कर मर रहे हैं। डाक्टर के लिए इनके पास फीस कहाँ ? कहीं-कहीं तो लाश को फेंकनेवाला भी कोई

मिलनी चाहिए—चाहे वह देश सेवक हो, मंत्री हो, वैज्ञानिक हो, गवर्नर हो या गवर्नर-जेनरल हो। आज धन के बटवारे की विषमता को, लूट को, अन्याय को, शोषण को, तमाम अत्याचारों को बदलना है, इसके विरुद्ध सारे देश को लड़ना है।

हमारे नेता इस बात के लिए बहुत कुछ उलटी सीधी बातें रखते हैं और रखेंगे। मगर इसपर तो आप को खुद सोचना है। आज आपको एक आनेवाले भारी खतरे से आगाह कर देना चाहता हूँ। आज असेम्बली में, इंगलैंड में, दिल्ली में यह भयंकर साजिश चल रही है कि हिन्दुस्तान को डोमिनियन स्टेटस बनाकर रखा जाए। इस साजिश में बड़े-बड़े नेता फसते जा रहे हैं। पता नहीं आप क्या चाहते हैं ? जनता को तो हमारे नेता सर्प की तरह वीणा बजाकर मुग्ध कर लेते हैं—वे जो चाहते हैं जनता को समझा देते हैं, बिचारी जनता उनपर विश्वास कर उनके पीछे हो लेती है। वे कहेंगे डोमिनियन स्टेटस ही अच्छी चीज है, अभी हिन्द पर खतरा है। हम मुकाम्मिल आजादी के लायक नहीं हुए हैं। बस बिचारी जनता उनपर विश्वास कर ही लेगी। मगर मैं कहता हूँ कि हम तो पूर्ण आजादी चाहते हैं। अब आप सोचिये कि आप क्या चाहते हैं ? मगर खतरा बहुत नजदीक है, इससे आपको अगाह कर देता हूँ।

मैंने पहले कहा है कि चन्द लोगों के पास जो धन एकत्र है, उसको लेकर सबमें बाँट देने से सब सुखी नहीं हो जायेंगे। सुखी तो लोग तब होंगे, जब पैदा हुए धन का न्यायपूर्ण उचित बटवारा हो और यह काम कानून के जरिए तथा सामाजिक व्यवस्था के जरिए होगा। यदि हिन्दुस्तान में आज कई गुना ज्यादा धन पैदा हो भी तो उससे गरीब हिन्द को कोई फायदा नहीं। इससे तो और भी गरीब गरीब होते जायेंगे और अमीर अमीर। पूंजीपतियों की सख्या में वृद्धि अवश्य हो जायगी। आपने देखा या सुना

होगा कि अमेरिका मे बहुत धन पैदा होता है, जिससे सारे ससार का बाजार भरा जा सकता है। मगर इससे क्या, वहाँ के मजदूर थोडे सुखी हैं? मैं खुद वर्षों वहाँ मजदूरी कर चुका हूँ। १४ रु० रोजाना आमदनी थी, मगर फिर भी कठिन जिन्दगी बितानी पड़ी थी—यद्यपि वह समय अमेरिका के लिए सब तरह से अच्छा था। ज्यादा धन पैदा होने से वहाँ ससार के सबसे बड़े पूँजीपति भी हैं। और सबसे ज्यादा उन्हे मुनाफा होता रहा है। वहाँ भी यही बात है कि धन का उचित बटवारा नहीं है! मजदूरी ज्यादा मिलने से क्या होगा जब कि चीजों का दाम ही ज्यादा होगा जैसा कि अमेरिका मे है। इसलिए जबतक हम समाज-व्यवस्था और कानून नहीं बदलते, तबतक यह सभव नहीं। और यह काम एक मात्र समाजवाद के जरिए ही हो सकता है। समाजवाद पार्टी यही चाहती है कि मिहनत करनेवाले जो लोग हैं—वे जहाँ भी हो, उन्हीं मे धन का उचित बटवारा हो। पहला कानून यही बनना चाहिए कि वृद्ध, रोगी, बच्चा और गर्भिणी को छोडकर जो व्यक्ति मिहनत नहीं करेगा, वह भूखा मरेगा और जो मिहनत करके धन पैदा करेगा, उसीमें उस धन का उचित बँटवारा होगा!

इसके अलावा पैदा किये हुए धन के बँटवारे करने का अख्तियार भी उन्हीं लोगों को होगा जो उस धन को पैदा करते हैं। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वे ही सोचेंगे कि कौन-सा धन ज्यादा पैदा करने से हम सम्पूर्ण देशवासी सुखी और स्वस्थ रह सकेंगे। सारे कारोबार का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए।

आज राष्ट्रीयकरण मे जितनी ज्यादा देर हो रही है, सब पूँजीपतियों के चलते। आज देश के तमाम उद्योग-धंधों और सरकार पर भी इनका सिक्का जमा है। हमारे पटेल साहब कहते हैं—'दस वर्ष निश्चित रहो। उद्योग-

धन्धों में पूँजी लगाने चलो। तुम्हारे दो प्रतिनिधियों को इसीलिए सरकार में स्थान दे रखा है।' मगर दस वर्ष में ये पूँजीपति क्या कमजोर पड़ जायँगे? ऐसा सोचना पागलपन होगा। दस वर्ष में तो ये और भी मजबूत हो जायेंगे—देश की नस-नस पर कब्जा कर लेंगे, तब इनको हटाना और भी कठिन होगा। ये पूँजीपति किसी तरह से कुछ जोखिम उठाना नहीं चाहते। देश में कुछ ऐसे कारखाने खुलनेवाले हैं जिसमें सरकार और पूँजीपति दोनों के पैसे लगेंगे। उसमें पब्लिक के पैसे ५१ सै० और ४९ सै० पूँजीपति के होंगे। पूँजीपतियों की यह साजिश है कि अपने निज के कारखाने में अच्छे माल पैदा करके और साझे-वाले कारखाने में अड़ंगे की नीति लगा कर इसकी पैदावार को ठप्प कर देंगे। जब पूँजीपतियों के कारखाने में मजदूरों को कुछ सुविधा मिलेगी और साझे वाले कारखाने के मजदूरों को उसे उत्पन्न धन से कोई ज्यादा मुनाफा नहीं मिलेगा; तब स्वभावतः ऐसे कारखाने में उत्पादन की वृद्धि कम होगी और वर्षों घाटे में कारखाने चलते रहेंगे। आपने देखा होगा कि रूस में बगैर पूँजीपतियों के पाँच वर्ष के अन्दर मजदूरों ने भूखों रहकर इतना ज्यादा काम किया जितना ३० साल में भी हिन्दोस्तान में नहीं हो सकता। आज चीन में वर्षों से आजादी मिली है, मगर व्यवस्था और कानून के ऐसे दोष रहे जिससे सारा चीन बर्बाद होता जा रहा है। वही हाल हिन्दुस्तान का भी होनेवाला है। इसका एक मात्र सुधार समाजवादी व्यवस्था से ही हो सकता है। दूसरा कोई रास्ता कामयाब नहीं हो सकता।

हमारे देश मे छोटे-छोटे किसानों की सख्या सबसे ज्यादा है। यदि यही वर्त्तमान व्यवस्था और कानून रहे, तो खेती के मामले में भी विशेष कोई तरक्की नहीं होने को। यह काम भी समाजवादी सरकार के जरिये ही हो सकता है। सरकार के हाथों में बहुत बड़ा अधिकार होता है। एक अधिकार

यह है कि वह कानून बनाती है और दूसरा उस कानून को काम मे लाने के लिए सेना, पुलिस आदि का उपयोग करती है। इसलिए जैसी सरकार होगी, देश का भला बुरा वैसा होगा।

आज जो एटम बम का उपयोग ससार के विध्वस में लगाया जा रहा है, यदि उसका उपयोग सरकार देश के उत्पादन शक्ति में लगाये तो आप जरा सोचिए, देश कैसा होगा? जब देश के प्रत्येक श्रमजीवी को १०००) मासिक मिलने लगेगा, तब हमारा देश स्वर्ग होगा—नन्दन वन होगा। मेरे इस चित्र को मूर्त्त रूप देना होगा। मगर इसे अकेले सोशलिस्ट पार्टी नहीं कर सकती। आप हमारी सहायता करें। यह देश के करोड़ों व्यक्तियों की सहायता से होगा। आज राष्ट्र की उन्नति खतरे में है। आज शोषण से लड़ना है, वर्ग-विहीन समाज बनाना है, आर्थिक क्रान्ति करनी है, समाज में ऊच-नीच का भेद मिटाना है। यह काम भी समाजवाद के जरिये ही हो सकता है।

आज मैं एक बात की और चेतावनी देना चाहता हूँ कि आज हमारे पिछड़ी जाति के भाई लोग देश में वही खतरा उत्पन्न कर रहे हैं जो पहले उच्च जातिवालों ने किया है। इनका सगठन भी वैसा ही हो रहा है जिससे एक जाति दूसरी जाति को मिटाने मे सलग्न रहती है। हम मानते हैं कि इन सगठनो के जरिये पिछड़ी जातियाँ के कुछ लोग उच्च ओहदे पर पहुँचेगे, मगर इससे क्या होगा। यदि समाज की यही व्यवस्था रही, तो देश मे वही वर्ग विद्वेष और गरीबी का साम्राज्य छाया रहेगा। इससे आम जनता को क्या मिलेगा? पहले जो उच्च जाति वाले देश पर—समाज पर शासन करते रहे है, उससे क्या तमाम उच्च जाति के लोगों की गरीबी दूर हो गई थी? इससे तो कुछ थोड़े ही व्यक्तियो का बोलबाला रहेगा—उसका शोषण जारी

ही रहेगा। यहाँ तो प्रथा का सवाल है—व्यवस्था का दोष है। इसलिए आज देश में आर्थिक क्रान्ति के साथ वर्ग-विहीन समाज का निर्माण करना सबसे ज्यादा जरूरी है। समाजवादियों ने इस दिशा में भी आन्दोलन करना शुरू कर दिया है। इस ओर भी आपकी सहायता अत्यन्त आवश्यक है। मैं आज आप के सामने स्पष्ट कह रहा हूँ कि आप देश और समाज की भलाई के नाते सोशलिस्ट पार्टी के झंडे के नीचे आयें और समाजवाद को सहायता करें। मैं किसी तरह आपको बरगला नहीं रहा हूँ और न चिकनी-चुपड़ी बातें ही करता हूँ। यही सत्य और कल्याणकारक मार्ग है।